एम.ए. पूर्वार्द्ध

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व

प्रथम प्रश्नपत्र

भारत का राजनीतिक इतिहास

(छठी शता. ई. पू. से छठी शता. ई. तक)

POLITICAL HISTORY OF INDIA

(6 CEN B.C.-6 CEN A.D.)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Amita Singh
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Mamta Chansoria
   Associate Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Manisha Sharma
   Associate Professor
   Govt. PG College, Beena (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. L.P. Jharia
   Director,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Amita Singh
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Mamta Chansoria
   Associate Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Manisha Sharma
   Associate Professor
   Govt. PG College, Beena (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr Nirja Sharma, Assistant Professor, Department of Buddhist Studies, University of Delhi
Units (1.0-1.1, 1.2-1.3, 1.4-1.4.2, 1.4.3-1.9, 2.0-2.1, 2.2-2.4, 2.5-2.9, 3.0-3.1, 3.2, 3.3, 3.4-3.5, 3.6-3.10, 4.0-4.1, 4.2-4.6, 4.7-4.8, 4.9-4.13, 5.0-5.1, 5.2-5.3, 5.4-5.10)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

भारत का राजनीतिक इतिहास

(6 CEN BC-6 CEN AD)

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 उत्तर भारत के सोलह जनपद और गणतंत्रीय समुदाय; मगध साम्राज्य का उदय; पर्शियन और मेसीडोनियन आक्रमण– सिकंदर के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था और उत्तर–पश्चिम भारत के राज्य, भारत पर पर्शियन (ईरानी) आक्रमण, भारत पर मेसीडोनियन (यूनानी) आक्रमण	**इकाई 1** : 6 शताब्दी ई.पू. में भारत **(पृष्ठ 3–36)**
इकाई–2 मौर्य– मौर्य साम्राज्य, चंद्रगुप्त मौर्य, अशोक का धम्मः अवधारणा, मौर्य प्रशासन, मौर्य कला और वास्तुकला, मौर्य संस्कृति, मौर्यकालीन भारत में सामाजिक धार्मिक व आर्थिक परिवर्तन, मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण; शुंग और कण्व– शुंगों का राजनीतिक सर्वेक्षण, पुष्यमित्र शुंग, पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारी एवं शुंग राजवंश का अंत, शुंग वंश का महत्व, कण्व; भारत में इंडो–ग्रीक और पार्थियन– इंडो–ग्रीक, पार्थियन	**इकाई 2** : मौर्य, शुंग और इंडो–ग्रीक **(पृष्ठ 37–100)**
इकाई–3 सातवाहन, चेदि, शक और कुषाण	**इकाई 3** : सातवाहन, चेदि, शक और कुषाण **(पृष्ठ 101–124)**
इकाई–4 गुप्त राजवंश– गुप्तवंश का उदय और चंद्रगुप्त I समुद्रगुप्त, काच और रामगुप्त– चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त I और स्कंदगुप्त अंतिम गुप्त शासकों का विवरण (467 ई. – 550 ई.)– गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण– गुप्त साम्राज्य का प्रशासन	**इकाई 4** : गुप्त साम्राज्य **(पृष्ठ 125–159)**
इकाई–5 गुप्त और पुष्यभूति के समकालीन– वाकाटक– हूण और दशपुरा के औलिकर, मौखरी वंश, उत्तर गुप्त वंश एवं वल्लभी के मैत्रक	**इकाई 5** : गुप्त और पुष्यभूति के समकालीन **(पृष्ठ 161–188)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 6 शताब्दी ई.पू. में भारत **3–36**

1.0 परिचय

1.1 उद्देश्य

1.2 उत्तर भारत के सोलह जनपद और गणतंत्रीय समुदाय

1.2.1 सोलह जनपद

1.2.2 गणतंत्रीय समुदाय

1.3 मगध साम्राज्य का उदय

1.4 पर्शियन और मेसीडोनियन आक्रमण

1.4.1 सिकंदर के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था और उत्तर–पश्चिम भारत के राज्य

1.4.2 भारत पर पर्शियन (ईरानी) आक्रमण

1.4.3 भारत पर मेसीडोनियन (यूनानी) आक्रमण

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1.6 सारांश

1.7 मुख्य शब्दावली

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 मौर्य, शुंग और इंडो–ग्रीक **37–100**

2.0 परिचय

2.1 उद्देश्य

2.2 मौर्य

2.2.1 मौर्य साम्राज्य

2.2.2 चंद्रगुप्त मौर्य

2.2.3 अशोक का धम्मः अवधारणा

2.2.4 मौर्य प्रशासन

2.2.5 मौर्य कला और वास्तुकला

2.2.6 मौर्य संस्कृति

2.2.7 मौर्यकालीन भारत में सामाजिक धार्मिक व आर्थिक परिवर्तन

2.2.8 मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

2.3 शुंग और कण्व

2.3.1 शुंगों का राजनीतिक सर्वेक्षण

2.3.2 पुष्यमित्र शुंग

2.3.3 पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारी एवं शुंग राजवंश का अंत

2.3.4 शुंग वंश का महत्व

2.3.5 कण्व

2.4 भारत में इंडो–ग्रीक और पार्थियन

2.4.1 इंडो–ग्रीक

2.4.2 पार्थियन

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 सातवाहन, चेदि, शक और कुषाण **101–124**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 सातवाहन
3.3 चेदि
3.4 शक
3.5 कुषाण
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 गुप्त साम्राज्य **125–159**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 गुप्त राजवंश
4.3 गुप्तवंश का उदय और चंद्रगुप्त I
4.4 समुद्रगुप्त, काच और रामगुप्त
4.4.1 समुद्रगुप्त
4.4.2 काच
4.4.3 रामगुप्त (375 ई.–389 ई.)
4.5 चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त I और स्कंदगुप्त
4.6 अंतिम गुप्त शासकों का विवरण (467 ई. – 550 ई.)
4.7 गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण
4.8 गुप्त साम्राज्य का प्रशासन
4.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.10 सारांश
4.11 मुख्य शब्दावली
4.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.13 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 गुप्त और पुष्यभूति के समकालीन 161–188

5.0 परिचय

5.1 उद्देश्य

5.2 गुप्त और पुष्यभूति के समकालीन

5.3 वाकाटक

5.4 हूण और दशपुरा के औलिकर

- 5.4.1 हूण
- 5.4.2 दशपुरा के औलिकर

5.5 मौखरी वंश, उत्तर गुप्त वंश एवं वल्लभी के मैत्रक

- 5.5.1 मौखरी वंश
- 5.5.2 उत्तर गुप्त वंश
- 5.5.3 वल्लभी के मैत्रक

5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

5.7 सारांश

5.8 मुख्य शब्दावली

5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत का राजनीतिक इतिहास 6 CEN BC-6 CEN AD' का लेखन विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. (पूर्वार्द्ध) पाठ्यक्रम के अनुरूप किया गया है।

लगभग 1350 वर्ष पहले तक अखंड भारत की सीमा में अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नेपाल, तिब्बत, भूटान, बांग्लादेश, बर्मा, इंडोनेशिया, कंबोडिया, वियतनाम, मलेशिया, जावा, सुमात्रा, मालदीव और अन्य कई छोटे–बड़े क्षेत्र हुआ करते थे। हालांकि सभी क्षेत्र के राजा अलग–अलग होते थे लेकिन सभी भारतीय जनपद कहलाते थे। इस संपूर्ण क्षेत्र को अखंड भारत कहा जाता था।

छह शताब्दी ईसा पूर्व उत्तर भारत में सोलह महाजनपद थे। इनकी शासन प्रणाली वर्तमान लोकतंत्र का प्रारंभ थी। इन्हीं में से एक महाजनपद मगध इतना शक्तिशाली हो गया कि उसका विस्तार लगभग संपूर्ण भारत में हो गया और यह भारत की धुरी बन गया। इस काल में नन्द और फिर मौर्य वंश के शासकों ने मगध से शासन करते हुए संपूर्ण भारत को राजनैतिक रूप से एक कर दिया। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। केंद्रीय सत्ता के कमजोर होने पर महाजनपद कई नए राजवंशों के नेतृत्व में फिर से स्वतंत्र हो गए। भारत की राजनैतिक एकता खंडित हो गई। इसी क्रम में हमारी सीमाएं भी कमजोर हुईं और विदेशी ताकतों ने हम पर आक्रमण ही नहीं शासन भी किया। यह काल खंड लगभग 600 वर्ष का था।

कुछ राजवंशों ने भारत को फिर से एक सूत्र में पिरोने की कोशिश भी की किंतु इस हेतु इतिहास को गुप्त वंश के अभ्युदय तक इंतजार करना पड़ा और भारत एक बार फिर से इतना शक्तिशाली और वैभवशाली बना कि गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल बन गया। एक बार फिर परिवर्तन हुआ और भारत फिर विशृंखलित ही नहीं हुआ बल्कि विदेशी आक्रांताओं से त्रस्त भी हुआ और उनके अधीन भी। पर्शियन, मेसिडोनियन, शुंग, कण्व, हिंद–यवन, पार्थियन, सातवाहन, चेदि, शक, कुषाण इत्यादि प्रमुख वंश उभरकर आए, हालांकि मौर्य और गुप्त वंश जैसी संपूर्ण राजनैतिक एकता संभव नहीं हो पाई। इस पुस्तक में हम इन्हीं सब पहलुओं का स्तरीय अध्ययन करेंगे।

प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय–विश्लेषण से पूर्व, उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से संपूर्ण पाठ्यक्रम को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विषयगत विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में हम छह शताब्दी ईसा पूर्व उत्तर भारत के 16 महाजनपदों, गणतंत्रों, मगध साम्राज्य का उदय, पर्शियन तथा मेसिडोनियन आक्रमणों का अध्ययन करेंगे।

दूसरी इकाई में हम प्रमुख शासकों, मौर्य, शुंग, कण्व, इंडो–ग्रीक (हिन्द–यवन) एवं पार्थियनों (पहलव) का अध्ययन करेंगे।

तीसरी इकाई में हम सातवाहन, चेदि, शक और कुषाण वंश के बारे में जानेंगे।

चौथी इकाई में हम गुप्त वंश के अभ्युदय, इस वंश के प्रमुख शासकों जैसे चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त, काच, रामगुप्त, चंद्रगुप्त, कुमारगुप्त, स्कंदगुप्त के साथ–साथ गुप्त वंश के अंतिम शासकों, गुप्त प्रशासन एवं गुप्त वंश के पतन का अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

पांचवीं इकाई में गुप्त एवं पुष्यभूतियों के समकालीन वाकाटकों, हूणों, दशपुरा के औलिकर शासकों, मौखरी शासकों, उत्तर गुप्त (गुप्तोत्तर) शासकों एवं वल्लभी के मैत्रकों के बारे में जानेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में संदर्भित अहम विषयों का सांगोपांग समायोजन किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं का ज्ञानवर्धन और मार्गदर्शन करने में सफल होगी।

इकाई 1 6 शताब्दी ई.पू. में भारत

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 उत्तर भारत के सोलह जनपद और गणतंत्रीय समुदाय
1.2.1 सोलह जनपद
1.2.2 गणतंत्रीय समुदाय
1.3 मगध साम्राज्य का उदय
1.4 पर्शियन और मेसीडोनियन आक्रमण
1.4.1 सिकंदर के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था और उत्तर–पश्चिम भारत के राज्य
1.4.2 भारत पर पर्शियन (ईरानी) आक्रमण
1.4.3 भारत पर मेसीडोनियन (यूनानी) आक्रमण
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

भारत का इतिहास और संस्कृति अपने प्रारंभिक काल से ही गौरवशाली रहे हैं। भारत विश्वगुरु और सोने की चिड़िया कहलाता था। संपूर्ण विश्व को परिवार के रूप में मानना (वसुधैव कुटुंबकम) तथा सभी के कल्याण की कामना करना भारत का आदर्श रहा है। उत्तरवैदिक काल में हमें विभिन्न जनपदों का अस्तित्व दिखाई देता है। इस काल तक पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में लोहे का व्यापक रूप से उपयोग किया जाने लगा था। कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के विकास ने प्राचीन जनजातीय व्यवस्था को जर्जर बना दिया तथा छोटे-छोटे जनपदों का स्थान बड़े जनपदों ने ग्रहण कर लिया। ई.पू. छठी शताब्दी तक आते-आते जनपद, महाजनपदों के रूप में विकसित हो गए। महाजनपद काल 600-325 ई.पू. तक माना जाता है। इस काल में उत्तर भारत में 16 प्रमुख महाजनपदों और गणतंत्रीय समुदायों का उद्‌भव हुआ। मगध साम्राज्य शक्ति के केंद्र के रूप में स्थापित हुआ। और क्षेत्र की संपन्नता ने विदेशी शासकों को भी इसकी ओर आकर्षित किया।

इस इकाई में हम 6 शताब्दी ई.पू. में भारत की स्थिति इसके महाजनपदों, गणतंत्रीय समुदायों, मगध साम्राज्य के उदय, पर्शियन एवं मेसीडोनियन आक्रमणों और उनके प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- छः शताब्दी ई.पू. के उत्तर भारत के सोलह महाजनदों एवं गणतंत्रीय समुदायों के बारे में जान पाएंगे;
- राजतंत्र एवं गणतंत्र में अंतर समझ पाएंगे;
- मगध साम्राज्य के उदय का अध्ययन कर पाएंगे;
- पर्शियन व मेसीडोनियन आक्रमणों की विस्तृत जानकारी ले पाएंगे।

1.2 उत्तर भारत के सोलह जनपद और गणतंत्रीय समुदाय

इस अध्याय में हम उत्तर भारत के सोलह जनपदों और गणतंत्रीय समुदायों का अध्ययन करेंगे।

1.2.1 सोलह जनपद

भारतीय इतिहास में ई.पू. छठी शताब्दी के बीच का दीर्घकाल विभिन्न घटनाओं से परिपूर्ण है। इन घटनाओं और इस काल के राजवंशों का स्पष्ट ऐतिहासिक वर्णन यत्र-तत्र उपलब्ध है, इसीलिए महाभारत काल से लेकर गौतम बुद्ध के आविर्भाव के समय का राजनीतिक इतिहास शृंखलाबद्ध नहीं किया जा सका। इस दीर्घकाल का क्रमबद्ध इतिहास लिखने में प्रचुर सामग्री का अभाव सबसे बड़ी समस्या है। पुराणों तथा बौद्ध और जैन धर्म के ग्रंथों में इस दीर्घकाल की अनेक घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है परंत इनमें इतिहास धर्म

घुल-मिल गई हैं कि उनमें से ऐतिहासिक तत्वों को पृथक कर उन्हें शृंखलाबद्ध करना अत्यंत दुष्कर कार्य है।

आर्यों के वैदिक युग में किसी एक महान पूर्वज से उत्पन्न हुई संतान और उसके वंशज विभिन्न परिवारों में रहते थे। इन्हीं परिवारों के समूह को 'जन' कहते थे। उत्तर वैदिक काल तक आर्यों की राजनीतिक व्यवस्था का आधार जन था। ऋग्वेद में वर्णित है कि आर्य अनेक जनों में विभक्त थे। एक ही जाति पुरुष से उत्पन्न विभिन्न कुटुम्बों के समुदाय को जन कहा जाता था। प्रारंभ में इन जनों का अपना कोई निश्चित स्थान नहीं था कालांतर में उनके स्थायी राज्य स्थापित हुए। ये स्थायी राज्य ही जनपद कहलाए। ऋग्वेद और वैदिक संहिताओं में जन शब्द का ही उल्लेख मिलता है जनपद का नहीं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि लगभग एक सहस्र ई.पू. से पांच सौ ई.पू. तक के काल में अनेक जनपदों का प्रादुर्भाव हुआ। एक प्रकार से जनपद राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन की इकाई बन गए। प्रत्येक जनपद अनेक ग्रामों और नगरों से मिलकर बना था जिसकी अपनी अलग राजनीतिक व्यवस्था थी, अलग शासन था। कालांतर में विकसित जनपद जातीय इकाई की अपेक्षा एक राजनीतिक इकाई के रूप में विकसित हो गया था। आवागमन अधिक सुलभ हो गया, लोगों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। अनेक वर्गों और जातियों के लोग जनपद राज्यों में जाकर स्थायी रूप से रहने लगे। गांवों

और नगरों की संख्या में वृद्धि हुई। इस प्रकार प्रत्येक जनपद का विस्तार हो गया। सीमा विस्तार की भावना और पारस्परिक युद्धों से भी जनपद अपेक्षाकृत विस्तृत हो गया। छोटे जनपद महाजनपद बन गए। ये महाजनपद स्वतंत्र सार्वभौम सत्तात्मक राज्य थे।

टिप्पणी

महात्मा बुद्ध के उदय से पूर्व भारत में 16 महाजनपद थे, इसीलिए अनेक इतिहासकारों ने इस युग को महाजनपद युग कहा है। 16 महाजनपदों का विवरण निम्नवत है–

1. **अंग**–इस जनपद की राजधानी चंपा थी। यह मगध के अंतर्गत आधुनिक भागलपुर के निकट था। प्रारंभ में अंग अत्यंत शक्तिशाली जनपद था। ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत, जातक ग्रंथों और पुराणों में अंग के राजाओं का उल्लेख है। मगध राज्य की राजधानी राजगृह अंग राज्य का एक नगर था। राजधानी चंपा नगर बौद्ध काल में अपने वाणिज्य, वैभव और समृद्धि के लिए प्रख्यात था। यह चंपा नदी और गंगा के तट पर बसा था। प्रारंभ में इस जनपद के राजाओं ने ब्रह्मदत्त के सहयोग से मगध के कुछ राजाओं को पराजित भी किया था, किंतु कालांतर में इनकी शक्ति क्षीण हो गई और इन्हें मगध से पराजित होना पड़ा।
2. **मगध**–यह आधुनिक बिहार के पटना और गया जिले तक व्याप्त था। इसकी राजधानी गिरीव्रज या राजगृह थी। मगध में सर्वप्रथम राजवंश की स्थापना वृहद्रथ ने की थी। मगध ने अपनी शक्ति का बहुत विस्तार कर लिया था और धीरे-धीरे मगध राज्य का इतना अधिक विस्तार हुआ कि इसके आस-पास के सभी राज्य इसमें विलीन हो गए।
3. **काशी**–इस राज्य का क्षेत्र आधुनिक वाराणसी या बनारस के आसपास था। इस महाजनपद की राजधानी वाराणसी ही थी। यह अत्यंत वैभवशाली और धन संपन्न

टिप्पणी

तथा शक्तिशाली राज्य था। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पिता काशी के सम्राट थे। ब्रह्मदत्त के शासन काल में काशी की बहुत उन्नति हुई थी। काशी और कौशल में सीमा विस्तार के लिए सदैव संघर्ष होता था परिणामस्वरूप काशी राज्य की शक्ति क्षीण होने पर वह कौशल राज्य में विलीन कर दिया गया।

4. **कौशल**–आधुनिक अवध के अनेक भाग इसके अंतर्गत थे। रामायण युग में कौशल की राजधानी अयोध्या थी परंतु बौद्धकाल में श्रावस्ती इसकी राजधानी हो गई थी। कौशल राज्य दो भागों में विभक्त था, उत्तर कौशल जिसकी राजधानी श्रावस्ती का अत्यधिक व्यापारिक महत्व था जिसके कारण यह व्यापार, वाणिज्य व समृद्धि का केंद्र था। कौशल व काशी में परस्पर वैमनस्य एवं संघर्ष परंपरागत था, परिणामस्वरूप कौशल नरेश कंस ने काशी को अपने राज्य में विलीन कर लिया। सातवीं शताब्दी में कपिलवस्तु के शाक्यों ने भी कौशल राज्य की प्रभुता स्वीकार की थी। बौद्धकाल में यह महाजनपद अत्यंत महत्वपूर्ण, वैभवपूर्ण एवं समृद्धशाली था। तत्कालीन समय में यहां का राजा प्रसेनजित था। प्रसेनजित का व्यक्तिगत जीवन अशांतिपूर्ण था। अतः वह शांति व ज्ञान प्राप्ति हेतु महात्मा बुद्ध के पास आया करता था। कालांतर में कौशल की भी शक्ति क्षीण हो गई और मगध ने कौशल को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

5. **वज्जि**–कई जातियों के संगठन स्वरूप वज्जि राज्य की उत्पत्ति हुई थी। यह आठ गणराज्यों का एक संघ था। यह संघ राज्य आधुनिक बिहार का उत्तरी प्रदेश था। इसके अंतर्गत विदेह, लिच्छवि और वज्जि प्रमुख राज्य थे। विदेह की राजधानी मिथिला थी जो राजा जनक के समय उत्तर भारत में राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का केंद्र हो गई थी। वैशाली वज्जि की राजधानी थी तथा लिच्छवियों की राजधानी भी वैशाली थी। वैशाली अत्यंत समृद्ध नगर था। वज्जि संघ के राज्य अपने पारस्परिक मतभेदों और फूट के कारण मगध की बढ़ती हुई शक्ति का विरोध न कर सके और अंत में मगध के अजातशत्रु ने वज्जि को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

6. **मल्ल**–मल्ल राज्य भी दो जनपदों का संघ था। एक की राजधानी कुशीनारा थी जो कुशीनारा के मल्ल कहलाते थे तथा दूसरे की राजधानी पावा थी जो पावा के मल्ल कहलाए। आधुनिक समय में उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में कुशीनारा तथा इसके दक्षिण-पूर्व में आधुनिक फाजलपुर ग्राम पावा नगरी था। प्रारंभ में मल्ल राज्य राजतंत्रात्मक थे। जातक ग्रंथों में इसके सम्राटों का उल्लेख मिलता है परंतु कालांतर में यहां प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली स्थापित हो गई थी। मल्लों की लिच्छवियों से सदैव ही वैमनस्यता रहती थी। मल्ल लोग बड़े साहसी, वीर और युद्धप्रिय थे तथा बुद्ध के बड़े प्रशंसक और भक्त थे। मगध के बढ़ते हुए विस्तार का प्रतिरोध मल्लों ने किया था परंतु वे पराजित हो गए और मल्ल राज्य मगध राज्य में विलीन कर लिया गया।

7. **चेदि**–मध्य प्रदेश का बुंदेलखंड और उसके आसपास का क्षेत्र चेदि राज्य था। शक्तिमती (सोत्थिवती) इसकी राजधानी थी। जातक ग्रंथों एवं महाभारत में चेदि राज्य का उल्लेख है।

टिप्पणी

8. **वत्स**–वत्स राज्य की राजधानी कौशाम्बी थी, जो इलाहाबाद से कुछ दूर ही स्थित थी। कौशाम्बी संस्कृति और व्यापार का प्रसिद्ध नगर था क्योंकि यह नगर उस व्यापारिक मार्ग पर था जो विदिशा व उज्जैन होते हुए दक्षिण भारत को जाता था। अनेक पौराणिक ग्रंथों में इस राज्य और इसके राजाओं का उल्लेख मिलता है। छठी शताब्दी ई.पू. वत्स का शासक उदयन था। उदयन के पश्चात वत्स राज्य का पतन हो गया।

9. **कुरु**–कुरु की राजधानी इंद्रप्रस्थ थी। वर्तमान समय में दिल्ली और मेरठ के समीपवर्ती प्रदेश कुरु राज्य था। तत्कालीन समय में यह राज्य अपने आचार, सदाचार और शील के लिए प्रसिद्ध था। प्रारंभ में कुरु में राजतंत्र शासन था, परंतु कालांतर में यहां प्रजातंत्रात्मक शासन स्थापित हो गया। बौद्ध युग में वह गणराज्य था। यहां के एक सामंतपुत्र ने गौतम बुद्ध से दीक्षा ली थी।

10. **पांचाल**–आधुनिक रूहेलखंड और गंगा-यमुना के बीच का दोआब का क्षेत्र पांचाल राज्य में सम्मिलित था। यह राज्य दो भागों में विभक्त था–दक्षिण पांचाल जिसकी राजधानी काम्पिल्य थी तथा उत्तर पांचाल, जिसकी राजधानी अहिच्छत्र थी। दक्षिण पांचाल व कुरु दोनों मिलकर उत्तर पांचाल पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। प्रारंभ में पांचाल में राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली थी तथा बाद में यहां लोकतंत्रात्मक शासन स्थापित हो गया और बौद्ध काल में यह एक गणतंत्र राज्य था।

11. **मत्स्य**–मत्स्य राज्य की राजधानी विराट नगर थी। आधुनिक राजस्थान में जयपुर, अलवर और भरतपुर के क्षेत्र इस राज्य में सम्मिलित थे। यह राज्य शक्तिशाली राज्य नहीं था। महाभारत काल में यह चेदि के अधीन था। यहां संभवत: राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी। कालांतर में यह राज्य मगध के अधीन हो गया।

12. **सूरसेन**–सूरसेन राज्य की राजधानी मथुरा थी। यह नगर अपने वैभव, समृद्धि और ज्ञान विज्ञान के लिए प्रसिद्ध था। यहां यादवों का शासन था। सूरसेन में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार हुआ। कालांतर में यह राज्य मगध साम्राज्य का अंग बन गया।

13. **अस्सक या अस्मक**–यह दक्षिण भारत का राज्य था। इसकी राजधानी पोतन, पोटली या पोदनी थी। अस्सक के राजा इक्ष्वाकुवंशीय थे। प्राग बौद्धकाल में अस्सक नरेशों और अवंति के नृपतियों में सीमा विस्तार के लिए संघर्ष होते रहे, जिसका फल यह हुआ कि कुछ समय के लिए अस्सक राज्य अवंति हो गया।

14. **अवंति**– अवंति मालवा में था। यह दो भागों में विभक्त था। एक उत्तर अवंति जिसकी राजधानी उज्जयनी या उज्जैन थी दूसरा दक्षिणी अवंति जिसकी राजधानी महिष्मती या माहेश्वर थी। अवंति का सबसे प्रसिद्ध शासक महासेन चंड प्रद्योत था। वह बुद्ध का समकालीन था और उसने बौद्ध धर्म को अंगीकार कर लिया था। परिणामस्वरूप उज्जैन बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केंद्र बन गया।

15. **गांधार**–गांधार आजकल पाकिस्तान में है। कश्मीर, पश्चिमोत्तर प्रदेश पेशावर, तक्षशिला का प्रदेश इसके अंतर्गत आते हैं। इस राज्य की राजधानी तक्षशिला थी। गांधार व्यापार एवं ज्ञान-विज्ञान का केंद्र था। गांधार के शासक द्रुह्य वंशी थे।

टिप्पणी

16. **कम्बोज**—यह गांधार राज्य का पड़ोसी राज्य था और इसकी राजधानी हाटक थी। उत्तर वैदिक काल में कम्बोज ब्राह्मण विद्या और धर्म का केंद्र था। इस महाजनपद की राजधानी राजपुर थी। प्रारंभ में यहां राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी परंतु बाद में यहां गणतंत्र स्थापित हो गया। बौद्ध ग्रंथों में कम्बोज निवासियों को अनार्य परंपराओं को मानने वाला कहा गया है। चीनी विद्वान ह्वेनसांग ने भी कम्बोजवासियों को असभ्य और कुरूप बताया है।

उपर्युक्त सभी महाजनपदों का उल्लेख बौद्ध धर्मग्रंथों में है। वज्जि, मल्ल, सूरसेन गणराज्य थे और मगध, वत्स, अवंति और कौशल बड़े प्रसिद्ध राजतंत्र थे। गणराज्यों में जनता के प्रतिनिधि शासन करते थे और राजतंत्र में वंशक्रमानुगत राजा राज्य करते थे। इन सोलह महान राज्यों के अतिरिक्त बौद्ध धर्म के ग्रंथों में कुछ अन्य राजाओं का भी वर्णन है। ये सभी गणराज्य थे। इनमें कुछ राज्य विभिन्न गणराज्यों के संघ थे।

1.2.2 गणतंत्रीय समुदाय

महाजनपद काल में राजतंत्र एवं गणतंत्र दोनों प्रकार की शासन प्रणाली विद्यमान थी। गणतंत्रों के अध्ययन से पूर्व राजतंत्र एवं गणतंत्र में प्रमुख अंतर जान लेना समीचीन होगा।

राजतंत्र और गणतंत्र में अंतर

- राजतंत्र में एकमात्र शासक ही कृषकों से वसूले गए राजस्व का अधिकारी होता था, लेकिन गणतंत्र में राजस्व पर प्रत्येक कबीलाई कुलीन का अधिकार होता था जिसे राजा कहा जाता था।
- प्रत्येक राजतंत्र शासक के पास एक नियमित व्यावसायिक सेना होती थी। गणतंत्र शासन में प्रत्येक राजा अपने सेनापति के अधीन सेना का प्रबंध करने के लिए स्वतंत्र था।
- राजतंत्र में ब्राह्मण प्रभावशाली थे लेकिन प्रारंभिक गणतंत्र में उनके लिए कोई स्थान नहीं था।
- गणतंत्र व्यवस्था में कुलीनों की समिति के अंतर्गत कार्य किया जाता था जबकि राजतंत्र में निर्णय प्रक्रिया केवल एकमात्र शासक तक ही सीमित थी।

गणराज्य

टिप्पणी

अब हम प्रमुख गणराज्यों का अध्ययन करेंगे।

1. **कपिलवस्तु के शाक्य**–महात्मा बुद्ध का जन्म इसी कुल में हुआ था। यहां के शाक्य लोग इक्ष्वाकु या सूर्यवंशी थे। इनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। शाक्यों का गणराज्य काफी उन्नत था और इन्होंने अनेक विशाल नगरों का निर्माण किया था। शाक्य बहुत सदाचारी जीवन व्यतीत करते थे। विद्या और कला में उनकी विशेष अभिरुचि थी। वे स्त्रियों का बहुत सम्मान करते थे। वे अपने वंश और रक्त की पवित्रता बनाए रखने के लिए अपने विवाह संबंध स्वजातीय परिवारों में ही करते थे। शाक्यों का शासन प्रबंध एक परामर्शदात्री परिषद करती थी, जिसके सदस्यों की संख्या पांच सौ थी।
2. **अल्लकप्प के बुली**–यह राज्य आधुनिक शाहाबाद और मुजफ्फरपुर के मध्य में था। यह कोई विशेष शक्तिशाली महत्वपूर्ण राज्य नहीं था।
3. **केसपुत्त के कालाम**–यह छोटा तथा प्राचीन गणराज्य था। गौतम बुद्ध के गुरु आलाम कालाम इसी कुल के थे। इनका संबंध संभवतः शतपथ ब्राह्मण में वर्णित पंचाल केशियों से है।
4. **सुसामगिरी के मग्ग**–ये ऐतरेय ब्राह्मण के प्राचीन वर्ग थे। डॉ. के. सी. जायसवाल के अनुसार, इनकी भूमि में मिर्जापुर तथा उनका समीपवर्ती भूभाग सम्मिलित था। ये वर्तमान पूर्वी उत्तर प्रदेश में स्थित हैं।
5. **रामगाम के कोलीय** - यह राज्य शाक्य राज्य के पूर्व में था। दोनों गणराज्यों के मध्य रोहिणी नदी बहती थी। इसके जल के उपयोग के लिए दोनों राज्यों में संघर्ष रहता था।
6. **पावा के मल्ल**–गोरखपुर के जिले के दक्षिण भाग में पावापुरी थी। इनकी दो शाखाएं थीं। पहली शाखा पावा के मल्ल संभवतः आधुनिक पड़रौना में बसे थे। परंतु डॉ. कनिंघम के इस मत के विरुद्ध इतिहासकार फाजिलपुर को ही पावा मानते हैं। पावा में ही महावीर स्वामी ने पंचत्व प्राप्त किया था।
7. **कुशीनारा के मल्ल**–आधुनिक उत्तर प्रदेश में गोरखपुर जिले में कुशीनारा का मल्ल गणराज्य था। यह मल्लों की दूसरी शाखा थी। आधुनिक कसिया ही कुशीनारा नाम से विख्यात था। मल्ल लोग अपनी विद्या, कला और युद्धप्रियता के लिए प्रसिद्ध थे। दर्शनशास्त्र में मल्लों ने विशेष प्रगति कर ली थी। कुशीनारा में ही महात्मा बुद्ध को परिनिर्वाण प्राप्त हुआ था। मज्झिमनिकाय में मल्लों के राज्यों को संघराज्य कहा गया है। बौद्ध धर्म के उत्थान में मल्लों का विशेष योगदान था।
8. **पिप्पलीवन के मौर्य**–यह गणराज्य शाक्य गणराज्य की एक शाखा है। कुछ शाक्य हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में चले गए और वहां उन्होंने पिप्पलीवन नामक नगर बसाया। इस नगर में मोरों का बाहुल्य था इसलिए इन्हें मौर्य भी कहा गया। मगध साम्राज्य का निर्माता चंद्रगुप्त इन्हीं मौर्यों का वंशज था।
9. **मिथिला के विदेह**–यह राज्य बिहार में था। इसकी राजधानी मिथिला थी। यह नगर व्यापार और संस्कृति का प्रसिद्ध केंद्र था।

टिप्पणी

10. **वैशाली के लिच्छवि**–यह उत्तर बिहार में था। लिच्छवि क्षत्रिय वंश के थे। ये अपने सरल सादे और पवित्र जीवन के लिए प्रसिद्ध थे। इनका गणराज्य विस्तृत एवं शक्तिशाली था। वैशाली जो एक प्रख्यात, महान, वैभवशाली, विस्तृत नगर था, लिच्छवियों की राजधानी था। इक्ष्वाकु के पुत्र विशाल ने वैशाली नगर बसाया था। वर्तमान मुजफ्फरनगर जिले का बसाड़ नामक ग्राम जो गंडक नदी के तट पर बसा है, प्राचीन वैशाली का अवशेष है। यह नगर विशाल राजप्रासाद, सार्वजनिक भवनों, चैत्यों, विहारों, विशाल नगरकोटों, सिद्धद्वारों आदि के लिए प्रख्यात था। तत्कालीन समय में वैशाली प्रत्येक दृष्टि से गौरवशाली था। लिच्छवि के व्यक्ति अपने संगठन, श्रेष्ठ शिक्षा, विद्या, कला, सामाजिक संस्कारों, धार्मिक समारोहों व कार्यों के लिए प्रसिद्ध थे। शासन व्यवस्था प्रजातंत्रात्मक थी। उनके प्रतिनिधियों की एक राज्यसभा थी जो शासन संचालन करती थी। उनका गणराज्य अपनी समृद्धि संपन्नता, ऐश्वर्य, दृढ़शक्ति और बल के लिए प्रख्यात था। ललित विस्तार के अनुसार–लिच्छवियों का शासन अत्यंत सुव्यवस्थित था। 'गणराज्य में 7707 राजा, अनेक उपराजा, सेनापति, भांडागारिक थे। चैक एवं 'मान्यते महम राजा अहम राजेति' से यह परिलक्षित होता है कि लिच्छवियों में राजा या अराजा का कोई भेद न था, प्रत्येक व्यक्ति अपने राजा को राजा मानता था। 7707 राजाओं का जो उल्लेख किया गया है वह संभवत: अपने-अपने क्षेत्र के अधिकारी थे। उनका संगठन लिच्छवि गणराज्य था। लिच्छवियों पर बुद्ध तथा जैन के उपदेशों का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा और अनेक राजकुमारों ने धार्मिक क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किए।

11. **वैशाली के नाग**–इसके अंतर्गत आठ गण थे जिनमें विदेह, ज्ञात्रिक, लिच्छवि तथा वज्जि सम्मिलित थे। उग्र, भोग, इक्ष्वाकु तथा अन्य चार गण थे। ज्ञात्रिक कश्यप गोत्र के क्षत्रिय थे। सूत्रकृतांङ्ग से ज्ञात होता है कि महावीर स्वामी का जन्म इसी कुल में हुआ था क्योंकि उक्त ग्रंथ में सर्वोच्च जिन, ज्ञात्रिपुत्र महावीर कहा गया है। ज्ञात्रिकों का अपना गणराज्य वैशाली, कुंडग्राम तथा वनियगाम से युक्त था और इसका केंद्र कोल्लग नामक स्थान में था।

गणराज्यों का शासन प्रबंध

तत्कालीन साहित्य में दो प्रकार के प्रजातंत्रात्मक राज्यों या गणराज्यों का उल्लेख है। प्रथम राजशब्दोपजीविन में गणराज्यों से तात्पर्य उन गणराज्यों से है जिनमें राजा शब्द का प्रयोग किया जाता था अर्थात जिनके अध्यक्ष राजा कहलाते थे और उसका निर्वाचन करने वाले भी स्वयं को राजा कहते थे, संभवत: इसीलिए कि वे राजा का निर्वाचन करते थे और स्वयं भी उस पद के लिए निर्वाचित हो सकते थे। इस श्रेणी में लिच्छवि, पांचाल, मल्ल आदि गणराज्य थे। दूसरी श्रेणी में वे गणराज्य थे जिनके नागरिक कृषि और सैनिक निपुणता को अपने अस्तित्व का आधार मानते थे। इन राज्यों में सैनिक कार्य इतने महत्वपूर्ण माने जाते थे कि गण के प्रत्येक नागरिक के लिए सैनिक कार्यों में निपुण होना अनिवार्य था। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यशब्दोपजीविन गणराज्यों में उनकी स्वयं की और उनके संघ की रक्षा के लिए एक नियमित और वैतनिक सेना रहती थी। इसके विपरीत वार्त्ताशस्त्रोपजीविन गणराज्यों में, संघराज्यों में उनके सभी नागरिक ही सैनिक होते थे। वे कृषि करते थे और साथ ही सैनिक कार्यों में भी निपुण होते थे। सेना की आवश्यकता होने पर वे स्वयं ही सेना बना लेते थे। इस प्रकार इन राज्यों में नियमित और वैतनिक सेना तो नगण्य थी अपितु समस्त नागरिक ही सेना के अंग माने जाते थे।

टिप्पणी

यद्यपि गणों के संविधान एवं शासन व्यवस्था के विषय में स्पष्ट प्रमाण नहीं हैं परंतु जितने भी साक्ष्य इस बारे में मिलते हैं वे निश्चित एवं प्रमाणित प्रकृति के हैं। राज्य की सर्वोच्च कार्यपालिका का प्रधान राजा होता था। वह (राजा) एक निर्वाचित व्यक्ति होता था। राजा की नियुक्ति किस तरह से होती थी इसके निश्चित प्रमाण नहीं हैं। महाभारत के अनुसार, गणराज्य में समस्त नागरिक जन्म से समान होते थे और समस्त कुलों में भी समानता होती थी। गणराज्य में समस्त नागरिक जन्म से समान समझे जाते थे, परंतु कुल राज्यों में समानता का सिद्धांत कुलों तक सीमित था। यहां कुल से अभिप्राय परिवारों से नहीं अपितु राजाओं के वंशों से है। राजाओं के वंशों से तात्पर्य उन समस्त क्षत्रियों से है जिनका शासन के लिए अभिषेक होता था और जो स्वयं को राजा कहते थे। कुल राज्यों में संभवत: इन कुलों के प्रतिनिधि ही संघ सभा या राज्य की सर्वोच्च व्यवस्थापिका सभा के सदस्य होते थे। संभवत: गण कुलों की सभा थी। कुल राज्यों में महत्वपूर्ण पदों पर भी कुलपुत्रों की नियुक्ति की जाती थी। प्रशासकीय अधिकार कुलपुत्रों को प्राप्त थे। वे राजा, उपराजा, सेनापति और भांडागारिक के महत्वपूर्ण पद प्राप्त कर सकते थे। कुलपुत्र भी इन प्रशासकीय और आर्थिक महत्व के पदों को पाकर स्वयं को एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं वरन समस्त संघ या गणराज्य का प्रतिनिधि मानते थे। यही भवन कुल राज्यों के प्रजातंत्रात्मक दृष्टिकोण का पूर्ण परिचायक था।

शासन का स्वरूप

गणराज्यों के शासन और सत्ता के अधिकार किसी व्यक्ति विशेष के हाथों में केंद्रीभूत होने की अपेक्षा गण अथवा विभिन्न व्यक्तियों के हाथों में होते थे। प्रशासन के सूत्रवंश परंपरागत किसी व्यक्ति के हाथों में नहीं होते थे अपितु वे एक गण या समूह अथवा परिषद् के हाथों में होते थे। इस परिषद के सदस्य उच्च वर्ग के कुलीन लोग होते थे।

राज्य का सर्वोच्च अधिकारी–राज्य का नायक, प्रधान या राष्ट्रपति गणराज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था। प्रधान का निर्वाचन संघ की सभा द्वारा होता है। यद्यपि यह पद वंशानुगत नहीं था, परंतु कभी-कभी यह पद वंशानुगत होता था लेकिन उसमें पौरुष, साहस, बुद्धि, विवेक, अनुभव, धर्मशास्त्रों का ज्ञान आदि गुण अवश्य होने चाहिए। प्रधान संघ की सभा की अध्यक्षता करता था तथा मंत्रियों के कार्यों के संचालन व उन्हें उत्तरदायित्व सौंपना राजा का ही कर्तव्य था। राजा निरंकुश नहीं था।

मंत्रिपरिषद–शासन को सुचारु रूप से चलाने व राजा की सहायता करने के लिए एक मंत्रिपरिषद होती थी। सामान्य कार्यकारिणी शक्तियां परिषद के मंत्रियों में निहित रहती थीं। परिषद के सदस्यों की संख्या गणराज्य के आकार पर निर्भर होती थी। उदाहरणार्थ लिच्छवियों के गणराज्य की मंत्रिपरिषद में केवल नौ सदस्य थे और मल्लों की मंत्रिपरिषद में केवल चार सदस्य होते थे।

व्यवस्थापिका सभा–प्रत्येक गणराज्य की एक व्यवस्थापिका सभा होती थी जिसे संस्थागार कहते थे। गण की शक्ति वस्तुत: संस्थागार में निहित थी। संस्थागार मुख्य नगरों में विद्यमान थे। इन भवनों में केंद्रीय अधिवेशन होते थे। संस्थागार, वस्तुत: लोकसभा का ही पूर्व रूप कहा जा सकता है। संस्थागार के सदस्यों को भी राजा कहकर संबोधित किया जाता था। संभवत: गणराज्यों में उनके ग्राम तथा नगर सभाओं के समस्त नागरिकों द्वारा

टिप्पणी

निर्वाचित अध्यक्ष भी केंद्रीय संस्थागार या सभा के सदस्य रहे होंगे। राजतंत्र की परिषदों में व्यापारियों और शिल्पियों के संघों और वर्गों के निर्वाचित अध्यक्ष सदस्य रहते होंगे। बड़े-बड़े गणराज्यों के केंद्रीय संस्थागार या नगर के संस्थागार होते थे। सभी प्रकार के मामले चाहे उनका संबंध देश की शांति से हो, युद्ध से हो, नागरिकता से हो, आर्थिक समस्या से हो, इस सभा में उपस्थित होते थे। प्रस्तावों पर बहस होती थी और बहुमत का निर्णय सबको मान्य होता था।

प्रशासन के सभी अधिकार इसी संस्था में निहित होते थे। राज्य के सर्वोच्च अधिकारी; जैसे प्रधान या राष्ट्रपति, सेनापति, मंत्रियों, अधिकारियों की नियुक्ति यह संस्था करती थी। गणराज्य की परराष्ट्र नीति पर इसका पूर्ण नियंत्रण रहता था। संधि विग्रह का निर्णय भी इस संस्था द्वारा होता था। संस्थागार, राज्य के विधि-विधान, नियम बनाती थी, नीतियों का निर्णय करती थी तथा उन नियमों व नीतियों को व्यावहारिक रूप प्रदान करती थी। संस्थागार के अधिवेशन और बैठकों की सभी कार्यवाही को लिखा जाता था। आज के समान ही दर्शकों को संस्थागार के अधिवेशनों को या सभा की कार्यवाही देखने का अवसर प्रदान किया जाता था।

न्याय व्यवस्था–राज्य में शांति बनाए रखने के लिए तथा न्यायदान के लिए पूर्ण व्यवस्था थी। अपराधों की रोकथाम की पूर्ण व्यवस्था थी। विनिश्चय महापात्र कर्मचारी अपराधियों की जांच करता था और तथ्यों का संग्रह करता था। न्याय व्यवस्था में व्यावहारिक, सूत्रधार, अट्ठकुलक उपराजा और राजा मुख्य अधिकारी थे। अपराध की गुरुता के आधार पर अपराधियों को इन अधिकारियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था और उन्हें दंड और कानून के लिखित संग्रह के अनुसार दंड दिया जाता था। दंड की व्यवस्था 'पवेणिपोत्थक' नामक कर्मचारी करता था। दंड विधान कठोर था।

न्याय व्यवस्था प्रजातंत्रीय पद्धति पर आधारित थी। दोषी को स्वयं को निर्दोष साबित करने का पूरा अवसर दिया जाता। व्यक्ति को पूर्णतया अपराधी सिद्ध होने पर ही दंड दिया जाता था। बुद्धघोष की टीका में कहा गया है कि वज्जियों में एक अपराधी को तभी दंडित किया जाता था जबकि लगातार 8 न्यायाधिकरण उसे अपराधी घोषित करते थे। दंड मनमाने रूप से नहीं थोपा जाता था बल्कि प्राचीन ग्रंथों के आदेशानुसार ही उन्हें दंडित किया जाता था। 8 न्यायाधिकरणों में प्रत्येक न्यायाधिकरण को यह अधिकार था कि वह दोषी को छोड़ सके। न्यायालय के अधिकारियों को विनिच्छय, महामात्र, वोहारिक, सूत्रधार, अट्ठकूलक, भांडागारिक, सेनापति, उपराजा तथा राजा के नाम से संबोधित किया जाता था। वज्जि के लोग न्यायव्यवस्था में पर्याप्त ज्ञान रखते थे और उनकी न्याय व्यवस्था की कुशलता लोक प्रसिद्ध थी।

स्थानीय स्वशासन–गणराज्यों की विशालता के कारण स्थानीय स्वशासन को प्रोत्साहित किया जाता था। विशाल नगरों में स्थानीय स्वशासन प्रणाली थी। नगर की परिषद वर्तमान नगरपालिका के समान थी। इस परिषद में नागरिकों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त वणिकों, उद्योग व्यवसायियों, शिल्पियों, कृषकों आदि के भी प्रतिनिधि रहते थे। स्थानीय विषयों की शासन व्यवस्था इनके हाथों में ही रहती थी। संभव है ग्रामीण क्षेत्रों में स्वशासन हेतु छोटे-छोटे कस्बों और ग्रामों में आधुनिक ग्राम पंचायतों के समान स्थानीय परिषदें रही होंगी। नगर और ग्राम की संस्थाएं अपने आंतरिक कार्यों में लगभग स्वतंत्र रहती थी। संभवतः संस्थाओं पर केंद्रीय सरकार का कुछ नियंत्रण रहा होगा।

गणराज्यों के संघ

टिप्पणी

अनेक गणराज्य छोटे थे और उनके साधन भी सीमित थे। वह उतने शक्तिशाली भी नहीं थे जितने कि बड़े गणराज्य थे। अत: उन्हें सदैव अपने अस्तित्व को बचाने का भय रहता था। अत: छोटे गणराज्य मिलकर संघों का निर्माण करते थे। ऐसे संघ को संघात भी कहा जाता था। अंधक, वृष्णि, यादव, कुकुर तथा भोज गणराज्यों ने मिलकर अंधक-वृष्णि संघ स्थापित किया था। त्रिगर्त संघ में त्रिगर्त देश के छ: गणराज्य सम्मिलित थे। मल्ल संघ भी गणराज्यों का ऐसा ही संयुक्त संघ था। इनकी एक संयुक्त सभा होती थी जिसे संघ मुख्य कहते थे। संघ के विभिन्न गणराज्यों के शासक अपने राज्यों के प्रतिनिधियों के नेता होते थे। संघ के प्रमुख कार्य थे–सैनिक स्तर पर संघ को दृढ़ करना, गणराज्यों के साधनों से एक विशाल सम्मिलित सेना का निर्माण करना, सैनिक शक्ति को श्रेष्ठ करना, विदेश नीति के अंतर्गत अन्य राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना तथा युद्ध एवं संधि की घोषणा करना, गणराज्यों के पारस्परिक संबंधों तथा उनके अन्य सामूहिक हितों की समस्याओं पर निर्णय देना, संघात के लिए नियमों एवं उपनियमों का निर्माण करना आदि। परंतु आंतरिक मामलों में संघ पूर्णत: स्वतंत्र रहे होंगे।

उपर्युक्त विवरण से गणराज्य के शासन पर प्रकाश पड़ता है। इस राजतंत्र शून्य राजनैतिक प्रणाली का भारत में सर्वप्रथम विकास हुआ था।

गणराज्यों का पतन

गणराज्य और उनकी प्रजातंत्रात्मक शासन प्रणाली तत्कालीन राजनीतिक जागरूकता और अभिरुचि के द्योतक हैं। महात्मा बुद्ध गणराज्यों की शासन प्रणाली से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपने धर्म में बौद्ध संघ का संगठन भी इसी प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था पर किया था, परंतु तीसरी व चौथी शताब्दी तक आते-आते ये गणराज्य लुप्त हो गए क्योंकि महत्वाकांक्षी राजाओं की महत्वाकांक्षा बढ़ने लगी और उन्होंने अपनी सीमाओं का विस्तार कर इन गणराज्यों को अपने राज्यों में विलीन कर लिया। गणराज्यों के पतन के अन्य कारण भी थे–

1. पारस्परिक राजनीतिक द्वेष के कारण आपसी संघर्ष होते थे, जिससे इनकी शक्ति क्षीण हो गई।
2. एकता एवं संगठन का अभाव था। सदस्य गणराज्य के हितों की अपेक्षा अपने हितों को सर्वोपरि मानने लगे थे।
3. राष्ट्रीय हित के स्थान पर स्थानीय हित सर्वोपरि हो गए। राज्यों के लिए जो रक्त रंजित संघर्ष प्रारंभ हुआ उनमें राजनीतिक चेतना के आधार गणराज्य समाप्त हो गए।
4. राजाओं की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता के कारण प्रजा के प्रतिनिधियों का स्थान व गौरव क्षीण हो गया था और राज्यपक्ष के समर्थक सामंतों के सम्मान और शक्ति में अधिक वृद्धि हुई थी। अब राजपक्ष के समर्थक जागीरदारों और अधिकारियों का जो स्थान था वह प्रजापक्ष के प्रतिनिधियों का नहीं था।

टिप्पणी

5. राजतंत्र के राजाओं की स्वेच्छाचारिता के कारण राष्ट्रीय चेतना का अभाव व नैतिकता में कमी आई थी। अब न तो सामाजिक और न ही राजनीतिक जीवन के उच्च श्रेष्ठ आदर्श रहे थे।
6. मगध, अवंति, कौशल जैसे विशाल राज्यों का उदय हो गया था। उनके देवत्व और श्रेष्ठ राजनीतिक आदर्शों ने गणराज्यों के अध्यक्षों और प्रतिनिधियों की अपेक्षा लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया।
7. राजतंत्र के दृढ़ और सफल शासन, प्रबल विदेश नीति तथा राज्य विस्तार से गणराज्यों की अपेक्षा राजतंत्र अधिक लोकप्रिय हो गया।
8. गुप्त शासकों की साम्राज्यवादी नीति ने सभी गणराज्यों को अपने साम्राज्य में विलीन कर लिया।

यद्यपि प्राचीन भारत के ये गणराज्य लुप्त हो गए, परंतु निश्चय ही उनके द्वारा स्थापित प्रजातंत्रात्मक परंपराएं देश की अमर निधि हैं। काल की क्रूर तूलिका भी उन्हें धूमिल नहीं कर सकेगी।

अपनी प्रगति जांचिए

1. निम्न में से कौन एक महाजनपद है?
   (क) अंग (ख) मगध
   (ग) कौशल (घ) उपरोक्त सभी
2. छठी शताब्दी ई.पू. का प्रमुख गणतंत्र कौन सा है?
   (क) कपिलवस्तु के शाक्य (ख) वैशाली के लिच्छवि
   (ग) मिथिला के विदेह (घ) उपरोक्त सभी

1.3 मगध साम्राज्य का उदय

इस अध्याय में हम मगध साम्राज्य के उदय के कारणों एवं प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

मगध महाजनपद के उदय के कारण

मगध महाजनपद 16 महाजनपदों में सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद था। मगध का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। मगध उत्तर भारत के विशाल तटवर्ती मैदानों के ऊपरी एवं निचले भागों के मध्य अति सुरक्षित स्थान पर था। पांच पहाड़ियों के मध्य एक दुर्गम स्थान पर स्थित होने के कारण वहां तक शत्रुओं का पहुंचना प्रायः असंभव था।

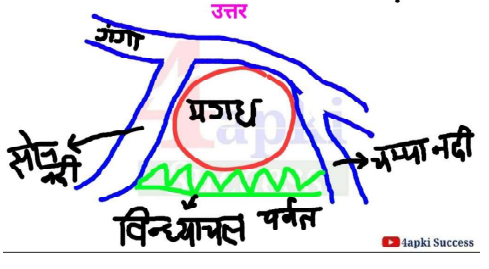

टिप्पणी

गंगा नदी के कारण भी मगध में व्यापारिक सुविधाएं बढ़ीं और आर्थिक दृष्टि से मगध के महत्व में वृद्धि हुई। मगध साम्राज्य की भूमि अत्यधिक उपजाऊ थी अत: आर्थिक दृष्टि से मगध संपन्न राज्य था। मगध साम्राज्य के उत्कर्ष में हाथियों के बाहुल्य ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मगध साम्राज्य में लोहा बहुतायत और सरलता से मिलता था। मगध की शक्ति का यह महत्वपूर्ण स्रोत था। मगध का क्षेत्र लौह उत्पादन का केंद्र था। लोहे का उपयोग मजबूत युद्ध शस्त्रों एवं कृषि उपकरण दोनों में उपयोगी था। जंगल साफ करके खेती के लिए भूमि तैयार की जा सकती थी और उपज बढ़ाई जा सकती थी। मगध के लोगों की सोच तथा दृष्टिकोण में खुलापन था। मगध क्षेत्र वैदिक संस्कृति से कम प्रभावित था। यहां के लोगों ने नये-नये परिवर्तनों को भी अपनाया था।

मगध के शासकों की भूमिका ने भी मगध साम्राज्य के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी-

- बिंबिसार ने वैवाहिक संबंध, मित्रतापूर्ण संबंध बनाए।
- अजातशत्रु भी साम्राज्य विस्तार का आकांक्षी था।
- कई शासकों (शिशुनाग तथा महापद्मनंद) ने कूटनीति का उपयोग किया।

ई.पू. छठी-पांचवीं शताब्दी के दौरान बिंबिसार के नेतृत्व में मगध मध्य गंगा के मैदान के प्रमुख दावेदार के रूप में तेजी से उभरा। वह बुद्ध का समकालीन था। बिंबिसार मगध का प्रथम महत्वपूर्ण शासक माना जाता है। राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उसने कौशल के राजघराने से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इस विवाह में उसे काशी का एक जिला दहेज के रूप में मिला। गांधार के राज्य के साथ उसका संबंध सौहार्दपूर्ण था। कूटनीतिक संबंधों को मगध की शक्ति का प्रतीक माना जा सकता है। मगध के उत्तर में अंग राज्य था, जिसकी राजधानी चंपा एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र थी। चंपा एक महत्वपूर्ण नदी-बंदरगाह था। कहा जाता है कि बिंबिसार के आधिपत्य में 80,000 गांव थे। परंपरागत सूत्रों से पता चलता है कि अजातशत्रु ने अपने पिता बिंबिसार को बंदी बना लिया था और वह (बिंबिसार) भूख से तड़प-तड़प कर मर गया था। ऐसा माना जाता है कि यह घटना ई.पू. 492 के आसपास घटी होगी।

आंतरिक समस्याओं और गद्दी पर अजातशत्रु के बैठने से मगध के निर्यात में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मगध के नए राजा ने आक्रामक नीति अपनाई और अपने राज्य क्षेत्र

टिप्पणी

का विस्तार किया। उसने काशी पर अधिकार कर लिया और अपने मामा, कौशल के नरेश से सौहार्द का संबंध समाप्त कर उन पर आक्रमण कर दिया। गंगा के दक्षिण तक फैला हुआ वज्जि गणराज्य अजातशत्रु के आक्रमण का अगला निशाना बना। वज्जि संघ के युद्ध का सिलसिला लगभग सोलह वर्षों तक चलता रहा। अंत में अजातशत्रु वहां आंतरिक कलह पैदा कर धोखे से उसे पराजित करने में सफल हुआ। अपने शक्तिशाली शत्रु अवंति पर आक्रमण की पूरी तैयारी अजातशत्रु ने कर ली थी परंतु आक्रमण किन्हीं कारणों से संपन्न न हो सका। फिर भी, उसके शासनकाल में काशी और वैशाली (वज्जि महाजनपद की राजधानी) मगध के अधीन आ चुके थे। इस प्रकार मगध गांगेय प्रदेश में सबसे शक्तिशाली राज्य माना जाने लगा।

यह माना जाता है कि अजातशत्रु ने 492 से 460 ई.पू. तक राज्य किया। उदयन (460-444 ई.पू.) उसका उत्तराधिकारी था। उदयन के राज्यकाल में मगध का क्षेत्र हिमालय के उत्तर से लेकर छोटा नागपुर की पहाड़ियों के दक्षिण तक फैला हुआ था। यह कहा जाता है कि उसने गंगा और सोन के मुहाने पर एक किला बनवाया था। उदयन के शासन काल में राज्य क्षेत्र काफी विस्तृत था, परंतु वह इन पर कुशलतापूर्वक शासन करने में असक्षम था। उदयन के बाद चार शासक एक के बाद एक गद्दी पर बैठे, परंतु वे अयोग्य सिद्ध हुए। ऐसा माना जाता है कि अंतिम राजा को मगध की जनता ने राज सिंहासन से उतार दिया। 413 ई.पू. में बनारस के राज्यपाल शिशुनाग को राजा नियुक्त किया था। शिशुनाग वंश ने थोड़े समय तक शासन किया और महापद्मनंद ने राज्य पर अधिकार कर नंद वंश की शुरुआत की।

326 ई.पू. में उत्तर-पश्चिमी भारत पर सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय मगध और लगभग संपूर्ण गंगा के मैदान पर नंद वंश का शासन था। यहीं से भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक काल शुरू होता है। इस कारण नंदों को कभी-कभी भारत का प्रथम साम्राज्य-निर्माता कहा जाता है। उन्हें केवल मगध का राज्य विरासत में मिला था और उसके बाद उन्होंने उसकी सीमा का विस्तार किया।

परवर्ती पुराण ग्रंथों में महापद्मनंद का उल्लेख क्षत्रियों के विनाशकर्ता के रूप में हुआ है। यह भी कहा गया है कि उसने समकालीन सभी राजघरानों से शक्ति छीन ली। यूनानी ग्रंथ नंद साम्राज्य की शक्ति का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि नंदों के पास विशाल सेना थी, जिसमें 20,000 घुड़सवार, 2,00,000 पैदल सैनिक, 2,000 रथ और 3,000 हाथी थे। इस बात के भी संकेत मिले हैं कि नंदों के संबंध दक्कन और दक्षिण भारत में भी थे। राजा खारवेल के हाथीगुंफा अभिलेख में इस बात के संकेत मिले हैं कि नंदों के संबंध दक्कन और दक्षिण भारत से भी थे। राजा खारवेल के हाथीगुंफा अभिलेख में इस बात का संकेत है कि कलिंग (आधनिक उडीसा) के कछ हिस्सों पर नंद वंश का अधिकार था। राजा खारवेल का शासन काल प्रथम शताब्दी ई.पू. के मध्य में था।

दक्षिण कर्नाटक प्रदेश के कुछ बाद के अभिलेखों से भी पता चलता है कि नंद वंश के नेतृत्व में दक्कन के कुछ हिस्से पर मगध का अधिकार था। अधिकांश इतिहासकारों का यह मानना है कि महापद्मनंद के शासन काल के अंतिम चरण में मगध साम्राज्य के विस्तार और सुदृढ़ीकरण का पहला चरण समाप्त हो गया। सिकंदर के आक्रमण का हवाला देते हुए यूनानी ग्रंथ उल्लेख करते हैं कि इस समय उत्तर-पश्चिमी

क्षेत्र छोटे-छोटे राज्य वंशों के बीच विभक्त था। यह भी स्पष्ट है कि मगध राज्य और यूनानी विजेता के बीच कोई युद्ध नहीं हुआ।

टिप्पणी

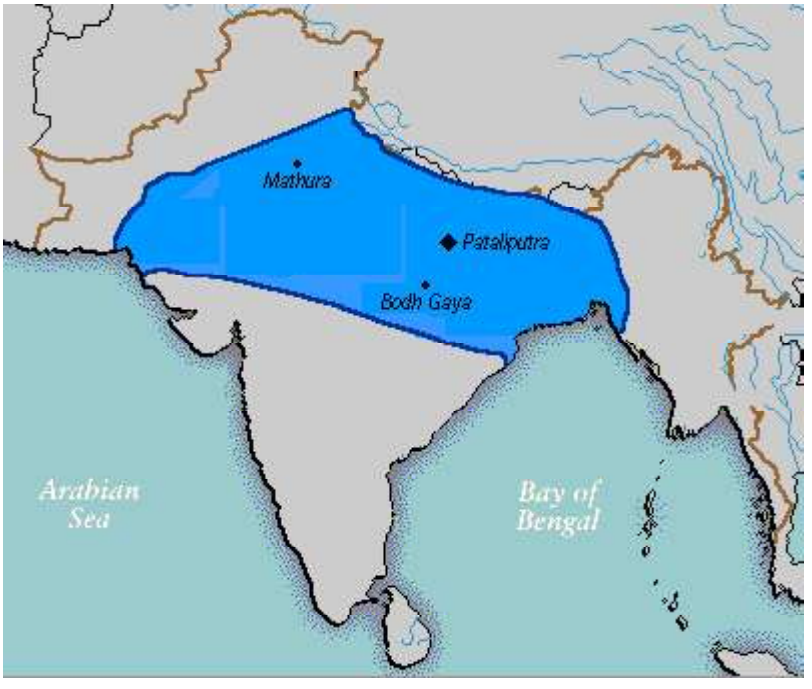

321 ई.पू. में नंद वंश का पतन हो गया। इस दौरान नौ नंद राजाओं ने शासन किया और यह कहा जाता है कि अपने शासन के अंतिम दिनों में वे काफी अलोकप्रिय हो गए थे। चंद्रगुप्त मौर्य ने इस स्थिति का फायदा उठाया और मगध के सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। इन सभी परिवर्तनों के बावजूद मगध गंगा घाटी का सर्वशक्तिमान राज्य बना रहा। मगध की भौगोलिक स्थिति उसकी सफलता के कारणों में प्रमुख है। इसके अतिरिक्त लोहा उन्हें सहज सुलभ था और प्रमुख स्थल और जल व्यापार मार्ग पर उनका नियंत्रण था।

अपनी प्रगति जांचिए

3. मगध साम्राज्य का उदय किस शासक के राज्यकाल में हुआ?

(क) बिंबिसार (ख) अजातशत्रु

(ग) उदयन (घ) शिशुनाग

4. निम्न में से बिंबिसार का पुत्र कौन है?

(क) शिशुनाग (ख) अजातशत्रु

(ग) उदयन (घ) इनमें से कोई नहीं

1.4 पर्शियन और मेसीडोनियन आक्रमण

इस अध्याय में हम पर्शियन और मेसीडोनियन आक्रमणों और इनके प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

1.4.1 सिकंदर के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था और उत्तर–पश्चिम भारत के राज्य

सिकंदर के आक्रमण के समय उत्तर-पश्चिमी भारत की राजनीतिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी। सिंधु घाटी तथा पंजाब के प्रदेश में कई राजतंत्र तथा गणतंत्र थे जो आपसी ईर्ष्या तथा द्वेष का शिकार थे। उनमें से एक भी शासक इतना योग्य तथा शक्तिशाली नहीं था जो कि अन्य राजाओं पर अपना नियंत्रण स्थापित कर सकता या विदेशी आक्रमणकारी से टक्कर लेने के लिए एक संयुक्त मोर्चा तैयार कर सकता। इसके विपरीत, इनकी आपसी शत्रुता इतनी तीव्र थी कि वे एक-दूसरे का विनाश देखने के लिए सदैव उद्यत रहते थे। इन राज्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

पंजकोर, कुनार तथा स्वात की अश्वायन तथा अश्वकायन जातियां–उत्तर-पश्चिमी भारत की सीमा पर कुनार, पंजकोर तथा स्वात की पहाड़ी घाटियां थीं जिनमें अश्वायन तथा अश्वकायन (यूनानियों ने इन्हें क्रमशः अस्पासियन तथा असाकानोस के नाम दिए हैं) नामक जातियों का राज्य था। अश्वकायन जाति की राजधानी मसग थी। यह नगर मालाकंड दर्रे से अधिक दूर नहीं था और पहाड़ियों तथा दल-दल आदि के कारण चारों ओर से सुरक्षित था। उसका दुर्ग विशेष रूप से बड़ा दृढ़ था जिस पर विजय पाना बहुत कठिन था। ईरानी लेखकों के अनुसार, असाकानोस जाति के पास 30,000 घुड़सवार 38,000 पैदल तथा 30 हाथी थे। अश्वायन जाति की शक्ति अश्वकायन जाति से कम थी। परंतु दोनों जातियों के लोग स्वतंत्रता प्रेमी थे।

अष्टक राज्य (पुष्कलावती)– काबुल तथा सिंध नदी के मध्यवर्ती प्रदेश में अष्टक नाम का एक छोटा-सा राज्य था, जिसकी राजधानी पुष्कलावती (आधुनिक चारसद्दा) थी। इस राज्य में रहने वाली जाति अष्टक नाम से विख्यात थी और उनका शासक अष्टकराज था। यूनानी लेखकों ने अपने विवरण में इस शासक का नाम अस्तिस दिया है और उनकी जाति को अष्टकनोई कहा है। अष्टकराज बड़ा देश-भक्त था और विदेशियों से टक्कर लेने का साहस रखता था, परन्तु तक्षशिला का शासक आम्भि उसका शत्रु था।

तक्षशिला का राज्य (आम्भि)–गांधार प्रदेश के पूर्वी भाग में तक्षशिला का राज्य था। इसका शासक आम्भि था, जिसका सिंध तथा झेलम के मध्यवर्ती प्रदेश पर अधिकार था। इसकी राजधानी तक्षशिला अपने समय का प्रसिद्ध नगर था और व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। तक्षशिला तथा आसपास का प्रदेश बड़ा उपजाऊ था और इसकी जनसंख्या भी काफी थी। आम्भि उच्च चरित्र का व्यक्ति नहीं था। स्वार्थी, कायर तथा निर्लज्ज होने के अतिरिक्त एक देशद्रोही भी था। वह अपने पड़ोसी राज्यों के विनाश के लिए हर सम्भव पग उठाने के लिए तैयार रहता था। अष्टकराज तथा पोरस जैसे पड़ोसी देश-भक्त शासकों को वह अपना शत्रु समझता था।

अभिसार तथा अरसकिस राज्य–प्राचीन कम्बोज राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर इस प्रदेश में अभिसार तथा अरसकिस नामक दो स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गए थे। अभिसार राज्य में आधुनिक पुंछ तथा काश्मीर स्थित नौशहरा के ज़िले सम्मिलित थे, जबकि दूसरे राज्य का अधिकार आधुनिक प्रदेश हषारा पर था। अभिसार राज्य के शासक ने एक सच्चे देश-भक्त की तरह सिकंदर के विरुद्ध लड़ने वाली अश्वकायन जाति को सहायता दी।

टिप्पणी

पोरस के राज्य–झेलम और चिनाब के मध्यवर्ती प्रदेश में बड़ा उपजाऊ तथा विस्तृत पुरु अथवा पोरस का प्रसिद्ध राज्य था, इसमें लगभग 300 नगर थे। ईरानी लेखकों के अनुसार, पोरस के पास एक विशाल सेना थी जिसमें 50,000 पैदल, 3,000 घोड़े, 1,000 रथ और 150 हाथी थे। शक्तिशाली होने के अतिरिक्त पुरु नरेश महत्वाकांक्षी भी था। वह आसपास के प्रदेशों को विजित करके उन्हें अपने राज्य में मिलाना चाहता था। उसकी प्रतिदिन बढ़ती हुई शक्ति तक्षशिला के शासक आम्भि की आंखों में खटकती थी और वह उसे अपने लिए गम्भीर खतरा समझता था अतः वह किसी विदेशी शक्ति की सहायता से पोरस को कुचलना चाहता था। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने एक राजदूत द्वारा सिकंदर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया था और उसे पोरस के विरुद्ध सहायता देने का भरोसा भी दिया था। डॉ. राधा कुमुद मुकर्जी लिखते हैं कि किसी भारतीय शासक के देशद्रोही होने का यह पहला उदाहरण है।

छोटा पोरस–चिनाब तथा रावी के मध्यवर्ती प्रदेश पर पोरस का एक निकट संबंधी शासन करता था। इतिहासकारों ने इसे छोटे पोरस का नाम दिया है। यद्यपि वह एक उच्च परम्पराओं वाले वंश का सदस्य था, तथापि उसमें आवश्यक वीरता, स्वाभिमान तथा देश-प्रेम का अभाव था। प्रारंभ में तो वह बड़े पोरस का सहयोगी बनकर विदेशियों से लड़ने का निश्चय रखता था लेकिन बाद में इसने भी आम्भि की तरह सिकंदर की आधीनता स्वीकार कर ली।

कठ, मलोई, क्षुद्रक आदि जातियां–रावी नदी के पूर्व में कठ का गणराज्य था। उसकी राजधानी सांगला (आधुनिक स्यालकोट, पश्चिमी पाकिस्तान) थी। यह जाति बड़ी वीर तथा युद्ध-प्रिय थी। पंजाब के दक्षिण पश्चिम में कुछ बलवान जातियां भी थीं जिनमें मलोई तथा क्षुद्रक विशेष-रूप से प्रसिद्ध थीं। पाकिस्तान में यह जाति आधुनिक मुलतान के आसपास बसी हुई थी और कठ जाति की तरह बलवान तथा साहसी थी। उसके पास एक विशाल सेना भी थी। क्षुद्रक जाति का राज्य आधुनिक मांटगुमरी के ज़िले में था।

1.4.2 भारत पर पर्शियन (ईरानी) आक्रमण

छठी शताब्दी ई.पू. के मध्य कुरूष अथवा साइरस द्वितीय नामक एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति ने ईरान में हखामनी साम्राज्य की स्थापना की और अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उसने भारत पर आक्रमण किया। साइरस ने किन प्रदेशों को जीता इसके

टिप्पणी

ठोस प्रमाण नहीं मिलते हैं। सिकंदर के जल सेनाध्यक्ष नियार्कस के विवरण के अनुसार, "साइरस ने आक्रमण का प्रयास किया पर उसका प्रयास असफल रहा। उसकी पूरी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई और वह केवल सात सैनिकों के साथ जान बचाकर भागा।" परंतु रोमन लेखक प्लिनी के विवरण से ज्ञात होता है कि साइरस ने कपिशा नगर को ध्वस्त किया।

साइरस द्वितीय (558 ई.पू. से 529 ई.पू.) ने भारत पर आक्रमण का असफल प्रयास किया था। भारत में सर्वप्रथम इसी को विदेशी आक्रमण माना जाता है।

पर्शियन (ईरानी) साम्राज्य के प्रमुख शासक

साइरस द्वितीय (558 ई.पू. से 529 ई.पू.)

1. साइरस द्वितीय ने छठी शताब्दी ई.पू. के मध्य ईरान में हखामनी साम्राज्य की स्थापना की।
2. साइरस द्वितीय एक महत्वाकांक्षी शासक था। अल्प समय में ही वह पश्चिमी एशिया का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक बन गया।
3. साइरस ने सिंध के पश्चिम में भारत के सीमावर्ती क्षेत्र पर विजय प्राप्त की। प्लिनी के विवरण से ज्ञात होता है कि साइरस ने कपिशा नगर को ध्वस्त किया।
4. साइरस की मृत्यु कैस्पियन क्षेत्र में डरबाइक नामक एक पूर्वी जनजाति के विरुद्ध लड़ते हुए हुई तथा उसका पुत्र केम्बिसीज द्वितीय (529 ई.पू. से 522 ई.पू.) उसके साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। वह गृह युद्धों में ही उलझा रहा और उसके समय में हखामनी साम्राज्य का भारत की ओर कोई विस्तार न हो सका।

डेरियस प्रथम (दारा प्रथम) (522 ई.पू. से 486 ई.पू.)

1. भारत पर आक्रमण करने में प्रथम सफलता दारा प्रथम (डेरियस प्रथम) को प्राप्त हुई।
2. दारा के यूनानी सेनापति स्काईलैक्स ने सिंधु से भारतीय समुद्र में उतरकर अरब और मकरान तटों का पता लगाया।
3. दारा प्रथम ने 516 ई.पू. में सर्वप्रथम गांधार को जीतकर फारसी साम्राज्य में मिलाया था।
4. भारत का पश्चिमोत्तर भाग दारा के साम्राज्य का 20वां प्रांत (हेरोडोटस के अनुसार) था। कंबोज एवं गांधार पर भी उसका अधिकार था।
5. दारा प्रथम के तीन अभिलेखों–बेहिस्तून, पार्सिपोलिस एवं नक्शेरूस्तम से यह पता चलता है कि उसी ने सर्वप्रथम सिंधु नदी के तटवर्ती भारतीय भू–भागों को अधिकृत किया।

जरक्सीज के उत्तराधिकारी तथा पारसी साम्राज्य का विनाश

1. जरक्सीज की मृत्यु के पश्चात् उसके तात्कालिक उत्तराधिकारी क्रमशः अर्तजरक्सीज प्रथम एवं अर्तजरक्सीज द्वितीय हुए। साक्ष्यों से पता चलता है कि इन उत्तराधिकारियों द्वारा दारा प्रथम द्वारा निर्मित साम्राज्य को सुरक्षित रखा गया।

2. पारसियों का अंतिम सम्राट दारा तृतीय (360 ई.पू. से 330 ई.पू.) था।
3. दारा तृतीय को यूनानी सिकंदर ने अरबेला/गौगामेला के युद्ध (331 ई.पू.) में बुरी तरह परास्त किया। इस प्रकार पारसियों का विनाश हुआ।

टिप्पणी

भारतीय क्षेत्रों में पर्शियन आक्रमण के कारण

1. ईरानी सम्राटों की पश्चिम में सुदृढ़ता।
2. भारत के पश्चिमोत्तर राज्यों की अस्थिर और अराजक राजनीतिक परिस्थितियां।
3. पश्चिमोत्तर सीमा प्रांतों का सामरिक और आर्थिक महत्व।
4. उत्तरापथ मार्ग पर नियंत्रण करने की इच्छा।

पर्शियन आक्रमण का भारत पर प्रभाव

ईरानी आक्रमण के भारत पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े–

1. समुद्री मार्ग की खोज से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिला।
2. पश्चिमोत्तर भारत में दायीं से बायीं ओर लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ। (अशोक के कुछ अभिलेख खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्ण हैं।)
3. ईरानियों की अरमाइक लिपि का प्रचार–प्रसार हुआ। अभिलेख उत्कीर्ण करने की प्रथा प्रारंभ हुई।
4. मौर्य वास्तुकला पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, जैसे–अशोक कालीन स्मारक विशेषकर घंटे के आकार के गुंबद, कुछ हद तक ईरानी प्रतिरूपों पर आधारित थे।
5. अशोक के शासनकाल की प्रस्तावना और उनमें प्रयुक्त शब्दों में भी ईरानी प्रभाव देखा जा सकता है।

कुल मिलाकर पर्शियन (हखामनी) आक्रमणों का भारत पर कोई ठोस राजनैतिक प्रभाव नहीं पड़ा तथा उत्तर भारत उससे पूर्णतया अप्रभावित रहा।

1.4.3 भारत पर मेसीडोनियन (यूनानी) आक्रमण

सिकंदर यूनान देश के एक राज्य मेसीडोनिया के शासक फिलिप का पुत्र था। सिकंदर का जन्म 356 ई०पू० में हुआ और उसने प्रसिद्ध विद्वान अरस्तु से शिक्षा प्राप्त की थी। सिकंदर प्रारंभ से वीर, साहसी, अति महत्वाकांक्षी था तथा विश्व विजेता का स्वप्न देखा करता था। अपने पिता फिलिप की मृत्यु के पश्चात वह 336 ई०पू० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने दो वर्षों में ही अपनी स्थिति को बहुत दृढ़ बना लिया था। यूनान में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के पश्चात सिकंदर ने ईरान पर विजय प्राप्त करने की योजना बनाई क्योंकि तत्कालीन समय में ईरान का साम्राज्य काफी दुर्बल हो चुका था। सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात सिकंदर ने केवल 4 वर्ष के अल्पकाल में ही एशिया माईनर, सीरिया, बेबिलोनिया, मिस्र, ईरान आदि पर अपना अधिकार जमा लिया। अपने समस्त शत्रुओं को पराजित कर वह अपने शासन को सुदृढ़ कर उसने भारत पर विजय प्राप्त करने की योजना बनाई।

टिप्पणी

ई०पू० छठी सदी में जबकि आंतरिक दृष्टि से भारत मगध राज्य के नेतृत्व में एक विशाल साम्राज्य के निर्माण का प्रयत्न कर रहा था, भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर विदेशी आक्रमण हुए। इन आक्रमणकारियों में से प्रथम पर्शियन थे और उनके पश्चात यूनानी विजेता सिकंदर ने पंजाब और सिंध पर आक्रमण किया।

सिकंदर ने 326 ई०पू० में भारत पर आक्रमण किया था। तत्कालीन समय में भारत राजनीतिक रूप से एक नहीं था। उत्तर- पश्चिमी भारत कई छोटे-छोटे राज्यों में विशृंखलित था तथा वे अपने निजी स्वार्थवश एक-दूसरे से झगड़ते रहते थे। सिकंदर के आक्रमण के समय सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य मगध था। मगध शासक ने आस-पास के छोटे-छोटे राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाकर मगध की सीमाओं का विस्तार कर लिया था तथा एक महान शक्ति बन गया था। मगध पर नंद वंश के शासक धनानंद का शासन था। यद्यपि इसके पास विशाल सेना थी परंतु यह इतना योग्य सम्राट नहीं था। अपने कुकृत्यों के कारण यह जनता में अप्रिय था।

सतलुज नदी के पूर्व में मगध का प्रसिद्ध साम्राज्य था, जो कलिंग प्रदेश तक फैला हुआ था। उसके पास 2 लाख पैदल, हज़ार घुड़सवार, 2 हज़ार रथ और 3 हज़ार हाथियों की एक विशाल सेना थी। धनानन्द प्रजा में प्रिय नहीं था, तथापि उसकी सैन्य शक्ति की धूम देश में दूर-दूर तक फैली हुई थी। सम्भवत: सिकंदर तथा उसकी सेनाओं ने इस नन्द नरेश की शक्ति से डरते हुए ही व्यास नदी से वापिस चले जाने का निर्णय किया था।

सिंधु नदी की ओर बढ़ना

ईरान के विजित प्रदेशों में अपनी स्थिति को दृढ़ करने के पश्चात सिकंदर ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसे उत्तर-पश्चिमी भारत की शोचनीय अवस्था ने यह साहसपूर्ण पग उठाने के लिए विशेष प्रेरणा दी। जब आम्भि के राजदूत ने बल्ख के स्थान पर सिकंदर से भेंट की और उसे भारत पर आक्रमण का निमन्त्रण दिया तो इससे उसका उत्साह और भी बढ़ गया। अत: सिकंदर ने विशाल सेना लेकर सिंध नदी की ओर कूच किया और मार्ग में निम्नलिखित शासकों को हराया।

शशिगुप्त का अधीनता स्वीकार करना

हिंदू-कुश के पास पहाड़ी प्रदेश में शशिगुप्त नामक एक भारतीय राजा शासन करता था। जब सिकंदर ने ईरान तथा बल्ख के निवासियों से युद्ध लड़े थे तो उस समय इस भारतीय

टिप्पणी

नरेश ने सिकंदर के विरुद्ध इन्हें सहायता दी थी। परन्तु सफलता के बाद सिकंदर का उत्साह बढ़ गया था अतः ज्योंही शशिगुप्त को सिकंदर के आगमन की सूचना मिली उसने तुरन्त विदेशी आक्रमणकारी सिकंदर की अधीनता स्वीकार कर ली। निश्चय ही यह सिकंदर का सौभाग्य था कि उसे अभियान के प्रारंभ में ही ऐसे कायर तथा देशद्रोही का सहयोग मिल गया। तत्पश्चात सिकंदर ने अपनी सेनाओं को दो भागों में विभक्त किया। एक भाग का नेतृत्व तो उसने स्वयं अपने हाथों में ले लिया और दूसरे की बागडोर अपने दो अनुभवी सेनापतियों को दे दी। इन दोनों सेनाओं ने अलग-अलग मार्गों द्वारा अभियान सम्बन्धी कार्य आरम्भ किया।

अष्टक राज्य का विरोध

यूनानी सेनापतियों के नेतृत्व में बढ़ने वाले सैनिकों ने सबसे पहले अष्टक राज्य पर आक्रमण किया और इसकी राजधानी पुष्कलावती को घेरे में ले लिया। इसके शासक अष्टकराज ने इस संकट में असाधारण साहस तथा वीरता का प्रदर्शन किया और लगभग तीस दिन तक निरन्तर शत्रु से लड़ता रहा। अन्त में वह लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ और एक यूनानी (Henchman) को, जिसने सिकंदर को अपनी स्वामिभक्ति से प्रभावित किया था, सिकंदर ने अष्टक राज्य पुरस्कार के रूप में दे दिया।

कुनार, पंजकोर, स्वात आदि घाटियों की विजय

जब सिकंदर के सेनापति अष्टक राज्य को विजय करने में व्यस्त थे तो उस समय सिकंदर ने स्वयं कुनार, किरात आदि घाटियों पर आक्रमण किया। यहां की स्वतन्त्रता प्रेमी जातियों ने अपने विभिन्न दुर्गों से शत्रु का सामना किया और कई स्थानों पर यूनानियों को काफी क्षति पहुंचाई। यद्यपि वे सिकंदर को पराजित करने में सफलता प्राप्त नहीं कर पाए, तथापि उस समय इन जातियों का एक-एक सदस्य मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्धक्षेत्र में लड़ मरा। केवल अश्वायन जाति के ही 40 हजार व्यक्ति बन्दी बना लिए गए थे।

यूनानी हमलावरों का सबसे प्रबल विरोध अश्वकायन जाति ने किया। इस जाति के पास न केवल एक विशाल तथा सुसंगठित सेना ही थी बल्कि मसग नामक प्रसिद्ध दुर्ग भी था। इसके अतिरिक्त, इस जाति के सदस्यों में शत्रु से लड़-मरने का इतना जोश था कि राजमाता ने युद्ध का संचालन अपने हाथों में लिया और समस्त भारतीय महिलाएं भी रणक्षेत्र में उतरने के लिए तैयार हो गईं। इस जाति के नरेश ने अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए अभिसार राजा से सन्धि भी की और उसने एक सैनिक टुकड़ी सहायता के लिए भेजी। दोनों पक्षों की पूर्ण तैयारी होने पर मसग के दुर्ग में घमासान युद्ध हुआ। भारतीय स्त्रियों ने असाधारण साहस एवं वीरता का परिचय दिया। यूनानी सैनिक भी अद्वितीय वीरता से लड़े। अन्त में भारतीय अपनी स्त्रियों सहित युद्ध में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए और सिकंदर की विजय हुई। इसके बाद सिकंदर ने ऊना (Aornus) की पहाड़ी पर स्थित दुर्ग को विजय किया। यूनानियों की दृष्टि में यह उनकी एक महान सफलता थी, क्योंकि उससे पूर्व बड़े-बड़े महारथी इस दुर्ग पर अधिकार जमाने में असफल रहे थे।

दक्षिण में हैडासयस व सिंधु नदियों की ओर अपनी यात्रा के दौरान, सिकंदर ने दार्शनिकों, ब्राह्मणों, जो कि अपनी बुद्धिमानी के लिए प्रसिद्ध थे, की तलाश की और उनसे दार्शनिक मुद्दों पर बहस की। वह अपनी बुद्धिमतापूर्ण चतुराई व निर्भय विजेता के रूप में सदियों तक भारत में किंवदंती बना रहा।

टिप्पणी

सिंध नदी से व्यास तक

पहाड़ी प्रदेशों को विजित करने के पश्चात सिकंदर सिंधु नदी के किनारे पर पहुंच गया। उसके सैनिकों ने अब नावों द्वारा नदी को पार किया। सेना का दूसरा भाग (जो यूनानी सेनापतियों की अध्यक्षता में था) पहले ही एक पुल बनाकर सिंधु नदी को पार कर चुका था और अटक से 16 मील दूर ओहिंद (Ohind) स्थान पर सिकंदर की प्रतीक्षा कर रहा था। ओहिंद पहुंचने पर सिकंदर का अपने सेनापतियों से मिलाप हुआ और उनकी सफलताओं के सम्बन्ध में सुनकर उसे बहुत प्रसन्नता हुई। कुछ दिन तक आराम करने के पश्चात यूनानी सेनाओं ने तक्षशिला की ओर कूच किया।

आम्भि का अधीनता स्वीकार करना–जब तक्षशिला के राजा आम्भि को यूनानियों के आने की सूचना मिली तो उसने अपनी राजधानी से कुछ मील बाहर आकर सिकंदर का स्वागत किया। इसके बाद तक्षशिला में एक बड़ा दरबार हुआ जिसमें आम्भि तथा आसपास के कुछ छोटे-छोटे राजाओं ने सिकंदर का आधिपत्य स्वीकार किया। इन भारतीय शासकों में अभिसार राजा तथा पोरस के राजदूत भी थे। इस अवसर पर भारतीय नरेशों ने सिकंदर को कई उपहार भी प्रस्तुत किए।

पोरस से युद्ध– तक्षशिला में कुछ दिन तक ठहरने के पश्चात सिकंदर ने अपने राजदूत द्वारा पोरस को आधीनता स्वीकार करने का सन्देश भेजा। यद्यपि पोरस की स्थिति उस समय बड़ी गम्भीर थी तथापि इस स्वाभिमानी शासक ने आधिपत्य स्वीकार करने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और सिकंदर के दूत को ये शब्द कहे, "अपने राज्य की सीमा पर उपहारों से नहीं बल्कि शस्त्रों से सिकंदर का स्वागत करूंगा।"

पोरस के इस उत्तर को पाते ही सिकंदर ने तक्षशिला नगर से प्रस्थान किया और चौदह दिन के कूच के बाद झेलम नदी के किनारे पर पहुंच गया। नदी के दूसरी ओर पोरस भी अपनी विशाल सेना सहित डेरे डाले हुए था। नदी में बाढ़ आने के कारण इसे पार करना कठिन था, परन्तु अधिक समय तक प्रतीक्षा भी नहीं की जा सकती थी, क्योंकि इससे पोरस की स्थिति अधिक दृढ़ होती दिखाई पड़ती थी अतः सिकंदर ने एक रात घोर अन्धेरे में, जबकि ज़ोर की वर्षा हो रही थी, उत्तर की ओर जाकर एक कम चौड़े स्थान से नदी को पार किया और फिर 100 योद्धाओं सहित पोरस की ओर बढ़ा। पोरस के पुत्र ने एक सैनिक टुकडी लेकर उसे रोकने का प्रयत्न किया लेकिन सफल न हुआ और लड़ते हुए मारा गया। इसी बीच सिकंदर की शेष सेना ने भी नदी को पार कर लिया और करीं के मैदान में पोरस तथा सिकंदर के बीच घमासान युद्ध शुरू हो गया। युद्ध में मेसीडोनियन सैनिकों ने हाथियों का उपयोग पहली बार देखा था। बारिश होने के कारण यूद्ध भूमि फिसलनी हो रही थी इसलिए पोरस के रथ कीचड़ में फंस गए। इसके धनुर्धारी भी कुशलतापूर्वक न लड़ सके। कुछ घण्टों में ही भारतीय सैनिकों में भगदड़ मच गई और उनके हज़ारों योद्धा, जिनमें पोरस के दो पुत्र भी सम्मिलित थे, विदेशियों की तलवारों का शिकार हुए। घायल पोरस को बन्दी बनाकर सिकंदर के सामने पेश किया गया और उनके बीच जो वार्तालाप हुआ वह अत्यन्त रोचक है। सिकंदर ने पुरु नरेश से पूछा, "तुम्हारे साथ क्या बर्ताव किया जाए।" इस पर पोरस ने बड़ी वीरता तथा निर्भीकता से उत्तर दिया - "जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।" इस उत्तर को सुनकर सिकंदर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पोरस को उसका राज्य लौटा दिया।

टिप्पणी

कठ जाति से युद्ध–पुरु नरेश की पराजय का समाचार पाते ही छोटा पोरस हतोत्साहित हो गया और अपने प्रदेश को छोड़ मगध साम्राज्य की ओर भाग गया। सिकंदर की सेनाओं ने चनाब नदी को पार किया और बिना किसी विरोध के उन्होंने छोटे पोरस के राज्य को विजय कर लिया। तत्पश्चात उन्होंने इस प्रदेश की अनेक स्वतन्त्र जातियों के विरुद्ध अभियान चलाया। जब सिकंदर के आगे बढ़ने की सूचना कठैयन या कठ जाति को मिली तो उसने अपनी शक्तिशाली सेना सहित सियालकोट अथवा सांगला नामक स्थान पर शत्रु से टक्कर ली। यूनानी इतिहासकार एरियन ने लिखा है कि सांगला में कठों का सिकंदर की सेना के साथ भीषण युद्ध हुआ और यूनानी घबरा उठे, परन्तु अन्त में विदेशियों की ही विजय हुई। सांगला दुर्ग को नष्ट कर दिया गया और 17000 कठ वीर युद्ध में मारे गए।

उग्र भारतीय लड़ाके कबीलों में से एक मालियों के गांव में सिकंदर की सेना एकत्रित हुई। इस हमले में सिकंदर कई बार जख्मी हुआ। जब एक तीर उसके सीने के कवच को पार करते हुए उसकी पसलियों में जा घुसा, तब वह बहुत गंभीर रूप से जख्मी हुआ। मेसीडोनियन सैनिकों ने उसे बड़ी मुश्किल से बचाकर गांव से निकाला।

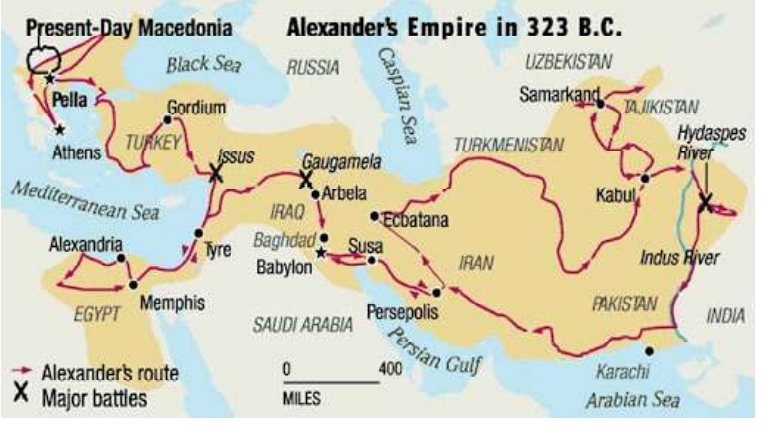

वापसी का निर्णय तथा कारण–कठ जाति को पराजित करने के पश्चात सिकंदर की सेनाएं आगे बढ़ीं और व्यास नदी तक (मुकेरियां के निकट) जा पहुंचीं। अब उसकी सेनाओं ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। सिकंदर ने, जो और भारतीय प्रदेश विजय करना चाहता था, उनसे प्रार्थना की परन्तु वे निष्फल हुई। अन्त में उसने विवश होकर वापिस जाने का निर्णय किया।

सिकंदर की सेनाओं के व्यास नदी से लौटने के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने कई कारण प्रस्तुत किए हैं। कुछ इतिहासकारों का यह मत है कि सिकंदर के सैनिक निरन्तर युद्ध के कारण बहुत थक गए थे। उनके बहुत से साथी मारे भी गए थे। इसलिए वे अधिक समय तक भारत में ठहरना नहीं चाहते थे। दूसरे, यूनानी सैनिक अपने घरों से बहुत दूर आ गए थे। उन्हें घर छोड़े बहुत समय हो चुका था। वे अपने परिवारों तथा सगे-सम्बन्धियों के बारे में भी चिन्तित थे। इस कारण भी उनकी और अधिक प्रदेश विजय करने में रुचि नहीं थी। तीसरे, यूनानियों को भारतीय अभियानों में कई स्थानों पर कड़े विरोध का सामना करना पड़ा था। पोरस तथा पंजाब की जातियों की वीरता से वे चकित ही नहीं बल्कि भयभीत हो गए थे। सम्भवतः वे इस कारण भी और युद्ध लड़ने के पक्ष में नहीं थे और वापस स्वदेश को लौट जाना चाहते

टिप्पणी

थे। चौथे, यूनानियों को जब इस बात की सूचना मिली कि व्यास नदी के पास एक और शक्तिशाली संघ राष्ट्र है और उससे परे उन्हें मगध नरेश से युद्ध लड़ना पड़ेगा तो इससे भी वे हतोत्साहित हो गए। उन्होंने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया और इस पर सिकंदर को उन्हें वापिस जाने की आज्ञा देनी पड़ी।

व्यास नदी से वापसी

वापसी से पूर्व सिकंदर ने निम्न प्रकार से विजित क्षेत्रों का प्रबन्ध किया।

विजित भारतीय प्रदेशों का प्रबन्ध– सिकंदर जिस मार्ग से व्यास तक आया था उसी मार्ग द्वारा वापिस झेलम पहुंच गया। यहां पहुंच कर उसने अपने विजित प्रदेशों को सात प्रांतों में विभक्त किया। इनमें से दो प्रांतों को, जो भारत की सीमाओं से बाहर थे, उसने यूनानी गवर्नरों के हवाले कर दिया। (2) व्यास तथा झेलम के मध्यवर्ती प्रदेश का शासन पोरस को दे दिया। (3) झेलम के पश्चिम का प्रदेश राजा आम्भि को सौंपा गया। (4) काश्मीर का प्रदेश अभिसार शासक को दिया गया। (5) सिंध का प्रांत उसने अपने एक अधिकारी को सौंप दिया। (6) मिठनकोत के निकटवर्ती प्रदेश को एक प्रांत के रूप में उसने अपने एक और सैन्य अधिकारी को इसका गर्वनर नियुक्त किया।

मलोई तथा क्षुद्रक जातियों का विरोध–झेलम नदी के मार्ग द्वारा यूनानी सेनाएं झेलम तथा चनाब के संगम पर पहुंचीं तो वहां पर मलोई तथा क्षुद्रक जाति के लोगों ने उनका सामना किया। कहा जाता है कि मुल्तान प्रदेश के प्रत्येक नगर में शत्रु का विरोध हुआ और नगर के ब्राह्मण भी शत्रु से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। लड़ाई के दौरान सिकंदर को स्वयं एक भयानक घाव लगा और उसके सैनिकों ने बदले की भावना से हज़ारों पुरुषों तथा नारियों को मौत के घाट उतार दिया। मलोई जाति की पराजय देखकर क्षुद्रक जाति ने उत्साह छोड़ दिया और सिकंदर की आधीनता स्वीकार कर ली। कुछ अन्य जातियों ने, जो इस देश में रहती थीं, अपनी शक्तिशाली सेनाओं के होते हुए भी शत्रु से लड़ने का साहस न किया और सिकंदर का सिंधु घाटी पर पूर्ण अधिकार हो गया और वह समुद्र तट पर जा पहुंचा।

सिकंदर व उसकी सेना जुलाई 325 ई.पू. में सिंधु नदी के मुहाने पर पहुंची, तथा घर की ओर जाने के लिए पश्चिम की ओर मुड़ी।

मृत्यु–समुद्र तट पर पहुंच कर सिकंदर ने कुछ सेना जल-मार्ग से और कुछ स्थल-मार्ग से भेजने का निश्चय किया। वह स्वयं स्थल मार्ग द्वारा बलूचिस्तान तथा ईरान से होता हुआ बेबीलोन पहुंचा। उसे मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसके भाग्य में यूनान वापिस पहुंचना नहीं था। वह बेबीलोन के स्थान पर ही 33 वर्ष की आयु में ज्वर से मर गया।

सिकंदर के हाथों भारतीयों की पराजय के कारण

सिकंदर उन्नीस मास तक भारतीय राजाओं तथा कबीलों के साथ युद्ध करता रहा। उसे कई स्थानों पर कट्टर विरोध का सामना भी करना पड़ा, परन्तु उसे प्रत्येक बार अन्त में सफलता प्राप्त हुई। सिकंदर की विजय तथा भारतीयों की पराजय के कई कारण थे, जिनका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है।

टिप्पणी

सर्वप्रथम, सिकंदर एक महान योद्धा और सेनापति था। वह युद्ध-कौशल में निपुण था। उसने अपनी सैनिक प्रतिभा के बल पर ही ईरानी साम्राज्य को केवल 4 वर्षों में पराजित किया था। उसने पहाड़ी प्रदेश की स्वतन्त्रता-प्रेमी जातियों को भी कई बार नीचा दिखाया था। उसकी यह सैनिक योग्यता उसे सफल बनाने में काफी समय तक सहायक सिद्ध हुई। दूसरे, सिकंदर के सौभाग्य से भारतीय नरेशों में आपसी फूट थी। वे एक-दूसरे का विनाश करने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। यूनानी शासक ने उनकी इस फूट का पूरा लाभ उठाया। उसने उन्हें इकट्ठा होने का अवसर न दिया और एक-एक करके उन्हें पराजित किया। अभियान के अन्तिम दिनों में मलोई तथा क्षुद्रक जातियों ने मिलकर सिकंदर से टक्कर ली, लेकिन इसका विशेष लाभ न हुआ। तीसरे, भारतीय सेनाएं यद्यपि बड़ी विशाल थीं, तथापि वे यूनानियों की तरह सुसज्जित, सुसंगठित तथा अनुशासित नहीं थीं। इस कारण भी भारतीय नरेशों तथा कबीलों को विदेशियों के हाथों पराजित होना पड़ा। डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी लिखते हैं, "यद्यपि कई भारतीय कबीलों का प्रत्येक सदस्य शत्रु से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्तु हुआ, तथापि उन्हें अन्त में असफलता प्राप्त हुई। विशेषत: इसलिए कि उनके पास न तो सिकंदर जैसा महान नेता था और न ही उनका सैनिक संगठन दृढ़ तथा कुशल था।" चौथे, भारतीय नरेशों का युद्ध-क्षेत्र में हाथियों तथा रथों से लड़ना भी उनके लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। कर्री के युद्ध-क्षेत्र में वर्षा के कारण भारतीयों के रथ कीचड़ में धंस गए और वे कुछ न कर पाए। धनुर्धारी भी भूमि के फिसलनी होने से कुशलतापूर्वक न लड़ सके और हाथियों ने अपनी सेनाओं को ही कुचल दिया। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि सिकंदर उत्तर-पश्चिम के छोटे-छोटे राज्यों के साथ ही लड़ा था जिनके साधन सीमित थे। इसलिए उसके लिए उन पर विजय प्राप्त करना कठिन न था।

सिकंदर के आक्रमण के प्रभाव

सिकंदर के आक्रमण के प्रभाव के सम्बन्ध में इतिहासकारों में काफी मतभेद हैं। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि सिकंदर का आक्रमण एक डाके की भांति था, जिसका भारत पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। कुछ की दृष्टि में यह एक ऐसी महान घटना थी, जिसके भारतीय इतिहास पर स्थायी तथा अस्थायी विभिन्न प्रभाव पड़े। जो लोग इस आक्रमण को महत्व नहीं देते उनका कहना है कि (1) सिकंदर का आक्रमण एक क्षणिक घटना थी। सिकंदर भारतवर्ष में आंधी की तरह आया और बगोले की भांति चला गया। (2) उसने एक सीमित क्षेत्र (गांधार तथा सिंध) पर आक्रमण किया। शेष भारत उसके इस आक्रमण के प्रति उदासीन रहा। संभवत: इसी कारण ही किसी भारतीय ग्रंथ में उसके हमले का उल्लेख नहीं है। (3) वह जब तक भारत में रहा भारतवासी उसे अपना शत्रु समझते रहे। अत: न तो उन्होंने यूनानियों से कुछ सीखा और न ही उन्हें कुछ सिखाने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त, सिकंदर के लौटने के शीघ्र पश्चात ही भारतीयों ने यूनानी शासन को नष्ट कर दिया, जिससे उसके आक्रमण के चिह्न भी समाप्त हो गए। डॉ. वी.ए. स्मिथ के कथनानुसार, "सिकंदर के अभियान का भारतीय संस्थाओं तथा विचारधारा पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। भारतीय कला, धर्म समाज में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। यहां तक कि भारतीयों ने युद्ध-कौशल के बारे में भी यूनानियों से कुछ सीखने में रुचि न ली। उन्होंने अपनी प्राचीन युद्ध प्रणाली को अपनाए रखा, जो रथों, हाथियों तथा निम्न कोटि के पैदल सैनिकों पर आधारित थी।"

टिप्पणी

सिकंदर के आक्रमण को एक महत्वपूर्ण घटना मानने वाले लेखकों का विचार है कि इस आक्रमण ने भारत के राजनीतिक, व्यापारिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र को काफी प्रभावित किया। इसके कुछ प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, स्थायी अथवा अस्थायी प्रभाव अवश्य पड़े जिनका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है–

राजनीतिक क्षेत्र में प्रभाव

सिकंदर काफी समय तक भारत के भू-भाग पर युद्ध लड़ता रहा। उसने विभिन्न शासकों तथा जातियों से लोहा लिया किंतु किसी एक स्थान पर भी उसका भारतीय नरेशों ने मिलकर सामना नहीं किया। इसके विपरीत, शशिगुप्त तथा आम्भि जैसे देशद्रोहियों ने भारतीय नरेशों के विरुद्ध उसे सहायता दी। सिकंदर ने इस राजनीतिक फूट तथा दुर्बलताओं का लाभ उठाते हुए अपने शत्रुओं को सुगमता से पराजित कर दिया। राष्ट्रीय दृष्टि से भारतवासियों की यह फूट तथा राजनीतिक दुर्बलताएं एक ऐसा अनुभव था जिसका उन्हें कालांतर में लाभ उठाना चाहिए था। परन्तु वे ऐसा करने में असमर्थ रहे। इसके विपरीत बैक्ट्रिया में बसने वाले यूनानियों ने भारत की इस फूट से उत्साहित होकर मौर्य राज्य के पतन के बाद फिर से उत्तर-पश्चिमी भारत में अपने राज्य स्थापित कर लिए।

राजनीतिक एकता को प्रोत्साहन– सिकंदर के आक्रमण के परिणामस्वरूप उत्तर भारत के कई छोटे-छोटे राज्यों का अन्त हो गया था और उनके स्थान पर आम्भि, पोरस तथा अभिसार शासकों के विशाल राज्य स्थापित हो गए थे। यह निश्चय ही भारत की राजनीतिक एकता की ओर एक महत्वपूर्ण पग था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने कालान्तर में इन राज्यों का अन्त करके एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की और भारत को राजनीतिक एकता के रूप में बहुत बड़ा वरदान दिया। डॉ० बी०एन० पुरी लिखते हैं कि यदि सिकंदर ने इस प्रदेश की शक्तिशाली जातियों तथा नरेशों का दमन न किया होता तो सम्भव था कि मौर्य शासक उत्तर-पश्चिमी भारत के इस भाग को अपने अधिकार-क्षेत्र में न ला सकता।

इतिहास के निर्माण में सहायता–सिकंदर के आक्रमण ने भारतीय इतिहास के निर्माण में भी बहुमूल्य सहायता दी। यूनानी विद्वानों ने, जो सिकंदर के साथ आए थे, कई ग्रंथ लिखे जो भारतीय इतिहास के बहुमूल्य स्रोत हैं। इनसे तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा का बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, सिकंदर के आक्रमण की तिथि (326 ई०पू०) भारतीय इतिहास की पहली निश्चित तथा महत्वपूर्ण तिथि मानी जाती है और इसके आधार पर ही भारतीय इतिहास का निर्माण किया गया है।

नए मार्ग तथा घनिष्ठ संबंध–सिकंदर के आक्रमण से पूर्व भारत तथा पश्चिमी देशों के बीच केवल एक मार्ग था। अब इस आक्रमण द्वारा तीन और नए मार्गों का पता लग गया। इन नए मार्गों के खुल जाने से अनेक व्यापारी, प्रचारक तथा विद्वान इधर-उधर आने-जाने लगे। परिणामस्वरूप भारत तथा पश्चिमी देशों के बीच सम्पर्क बढ़ गया। इस सम्पर्क ने धीरे-धीरे भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। डॉ० राधा कुमुद मुकर्जी लिखते हैं कि सिकंदर के अभियान का एकमात्र स्थायी प्रभाव यह पड़ा कि दोनों

देशों के बीच यातायात के साधन विकसित हुए जिससे उनका आपसी सम्पर्क अधिक घनिष्ठ हो गया। परन्तु इसके लिए भारतीयों को जिस रक्तपात तथा लूट-खसोट को सहन करना पड़ा उसका उदाहरण उनके पूर्ववर्ती इतिहास में नहीं मिलता।

टिप्पणी

सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रभाव

सिकंदर एक निर्दयी, हत्यारा तथा लुटेरा आक्रमणकारी नहीं था। वह एक सभ्य व्यक्ति था जो यूनानी सभ्यता को श्रेष्ठ मानते हुए इसे अन्य देशों में फैलाना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने भारत में दो नगरों (Beucephala and Nikaia) की स्थापना की जो वर्षों तक यूनानी सभ्यता के प्रसार के केंद्र बने रहे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेश में स्थापित होने वाली यूनानी बस्तियां भी सिकंदर के आक्रमण का ही परिणाम थीं। उनके द्वारा भी यूनानी सभ्यता का प्रभाव भारतवर्ष पर पड़ा। उसका श्रेय काफी सीमा तक सिकंदर के आक्रमण को ही प्राप्त है।

भारतीय कला-क्षेत्र में प्रभाव–यूनानियों के सम्पर्क का भारत की ललित कला तथा वास्तु कला पर विशेष प्रभाव पड़ा। यूनानी तथा भारतीय शैलियों के मिलाप के परिणामस्वरूप एक नई शैली का विकास हुआ, जो कालान्तर में गांधार शैली के नाम से विख्यात हुई। इसके अतिरिक्त, भारतीयों ने अपने भवनों को यूनानी ढंग से बनवाना शुरू कर दिया। उन्होंने उनके आकार तथा स्वरूप को काफी सीमा तक अपना लिया। मुद्रा-निर्माण करने में भी भारतीयों ने यूनानियों से बहुत कुछ सीखा। गार्गी-संहिता में इस बात का उल्लेख मिलता है।

साहित्य, भाषा तथा ज्योतिष विद्या पर प्रभाव–कुछ प्रमुख भाषा-शास्त्रियों का यह विचार है कि यूनानियों के सम्पर्क से भारतीयों को साहित्य, भाषा तथा ज्योतिष विद्या के क्षेत्र में भी असाधारण लाभ हुआ। कलम, पुस्तक, फलक, सुरंग आदि अनेक यूनानी शब्दों का संस्कृत भाषा में समावेश हुआ। सम्भवतः संस्कृत गद्य, काव्य, नाटक, आदि की रचना यूनानियों के सम्पर्क में आने से ही हुई। ज्योतिष विज्ञान में भी वृद्धि हुई। निस्सन्देह भारतीय पहले से ही ज्योतिष विद्या से परिचित थे, लेकिन फिर भी उन्होंने यूनानी लोगों से इस विषय में बहुत कुछ सीखा। गर्गी-संहिता में लिखा है कि चूंकि ज्योतिष का प्रादुर्भाव यूनानियों द्वारा हुआ है, इसलिए वे देव-तुल्य पूजनीय हैं।

टिप्पणी

धार्मिक क्षेत्र पर प्रभाव–प्लूटार्क (Plutarch) तथा कुछ अन्य लेखकों का यह कहना है कि सिकंदर के आक्रमण का भारतवर्ष के धार्मिक क्षेत्र पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ भारतीय यूनानी देवी-देवताओं की पूजा करने लगे। परन्तु सम्भवत: ऐसा वही भारतीय करते थे, जो यूनानी बस्तियों व नगरों में रहते थे और वह भी उस समय जब सरकार की ओर से ऐसे यूनानी उत्सव मनाए जाते थे, जिनमें समस्त नागरिकों के लिए उपस्थित होना ज़रूरी होता था।

चिकित्सा पर प्रभाव–यूनानी लोग प्राचीन काल में वैद्यतक-शास्त्र अथवा औषधि सम्बन्धी बहुमूल्य ज्ञान रखते थे। उन्होंने भारतीय वैद्यों को चिकित्सा-क्षेत्र में बहुमूल्य देन दी। यही कारण है कि भारतीय तथा यूनानी चिकित्सा-प्रणाली में बहुत-सी समान बातें पाई जाती हैं।

अन्य प्रभाव

वाणिज्य तथा व्यापार में वृद्धि–सिकंदर के आक्रमण के परिणामस्वरूप भारत तथा पश्चिमी देशों के बीच कई नए मार्ग खुल गए। उनके द्वारा भारत का विदेशों से अधिक व्यापार होने लगा, जिससे कि धन-दौलत समृद्धि में वृद्धि हुई। निश्चय ही यह सिकंदर के आक्रमण का एक बहुत लाभदायक प्रभाव था।

सैन्य संगठन पर प्रभाव–कुछ इतिहासकारों का यह मत है कि सिकंदर के आक्रमण के पश्चात भारतीयों ने अपने सैनिक संगठन को भी काफी सीमा तक बदल लिया। उन्होंने यह देखते हुए कि रणक्षेत्र में हाथियों की अपेक्षा अश्वारोही अधिक उपयोगी हो सकते हैं, कालान्तर में अश्वारोही सेना के संगठन पर विशेष बल दिया। परन्तु इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि भारतीयों ने यूनानी युद्धप्रणाली की किसी भी विशेषता को नहीं अपनाया। उनका सैनिक संगठन सिकंदर के आक्रमण के पश्चात भी उसी प्रकार का रहा जैसा कि उसके पूर्व था। डॉ० राय चौधरी लिखते हैं कि भारतीयों ने पैदल सेना की ओर, जो सिकंदर के सैनिक बल का मूल आधार थी, उचित ध्यान न दिया।

टिप्पणी

निष्कर्ष–सिकंदर के आक्रमण से सम्बन्धित विषय-वस्तु का निष्पक्ष अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारतीयों के दृष्टिकोण से यह आक्रमण विशेष महत्व का नहीं था और न ही इसके भारतवर्ष पर कोई गहरे प्रभाव पड़े। यदि इससे भारतवासियों को कोई लाभ हुआ तो वह यह था कि भारत का पश्चिमी देशों के साथ सम्पर्क बढ़ गया। वास्तव में, सिकंदर के आक्रमण का भारत पर अधिक प्रभाव पड़ ही नहीं सकता था। एक तो इसलिए कि उसकी अकाल मृत्यु हो गई। दूसरे, वह भारत में अधिक समय तक न ठहरा और जब तक वह भारत में रहा वह युद्धों में व्यस्त रहा। तीसरे, उसने भारत के केवल एक छोटे-से भाग पर अधिकार किया था। शेष सारा देश उसके प्रभाव से मुक्त रहा। चौथे, सांस्कृतिक क्षेत्र में भारतवासी यूनानियों से अधिक श्रेष्ठ थे। अतः उनके लिए विदेशियों से कुछ सीखने का प्रश्न ही नहीं उठता था। पांचवे, यदि मौर्य काल के बाद भारतवर्ष में बसने वाले यूनानियों ने भारतीय सभ्यता को प्रभावित किया तो इसके लिए सिकंदर के आक्रमण को इतना अधिक श्रेय देना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है।

सिकंदर का चरित्र एवं प्रभाव

सिकंदर के आक्रमण का महत्त्व इस बात में भी निहित है कि इसके द्वारा हमें उस महान व्यक्ति के चारित्रिक गुणों का ज्ञान होता है। सर्वप्रथम, हमें इस बात का पता लगता है कि सिकंदर बड़ा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था जो एक छोटे-से राज्य का स्वामी होने पर भी विश्व-विजयी सम्राट बनना चाहता था। दूसरे, सिकंदर में अपनी महत्वाकांक्षा को कार्यान्वित करने की योग्यता भी थी। आक्रमण के समय उसने विभिन्न प्रकार के शत्रुओं से लोहा लिया और उसे प्रत्येक रण-क्षेत्र में सफलता मिली। तीसरे, निस्संदेह सिकंदर एक महान विजेता था, परन्तु उसमें रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था। यदि उसमें यह गुण विद्यमान होता तो वह अवश्य ही विजित प्रदेशों में स्थायी राज्य स्थापित कर लेता। खेद की बात है कि उसने मिस्र से लेकर पंजाब तक के विशाल भू-भाग पर अपना अधिकार जमा लिया, लेकिन ऐसा कोई रचनात्मक कार्य न किया जो उसके राज्य को स्थायी रूप दे सकता। चौथे, सिकंदर स्वभाव से बड़ा उदार व्यक्ति रहा, जिसमें परास्त शत्रुओं को क्षमा ही नहीं किया अपितु उनके राज्य भी लौटा दिए। कभी-कभी क्रोधवश होकर सिकंदर हृदयहीन हो जाता था और शत्रुओं तथा मित्रों को कठोर दण्ड देने में संकोच नहीं करता था। पांचवें, सिकंदर एक ऐसे देश का वासी था, जो अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध था। उसने अरस्तु जैसे गुणवान व्यक्ति से शिक्षा प्राप्त की थी। अतः सिकंदर स्वयं एक सभ्य व्यक्ति था और उसे सभ्यता तथा संस्कृति से विशेष प्रेम था। सम्भवतः उसने अपनी सभ्यता का प्रसार करने के लिए विजय-यात्रा का मार्ग अपनाया था।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. भारत पर प्रथम विदेशी आक्रमणकारी कौन थे?

   (क) पर्शियन (ख) मेसीडोनियन

   (ग) अरब (घ) इनमें से कोई नहीं

6. भारत से युद्ध में किस विदेशी सेना ने पहली बार हाथियों का उपयोग देखा था?

   (क) पर्शियन (ख) अरब

   (ग) मेसीडोनियन (घ) इनमें से कोई नहीं

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (घ)
3. (क)
4. (ख)
5. (क)
6. (ग)

1.6 सारांश

प्रत्येक जनपद अनेक ग्रामों और नगरों से मिलकर बना था जिसकी अपनी अलग राजनीतिक व्यवस्था थी, अलग शासन था। कालांतर में विकसित जनपद जातीय इकाई की अपेक्षा एक राजनीतिक इकाई के रूप में विकसित हो गया था। आवागमन अधिक सुलभ हो गया, लोगों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ। अनेक वर्गों और जातियों के लोग जनपद राज्यों में जाकर स्थायी रूप से रहने लगे। गांवों और नगरों की संख्या में वृद्धि हुई। इस प्रकार प्रत्येक जनपद का विस्तार हो गया। सीमा विस्तार की भावना और पारस्परिक युद्धों से भी जनपद अपेक्षाकृत विस्तृत हो गया। छोटे जनपद महाजनपद बन गए। ये महाजनपद स्वतंत्र सार्वभौम सत्तात्मक राज्य थे।

गणराज्यों के शासन और सत्ता के अधिकार किसी व्यक्ति विशेष के हाथों में केंद्रीभूत होने की अपेक्षा गण अथवा विभिन्न व्यक्तियों के हाथों में होते थे। प्रशासन के सूत्रवंश परंपरागत किसी व्यक्ति के हाथों में नहीं होते थे अपितु वे एक गण या समूह अथवा परिषद् के हाथों में होते थे। इस परिषद के सदस्य उच्च वर्ग के कुलीन लोग होते थे।

अनेक गणराज्य छोटे थे और उनके साधन भी सीमित थे। वह उतने शक्तिशाली भी नहीं थे जितने कि बड़े गणराज्य थे। अतः उन्हें सदैव अपने अस्तित्व को बचाने का भय रहता था। अतः छोटे गणराज्य मिलकर संघों का निर्माण करते थे। ऐसे संघ को संघात भी कहा जाता था।

टिप्पणी

ई.पू. छठी-पांचवीं शताब्दी के दौरान बिंबिसार के नेतृत्व में मगध मध्य गंगा के मैदान के प्रमुख दावेदार के रूप में तेजी से उभरा। वह बुद्ध का समकालीन था। बिंबिसार मगध का प्रथम महत्वपूर्ण शासक माना जाता है। राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उसने कौशल के राजघराने से वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इस विवाह में उसे काशी का एक जिला दहेज के रूप में मिला। गांधार के राज्य के साथ उसका संबंध सौहार्दपूर्ण था। कूटनीतिक संबंधों को मगध की शक्ति का प्रतीक माना जा सकता है।

छठी शताब्दी ई.पू. के मध्य कुरूष अथवा साइरस द्वितीय नामक एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति ने ईरान में हखामनी साम्राज्य की स्थापना की और अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उसने भारत पर आक्रमण किया। साइरस ने किन प्रदेशों को जीता इसके ठोस प्रमाण नहीं मिलते हैं। सिकंदर के जल सेनाध्यक्ष नियार्कस के विवरण के अनुसार, "साइरस ने आक्रमण का प्रयास किया पर उसका प्रयास असफल रहा। उसकी पूरी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई और वह केवल सात सैनिकों के साथ जान बचाकर भागा।" परंतु रोमन लेखक प्लिनी के विवरण से ज्ञात होता है कि साइरस ने कपिशा नगर को ध्वस्त किया। साइरस द्वितीय (558 ई.पू. से 529 ई.पू.) ने भारत पर आक्रमण का असफल प्रयास किया था। भारत में सर्वप्रथम इसी को विदेशी आक्रमण माना जाता है।

यूनान में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के पश्चात सिकंदर ने ईरान पर विजय प्राप्त करने की योजना बनाई क्योंकि तत्कालीन समय में ईरान का साम्राज्य काफी दुर्बल हो चुका था। सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात सिकंदर ने केवल 4 वर्ष के अल्पकाल में ही एशिया माईनर, सीरिया, बेबिलोनिया, मिस्र, ईरान आदि पर अपना अधिकार जमा लिया। अपने समस्त शत्रुओं को पराजित कर वह अपने शासन को सुदृढ़ कर उसने भारत पर विजय प्राप्त करने की योजना बनाई।

ई.पू. छठी सदी में जबकि आंतरिक दृष्टि से भारत मगध राज्य के नेतृत्व में एक विशाल साम्राज्य के निर्माण का प्रयत्न कर रहा था, भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर विदेशी आक्रमण हुए। इन आक्रमणकारियों में से प्रथम पर्शियन थे और उनके पश्चात यूनानी विजेता सिकंदर ने पंजाब और सिंध पर आक्रमण किया। ई.पू. 326 में सिकंदर सिंधु नदी को पार करके तक्षशिला की ओर बढ़ा व भारत पर आक्रमण किया।

सिकंदर जिस मार्ग से व्यास तक आया था उसी मार्ग द्वारा वापिस झेलम पहुंच गया। यहां पहुंच कर उसने अपने विजित प्रदेशों को सात प्रांतों में विभक्त किया। इनमें से दो प्रांतों को, जो भारत की सीमाओं से बाहर थे, उसने यूनानी गवर्नरों के हवाले कर दिया। (2) व्यास तथा झेलम के मध्यवर्ती प्रदेश का शासन पोरस को दे दिया। (3) झेलम के पश्चिम का प्रदेश राजा आम्भि को सौंपा गया। (4) काश्मीर का प्रदेश अभिसार शासक को दिया गया। (5) सिंध का प्रांत उसने अपने एक अधिकारी को सौंप दिया। (6) मिठनकोत के निकटवर्ती प्रदेश को एक प्रांत के रूप में उसने अपने एक और सैन्य अधिकारी को इसका गर्वनर नियुक्त किया।

सिकंदर के आक्रमण के परिणामस्वरूप उत्तर भारत के कई छोटे-छोटे राज्यों का अन्त हो गया था और उनके स्थान पर आम्भि, पोरस तथा अभिसार शासकों के विशाल राज्य स्थापित हो गए थे। यह निश्चय ही भारत की राजनीतिक एकता की ओर एक महत्वपूर्ण पग था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने कालान्तर में इन राज्यों का अन्त करके एक

शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की और भारत को राजनीतिक एकता के रूप में बहुत बड़ा वरदान दिया।

टिप्पणी

निस्संदेह सिकंदर एक महान विजेता था, परन्तु उसमें रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था। यदि उसमें यह गुण विद्यमान होता तो वह अवश्य ही विजित प्रदेशों में स्थायी राज्य स्थापित कर लेता। खेद की बात है कि उसने मिस्र से लेकर पंजाब तक के विशाल भू-भाग पर अपना अधिकार जमा लिया, लेकिन ऐसा कोई रचनात्मक कार्य न किया जो उसके राज्य को स्थायी रूप दे सकता।

1.7 मुख्य शब्दावली

- **राजतंत्र** : राजा द्वारा शासन।
- **गणतंत्र** : जनसाधारण (प्रतिनिधियों) द्वारा शासन।
- **कुटंब** : परिवार।
- **प्रादुर्भाव** : आरंभ।
- **दीक्षा** : उपनयन संस्कार।
- **सुदृढ़ीकरण** : मजबूत करना।
- **अभिलेख** : किसी चट्टान इत्यादि पर की गई लिखाई (खुदाई)।
- **दोआब** : दो नदियों के बीच का क्षेत्र।
- **यवन** : यूनान का निवासी।

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रमुख जनपदों एवं गणतंत्रों की संख्या कितनी–कितनी मानी गई है?
2. मध्य गंगा के मैदान के किस जनपद का उदय इस काल की प्रमुख घटना है?
3. भारत पर प्रथम दो विदेशी आक्रमणकारी शक्तियों के नाम बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अंग, कौशल, पांचाल एवं कम्बोज प्रभुत्वशाली जनपद क्यों थे? वर्णन कीजिए।
2. कपिलवस्तु के शाक्य, कुशीनारा के मल्ल व वैशाली के लिच्छवि गणराज्यों के बारे में विस्तार से जानकारी दीजिए।
3. मगध साम्राज्य के उदय एवं विस्तार में सहायक कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. भारत पर पर्शियन आक्रमण के बारे में विस्तार से समझाइए।
5. भारत पर मेसिडोनियन आक्रमणकारी शासकों एवं इसके प्रभावों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।
3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।
4. झा, डी. एन.: प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.: द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.: इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.: (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,: द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.: प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीताः ''प्राचीन भारत का इतिहास'' मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंदः ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूमः II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।

इकाई 2 मौर्य, शुंग और इंडो–ग्रीक

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 मौर्य
- 2.2.1 मौर्य साम्राज्य
- 2.2.2 चंद्रगुप्त मौर्य
- 2.2.3 अशोक का धम्म : अवधारणा
- 2.2.4 मौर्य प्रशासन
- 2.2.5 मौर्य कला और वास्तुकला
- 2.2.6 मौर्य संस्कृति
- 2.2.7 मौर्यकालीन भारत में सामाजिक धार्मिक व आर्थिक परिवर्तन
- 2.2.8 मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

2.3 शुंग और कण्व
- 2.3.1 शुंगों का राजनीतिक सर्वेक्षण
- 2.3.2 पुष्यमित्र शुंग
- 2.3.3 पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारी एवं शुंग राजवंश का अंत
- 2.3.4 शुंग वंश का महत्व
- 2.3.5 कण्व

2.4 भारत में इंडो–ग्रीक और पार्थियन
- 2.4.1 इंडो–ग्रीक
- 2.4.2 पार्थियन

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.6 सारांश
2.7 मुख्य शब्दावली
2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

प्राचीन भारत के राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास में मौर्य वंश से नवयुग का श्रीगणेश होता है। मौर्यकाल में ही समस्त भारत को सर्वप्रथम एकछत्र शासन के अंतर्गत एक सूत्र में संगठित किया गया था जिससे भारत का सर्वांगीण विकास हुआ। मौर्यों की छत्रछाया में भारत ने शांति, बंधुत्व और सांस्कृतिक एकता के आधार पर एक नवीन भारत का निर्माण किया। मौर्य वंश का आगमन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। जिस कठिन परिस्थिति में इस वंश की नींव पड़ी व सुदृढ़ता प्राप्त की, उसे देखते हुए वास्तव में इसका स्थान बहुत ऊंचा है। मौर्य वंश के अंत के बाद शुंग वंश की स्थापना हुई। इन्हें ब्राह्मण धर्म को पुनर्जीवित करने का श्रेय जाता है। यवनों के आक्रमण को विफल करने का श्रेय भी शुंग वंश को जाता है। इतिहास साक्षी है कि जब भी भारतीय सीमाएं असुरक्षित हुई विदेशी आक्रांताओं ने हम पर आक्रमण किया। इंडो-ग्रीक एवं पार्थियनों का भारत पर शासन इसका प्रमाण है।

इस इकाई में हम मौर्य वंश, शुंग वंश, कण्व–वंश, इंडो–ग्रीक तथा पार्थियनों का अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मौर्य वंश, इसके शासकों, उपलब्धियों व महत्व को जान पाएंगे;
- शुंग वंश के प्रादुर्भाव व महत्व को समझ पाएंगे;
- कण्व वंश के बारे में जानकारी ले पाएंगे;
- भारत में इंडो–ग्रीक तथा पार्थियन शासन के कारणों व इसके परिणामों का अध्ययन कर पाएंगे।

2.2 मौर्य

इस अध्याय में हम मौर्य वंश, उनकी उपलब्धियों, प्रशासन, साम्राज्य व इसके अंत का अध्ययन करेंगे।

2.2.1 मौर्य साम्राज्य

भारत के इतिहास में पहली बार लगभग संपूर्ण वर्तमान भारत और इसके बाहर का क्षेत्र एक सशक्त केंद्रीय सत्ता के शासन में एक सूत्र में पिरोया गया था। मौर्य शासन काल में भारत ने चहुंओर प्रगति की। लोगों का जीवन सुखमय हुआ। एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना हुई। आइए इसके बारे में और जानने का प्रयास करते हैं–

मौर्य कौन थे–यह प्रश्न अत्यंत विवादास्पद है कि मौर्यों की जाति एवं वंश क्या है? इस संबंध में प्रमुख तर्क निम्नांकित हैं–

- **मौर्य शूद्र थे**–कुछ विद्वानों ने ब्राह्मण ग्रंथों को आधार मानकर चंद्रगुप्त मौर्य व उसके वंश को शूद्र कहा है। पुराणों में कहा गया है 'ततः प्रभृति रजानी भविष्य शूद्रोनयः' एवं पुराणों की टीका में चंद्रगुप्त मौर्य को राजा नंद की पत्नी मुरा से उत्पन्न बताया है। मुद्राराक्षस में भी लिखा है "नंदकुलमनेन पितृकुलभूत कृतघ्नेन घातितमं" उसे कुलहीन व वृषल कहा गया है। दुढ़िराज ने लिखा है कि वह शूद्र नंद का पुत्र था। परंतु उसके विपक्ष में अनेक विद्वानों ने तर्क दिए हैं और कहा है कि मौर्य शूद्र नहीं थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा है– 'येन शास्त्रं च शस्त्र च नंदराजगता च भुः' अर्थात उस व्यक्ति ने (चंद्रगुप्त) शस्त्र और शास्त्रों को नंदों की दासता से मुक्त कराया। नीलकंठ शास्त्री का मानना है, "मुरा का समीकरण काल्पनिक व अशुद्ध व्याकरण पर आधारित है। मुरा से मौरेय बनता है मौर्य नहीं।" अतः प्रमाणित नहीं होता कि मौर्य शूद्र थे।

टिप्पणी

- **मौर्य पारसी थे–**चंद्रगुप्त कालीन भारत व फारस की कतिपय सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रथाओं और विधियों के साक्ष्य देखकर स्पूनर ने मौर्यों को पारसी कहा है किंतु भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों ने इसका खंडन किया है।
- **मौर्य क्षत्रिय थे–**जैन, बौद्ध साहित्य व अधिकांश इतिहासकार मौर्यों को क्षत्रिय मानते हैं। महावंश में लिखा है-''ब्राह्मण चाणक्य ने नवें घनानंद का विनाश कर चंद्रगुप्त को संपूर्ण जम्बूद्वीप का सम्राट बनाया, वह क्षत्रिय था।" स्वयं सम्राट अशोक ने एक स्त्री से कहा था-देवी अहं क्षत्रिय। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट पर्वम, महाबोधिवंश, पुण्याश्रव कथाकोष एवं अभिलेखीय साक्ष्य भी मौर्य के क्षत्रिय होने की पुष्टि करते हैं। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का मानना है कि "वर्तमान साक्ष्यों और पुरा सामग्री के आधार पर मौर्यों को क्षत्रिय मानना चाहिए।''

मौर्य शासकों की सूची

1. चंद्रगुप्त मौर्य – 322–298 ई.पू. (24 वर्ष)
2. बिन्दुसार – 298–271 ई.पू. (28 वर्ष)
3. अशोक – 269–232 ई.पू. (37 वर्ष)
4. कुणाल – 232–228 ई.पू. (4 वर्ष)
5. दशरथ – 228–224 ई.पू. (4 वर्ष)
6. सम्प्रति – 224–215 ई.पू. (9 वर्ष)
7. शालिसुक – 215–202 ई.पू. (13 वर्ष)
8. देववर्मन – 202–195 ई.पू. (7 वर्ष)
9. शतधन्वन् – 195–187 ई.पू. (8 वर्ष)
10. बृहद्रथ – 187–185 ई.पू. (2 वर्ष)

मौर्य वंश के शासकों का संक्षिप्त परिचय

चंद्रगुप्त मौर्य

(323–298 ई.पू.) प्राचीन भारत में मौर्य साम्राज्य के पहले संस्थापक थे। वे ऐसे शासक थे जो पूरे भारत को एक साम्राज्य के अधीन लाने में सफल रहे। उनका साम्राज्य पूर्व में बंगाल से अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान तक और पश्चिम में पकिस्तान से हिमालय और कश्मीर के उत्तरी भाग तक फैला हुआ था। और साथ ही दक्षिण में पठार तक विस्तृत था। भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल को सबसे विशाल शासन माना जाता है।

बिन्दुसार

चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य के अगले शासक हुए। इतिहास में प्रसिद्ध शासक सम्राट अशोक बिन्दुसार के ही पुत्र थे। उन्होंने लगभग 25 वर्षों तक शासन किया।

टिप्पणी

सम्राट अशोक

सम्राट अशोक भारत के महान शक्तिशाली समृद्ध सम्राटों में से एक थे। वे मौर्य साम्राज्य के शासक बिन्दुसार के पुत्र थे। उन्होंने लगभग 41 वर्षों तक शासन किया। अशोक मौर्य जो साधारणतः अशोका और महान अशोका के नाम से जाने जाते हैं।

दशरथ मौर्य

सम्राट अशोक के पोते दशरथ मौर्य उस साम्राज्य के 5 वे शासक थे। दशरथ शाही शिलालेख जारी करने वाले मौर्य राजवंश के अंतिम शासक थे– इस प्रकार अंतिम मौर्य सम्राट को शिलालेख के सूत्रों से जाना जाता है। उन्होंने लगभग 8 वर्षों तक शासन किया। दशरथ की 224 ई.पू. मृत्यु हो गयी और उसके बाद उनके चचेरे भाई संप्रति उनके उत्तराधिकारी हुए।

संप्रति

संप्रति मौर्य वंश के सम्राट थे। वह अशोक के अंधे पुत्र कुणाल के पुत्र थे, और अपने चचेरे भाई दशरथ के बाद मौर्य साम्राज्य के सम्राट के रूप में सफल हुए थे। उन्होंने 9 वर्ष तक शासन किया ।

शालिसुक

शालिसुक ने 215–202 ई.पू. तक लगभग 13 वर्षों तक शासन किया। वह सम्प्रति मौर्य के उत्तराधिकारी थे।

देववर्मन

देववर्मन 202–195 ई.पू. शासन करने वाले मौर्य साम्राज्य के सम्राट थे। पुराणों के अनुसार, वह शालिसुक मौर्य के उत्तराधिकारी थे और उन्होंने सात वर्ष तक शासन किया।

शतधन्वन् मौर्य

शतधन्वन् मौर्य देववर्मन मौर्य के उत्तराधिकारी थे और वे आठ वर्षों तक शासन करते रहे। अपने समय के दौरान, आक्रमणों के कारण उन्होंने अपने साम्राज्य के कुछ प्रदेशों को खो दिया।

बृहद्रथ मौर्य

बृहद्रथ मौर्य, मौर्य साम्राज्य के अंतिम शासक थे। 187–185 ई.पू. तक उन्होंने शासन किया। उन्हें उनके ही एक मंत्री पुष्यमित्र शुंग ने मार दिया था। जिसने शुंग साम्राज्य स्थापित किया।

2.2.2 चंद्रगुप्त मौर्य

चंद्रगुप्त मौर्य, मौर्य वंश का संस्थापक था। इसके प्रारंभिक जीवन के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। महावंश टीका से पता चलता है कि चंद्रगुप्त का जन्म 345 ई.पू. क्षत्रिय कुल के मौर्य वंश में हुआ था। इसके पिता मौर्य नगर के राजा थे। एक राजा

ने मौर्य नगर पर आक्रमण किया और मौर्य राजा को मार डाला उसकी विधवा पत्नी रक्षा हेतु अपने भाई के यहां रहने लगी। वहीं चंद्रगुप्त का जन्म हुआ। सुरक्षा विचार से चंद्रगुप्त को एक ग्वाले को दे दिया गया। उसने एक शिकारी को इस बालक को बेच दिया। वह बालकों का नेता था। चाणक्य ने चंद्रगुप्त की प्रतिभा से प्रभावित होकर 1000 कार्षापण में चंद्रगुप्त को खरीद लिया। उस समय चंद्रगुप्त की आयु 8 से 9 वर्ष की थी। चाणक्य चंद्रगुप्त की प्रतिभा से अत्यधिक प्रसन्न था अत: वह चंद्रगुप्त को अपने साथ ले आया तथा उसे हर प्रकार की शिक्षा देकर पारंगत कर राजा बना दिया। कुछ विद्वानों का मानना है कि वह ग्राम प्रधान का पुत्र था तथा उस गांव में मोरों की संख्या अधिक थी जिससे यह मौर्य कहलाए।

टिप्पणी

चंद्रगुप्त मौर्य की दिग्विजय–चंद्रगुप्त मौर्य एक महान सेनानायक एवं कुशल योद्धा था। चंद्रगुप्त अपनी प्रतिभा, महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व व चाणक्य की प्रगाढ़ कूटनीति के ज्ञान से किसी भी विरोधी शक्ति का सामना करने को तैयार था। 322 ई.पू. सिंहासनासीन होने के पश्चात उसने अनेक युद्ध लड़े जो निम्नांकित हैं–

- **मगध पर आक्रमण**–चंद्रगुप्त ने मगध पर अपना प्रथम अभियान किया था। महावंश टीका के अनुसार, "चंद्रगुप्त ने शक्तिशाली सेना एकत्रित कर मगध पर आक्रमण किया परंतु मगध के लोगों ने विद्रोह कर दिया। चंद्रगुप्त व चाणक्य ने वहां से भागकर एक महिला के घर में शरण ली। वहां एक महिला अपने बच्चे को खाना खिला रही थी। बच्चे ने रोटी के बीच के भाग को खाने की चेष्टा की जिससे उसका मुंह जल गया तब उस महिला ने कहा–तुमने चंद्रगुप्त की ही तरह गलती की है। उसने सीमाप्रांतों को अधीन किए बिना ही राज्य के मध्य ग्रामों और नगरों पर आक्रमण करना प्रारंभ किया इसीलिए जनता उसके विरुद्ध हो गई। ऐसा करना उसकी मूर्खता का प्रतीक है।" यह सुनकर चंद्रगुप्त को अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्होंने पुन: अपनी सेना संगठित की।
- **पश्चिमोत्तर भारत से विदेशी सत्ता का उन्मूलन**–प्रथम अभियान में पराजय के पश्चात चंद्रगुप्त ने व्यवस्थित ढंग से आक्रमण किया। वह पंजाब पर अधिकार करना चाहता था परंतु वहां से यूनानियों को हटाना आवश्यक था। अत: चंद्रगुप्त ने अनेक कार्य किए; जैसे धन प्राप्ति हेतु प्रयास किया, अपनी सेना में वृद्धि हेतु अनेक जातियों के योद्धाओं को शामिल किया तथा जनता को विदेशी शासन के विरुद्ध भड़काकर जनमत प्राप्त किया। जस्टिस का मत है, ''चंद्रगुप्त ने विभिन्न स्थानीय लोगों को अपनी सेना में भर्ती किया जिन्हें वह चोर डाकू की संज्ञा देता है।''
- **सिकंदर व चंद्रगुप्त**–सिकंदर ने भारत के अनेक भागों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था अत: चंद्रगुप्त उससे भेंट करना चाहता था। परंतु सिकंदर से भेंट के समय चंद्रगुप्त की धृष्टता के परिणामस्वरूप सिकंदर ने मृत्यु का आदेश दिया किंतु चंद्रगुप्त वहां से भाग निकला। उपर्युक्त घटना के प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं।

टिप्पणी

- **पर्वतक से संधि**–मगध पर आक्रमण के लिए उसने पर्वतक नामक राजा से संधि की। पर्वतक ने उसे बहुत सहायता प्रदान की परंतु कुछ समय पश्चात चंद्रगुप्त ने विषकन्या द्वारा पर्वतक की हत्या करवा दी।
- **मगध विजय**–शक्तिशाली सेना संगठित कर चंद्रगुप्त ने मगध पर आक्रमण कर दिया। उस समय मगध का सम्राट धनानंद था। चंद्रगुप्त ने धनानंद को पराजित कर उसके वंश को समाप्त कर दिया। मुद्राराक्षस के अनुसार, "इस युद्ध में चाणक्य ने नवनंदों की हत्या करवाई तथा अंतिम प्रतिनिधि की हत्या करवाकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की।" धनानंद की हत्या के पश्चात चंद्रगुप्त स्वयं मगध का सम्राट बन गया।
- **सेल्यूकस से युद्ध**–सेल्यूकस सिकंदर का सेनापति था। वह सिकंदर की ही भांति वीर व महत्वाकांक्षी था। वह सिकंदर द्वारा विजयी क्षेत्रों पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था अतः उसने चंद्रगुप्त पर आक्रमण किया, किंतु पराजित हुआ। वी.सी. पांडेय लिखते हैं- "सेल्यूकस ने जब भारत पर आक्रमण किया उस समय महापराक्रमी चंद्रगुप्त का शासन स्थापित हो चुका था जो युगप्रवर्तक कूटनीतिज्ञ चाणक्य की चिरबुद्धि से संरक्षित था। इसमें चंद्रगुप्त को विजय प्राप्त हुई । अंततः दोनों की संधि हो गई।"
  - **संधि की शर्तें–**
    1. सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त को 500 हाथी भेंट स्वरूप दिए।
    2. सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलना का विवाह चंद्रगुप्त से करना स्वीकार किया। डॉ. ईश्वरी प्रसाद इस विवाह को प्रथम अंतर्राष्ट्रीय विवाह मानते हैं।
    3. सेल्यूकस ने 4 प्रदेश गडरोसिया, आर्कोसिया, एरिया, परिपनसदी चंद्रगुप्त को दिए। स्मिथ के अनुसार, "2000 साल से अधिक हुए जब भारत के प्रथम सम्राट जिसने एक वैज्ञानिक सीमा को प्राप्त कर लिया था जिसके लिए ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थ में ही आहें भरते थे।"
    4. मैगस्थनीज को यूनानी राजदूत के रूप में भारत भेजा जिसने इंडिका की रचना की थी।
- **पश्चिमी भारत पर विजय**–चंद्रगुप्त ने पश्चिमी भारत पर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य में वृद्धि की जिसमें गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा, काठियावाड़ अत्यंत महत्वपूर्ण थे। मुद्राराक्षस में लिखा है-हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक के राजा भयभीत और नतशीश होकर चंद्रगुप्त के चरणों में शीश झुकाया करते थे। जूनागढ़ अभिलेख में चंद्रगुप्त द्वारा सुदर्शन झील के निर्माण के प्रमाण मिलते हैं।
- **दक्षिण भारत पर विजय**–दक्षिण राज्य, चेर, चोल, पाण्ड्य राज्यों को जीतकर चंद्रगुप्त ने राजनीतिक एकता स्थापित की। महावंश टीका में लिखा है–'सकले जम्बूद्वीप रज्जे सामिभिसिचि सो।' इस प्रकार चंद्रगुप्त ने संपूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर भारत को एकता के सूत्र में बांध दिया। डॉ. चौधरी ने लिखा है– "इस महायोद्धा ने जहां एक ओर मगध को कुख्यात शासन से मुक्त

किया तो वहीं दूसरी ओर विदेशी दासता से मुक्ति दिलाई। उसकी राजनीतिक एवं सैनिक सफलताएं महान हैं।"

टिप्पणी

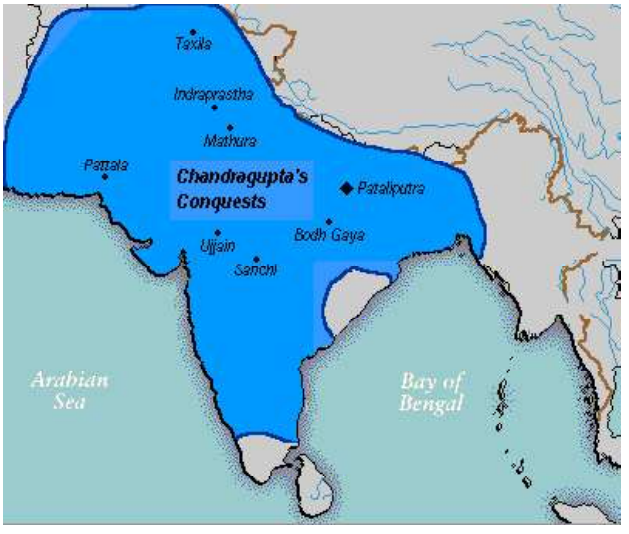

चंद्रगुप्त अपने अंतिम समय में जैन धर्मावलंबी भद्रबाहु के श्रवणवेलगोला चला गया जहां 298 ई.पू. में इस महान सम्राट की मृत्यु हो गई।

अर्थव्यवस्था का विकास

मौर्य काल में अधिकांशत: शिल्पी, व्यापारी और सरकारी कर्मचारी रहते थे। अर्थव्यवस्था का निर्माण सामान के निर्माताओं और व्यापारियों की गतिविधियों पर आधारित होता था। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में व्यापारिक लेन-देन भी बढ़ता है। इस काल में यह लेन-देन गंगा घाटी से पश्चिमी और मध्य भारत, दक्कन तथा दक्षिणी भारत तक फैल गया। ग्रामीण बस्तियों के प्रसार और गृहपतियों की समृद्धि ने शहरी केंद्रों के और अधिक प्रसार के लिए सामाजिक आधार प्रदान किया। कई मामलों में अमीर ग्रामीण परिवारों ने शहरों से संपर्क स्थापित किया और व्यापारी-समुदायों को वित्तीय सहायता प्रदान की।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दुर्गनिवेश या दुर्गविधान का जिक्र है जिससे पता चलता है कि शहरों को दीवार से घेरा गया था। यह भी बताया जाता है कि इन शहरों में पुजारी, सैनिक, व्यापारी, शिल्पी और अन्य लोग रहते थे। इस उद्धरण में शहर की रक्षा के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें उनकी बनावट का भी उल्लेख है। इसका उद्देश्य था–आर्थिक नियंत्रण को सुव्यवस्थित करना। वस्तुत: अर्थशास्त्र में शहरों (दुर्गों) को जनपदों के समान राजस्व के स्रोत के रूप में देखा गया है। शहरों से प्राप्त कर से राज्य को अच्छी आमदनी होती थी, अत: मौर्यों ने शहर के उत्थान और प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया। एक बात ध्यान देने की है कि केवल दुर्ग या राजधानी में रहने वाली श्रेणियों पर कर लगाए जाने का जिक्र हुआ है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रामीण इलाकों में रहने वाली श्रेणियां करों से मुक्त थीं। इसका कारण यह हो सकता है कि शहर में रहने वाले लोगों को नियंत्रित और व्यवस्थित करना ज्यादा आसान होता है।

टिप्पणी

मैगस्थनीज ने मौर्यों की राजधानी का विस्तार से वर्णन किया है, इससे यह भी पता चलता है कि शहर का प्रशासन कैसा था और शहरी अर्थव्यवस्था के कौन-से हिस्से राज्य के हित में नियंत्रित किए जाते थे। वह बताता है कि पाटलिपुत्र का प्रशासन तीस अधिकारियों के जिम्मे था। ये अधिकारी छह समितियों में विभक्त थे, प्रत्येक समिति में पांच-पांच सदस्य थे। इन छह समितियों में से चार आर्थिक क्रियाकलापों से संबद्ध थीं। ये समितियां औद्योगिक उत्पादन, व्यापार और वाणिज्य तथा तैयार माल की सार्वजनिक बिक्री का निरीक्षण करती थीं और बेचे जाने वाले सामान पर कर वसूल करती थीं। अन्य दो समितियां विदेशियों के कल्याण और जन्म तथा मृत्यु के पंजीकरण से संबद्ध थीं। आर्थिक गतिविधियों के समुचित विकास की दृष्टि से नगरों में कानून और व्यवस्था संबंधी प्रशासन भी महत्वपूर्ण हो गया।

नगर प्रशासन का यह विवरण मौर्य साम्राज्य के केंद्र में बसे सभी प्रमुख बड़े शहरों पर लागू होता है। पर्याप्त सूचनाओं के अभाव में यह बताना कठिन है कि छोटे शहरों, तटीय शहरों और तीर्थ-स्थलों के प्रशासन का सही स्वरूप क्या था। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि मौर्यों की अर्थव्यवस्था ने शहरों के उदय और समृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। शहरी अर्थव्यवस्था की समृद्धि के लिए लोगों का आवागमन और विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच परस्पर संवाद कायम होना आवश्यक है और इस काल में ऐसा संभव हुआ क्योंकि साम्राज्य के बड़े शहरों और प्रमुख क्षेत्रों में काफी हद तक राजनीतिक स्थिरता व्याप्त थी।

अर्थव्यवस्था का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें मुद्रा का चलन बढ़ा और लेन-देन मुद्रा में होने लगा। हालांकि मुद्रा का चलन मौर्यों के जमाने से पहले से चला आ रहा था, परंतु वाणिज्य के विकास के कारण मौर्य काल में यह आम उपयोग की चीज हो गई। व्यापार में मुद्रा अर्थव्यवस्था की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है, परंतु अर्थव्यवस्था में मुद्रा के बढ़ते हुए महत्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि अधिकारियों को भी शायद वेतन नकद ही दिया जाता था। अर्थशास्त्र में इस बात का जिक्र है कि 48,000 पण और 60,000 पण के बीच वार्षिक वेतन देने का प्रावधान था। इस प्रकार की शक्तिशाली नकदी अर्थव्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिए सिक्कों की ढलाई और चांदी तथा तांबे जैसी धातुओं का महत्व बढ़ गया होगा। मौर्यकालीन पंच मार्क्ड चांदी के सिक्के इस बात के प्रमाण हैं कि मौर्यों ने मुद्रा अर्थव्यवस्था को सुव्यवस्थित रूप से लागू किया। ये पंच मार्क्ड सिक्के मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश और बिहार में पाए गए हैं, जो साम्राज्य का केंद्रीय स्थल था।

मौर्यों के अधीन शहरी अर्थव्यवस्था पर राज्य का पूरा नियंत्रण था। इस क्रम में राज्य कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्रों को एकाधिकार क्षेत्र में परिणत कर देता था। अर्थशास्त्र में खनिज अधीक्षक (आकाराध्यक्ष) का जिक्र हुआ है जो नई खानों की खोज करता था और पुरानी खानों को फिर से खोलने का प्रयत्न करता था। नमक खनन के क्षेत्र में भी राज्य का एकाधिकार था। विभिन्न प्रकार की धातुओं का उपयोग केवल सिक्का ढालने के लिए ही नहीं होता था, बल्कि उससे अस्त्र भी बनाए जाते थे। इसी कारण अर्थशास्त्र में लौह अधीक्षक (लोहाध्यक्ष) का जिक्र हुआ है। सैनिकों के लिए अस्त्र उपलब्ध कराने के अलावा, राज्य कृषि के लिए औजार भी प्रदान करता था। खनन और खनिज पदार्थों के व्यापार पर एकाधिकार से मौर्य साम्राज्य काफी महत्वपूर्ण कच्चे मालों को अपने नियंत्रण

में रख सका। इनके समुचित उपयोग के फलस्वरूप कृषि और कृषि क्षेत्रों में उत्पादन काफी बढ़ा।

टिप्पणी

एक बार शहरी केंद्रों पर आर्थिक नियंत्रण स्थापित होने और इनके प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के बाद, इन शहरों के माध्यम से विभिन्न जनपदों पर नियंत्रण मजबूत किया गया। वाणिज्यिक लेन-देन में वृद्धि होने के कारण, आदान-प्रदान और व्यापार के केंद्रों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। अर्थव्यवस्था के दूसरे मामलों के समान ही इन केंद्रों पर मौर्यों का नियंत्रण विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न स्तर का था।

2.2.3 अशोक का धम्म : अवधारणा

अशोक विश्व इतिहास में अद्वितीय स्थान रखता है। वह मात्र अपनी साम्राज्य विशालता के लिए ही विख्यात नहीं है वरन वैयक्तिक चरित्र एवं अपने उद्देश्यों एवं आदर्शों के लिए भी प्रसिद्ध है। वह एक कुशल शासक, श्रेष्ठ सम्राट व आदर्श मानव था। एच.जी. वेल्स ने लिखा है, "प्रत्येक युग और प्रत्येक राष्ट्र ऐसे राजा को जन्म नहीं दे सकता। अशोक की तुलना आज भी विश्व इतिहास में किसी अन्य से नहीं की जा सकती।"

- **प्रारंभिक जीवन**–देवानां प्रियदर्शी सम्राट अशोक के जन्म व प्रारंभिक जीवन के विषय में प्रमाणों का अभाव है। उनके पिता का नाम बिंदुसार व माता का नाम धम्मा था। दीपवंश के अनुसार, बिंदुसार की 16 रानियां और 101 पुत्र थे। सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार, अशोक अत्यंत निर्दयी एवं रक्तपिपासु था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात उसने अपने 99 भाइयों की हत्या करके गद्दी प्राप्त की थी। यही कारण है कि 273 ई.पू. बिंदुसार की मृत्यु के पश्चात 4 वर्ष अशोक ने अपने भाइयों की हत्याएं की थीं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार राजगद्दी प्राप्त करने के लिए उसे अपने भाई सुसीम से संघर्ष करना पड़ा था। बौद्ध ग्रंथ भी इन तथ्यों को स्वीकार करते हैं।
- **कलिंग विजय**–कलिंग एक शक्तिशाली व स्वतंत्र राज्य था। अशोक के 13वें शिलालेख में कलिंग विजय का उल्लेख मिलता है। राज्याभिषेक के 8वें वर्ष देवताओं के प्रिय सम्राट अशोक ने कलिंग विजय प्राप्त की थी।

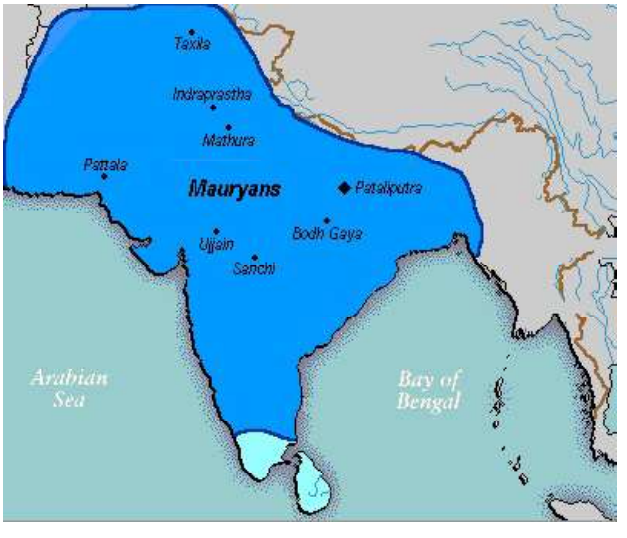

टिप्पणी

कलिंग आक्रमण का कारण साम्राज्य विस्तार की भावना थी। अशोक ने 261 ई. पू. अपनी विशाल सेना के साथ कलिंग पर आक्रमण किया जिसमें 150000 व्यक्ति बंदी बनाए गए व 100000 व्यक्ति मारे गए। इस भीषण रक्तपात को देखकर अशोक का हृदय द्रवित हो गया और उसने दिग्विजय के स्थान पर धम्म विजय की घोषणा की। अशोक के शिलालेख पर उत्कीर्ण विवरणानुसार–सम्राट का आदेश है कि प्रजा के साथ पुत्रवत व्यवहार व जनता से प्यार किया जाए, लोगों को दंड व यातनाएं न दी जाएं। सीमांत जातियों को आश्वस्त किया कि उन्हें सम्राट से कोई भय नहीं है। उन्हें राजा के साथ व्यवहार करने में सुख मिलेगा कष्ट नहीं। राजा यथाशक्ति उन्हें क्षमा करेगा।

डॉ. त्रिपाठी का मानना है कि–'कलिंग विजय के बाद भेरी घोष सदा के लिए मूक हो गया और धम्मघोष का शांतिप्रिय व नेहसिंचित नाद दिगंत में गूंज उठा।'

कलिंग विजय ने न केवल अशोक वरन संपूर्ण विश्व इतिहास को एक नवीन धारणा प्रदान की। अशोक ने शांतिप्रियता की नीति अपनाकर विश्व के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

अशोक की नीति और धम्म

अशोक का धम्म विश्व इतिहास में अत्यंत प्रसिद्ध था परंतु यह प्रश्न विवादास्पद है कि अशोक का धम्म क्या है? अशोक के धम्म का अभिप्राय धर्म से नहीं वरन निष्ठा, आदर व सदाचरण से है। पाश्चात्य इतिहासकारों ने धम्म का अनुवाद दया के धर्म से किया है। द्वितीय स्तंभ लेख में अशोक स्वयं प्रश्न करता है कि 'कियं चु धम्मे?' अर्थात धम्म क्या है? स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है –'आपासिनवे बहुकथाने दया दाने सचे सोचये' अर्थात पापकर्म से निवृत्ति, दया, दान, सत्य कर्म शुद्धि ही धम्म है। द्वितीय लघुशिलालेख में वर्णित है- माता-पिता की सेवा, जीवमात्र का सम्मान, सत्य–ये सब दया धर्म के लक्षण हैं तथा गुरुजनों का सम्मान, गरीबों के प्रति सहानुभूति–ये धर्म के सनातन रूप हैं। 12वें शिलालेख के अनुसार, 'सभी संप्रदायों के व्यक्ति उसकी श्रद्धा के पात्र हैं। चाहे वे श्रमण हों या गृहस्थ। सभी धर्मों के सार में वृद्धि हो, यही मेरी मनोकामना है। तेरहवें शिलालेख में धम्म का सार है-'सर्वभूतानां अक्षति च संयम च।'

टिप्पणी

- **धम्म के तत्व**–अशोक का धम्म किसी विशेष धर्म पर आधारित न होकर सभी धर्मों की अच्छाइयों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है, जिसे व्यावहारिक सिद्धांत कहते हैं तथा दूसरे वे जिनका परित्याग करना चाहिए वह निषेधात्मक सिद्धांत हैं।

  (क) व्यावहारिक सिद्धांत–अशोक ने सभी मानवों से निम्न सिद्धांतों को अपनाने के लिए कहा है। ये सिद्धांत हैं–

  1. अनारम्भो प्राणानां – प्राणवान जीव जंतुओं की हत्या न करना।
  2. अविहिंसा भूतानां – अस्तित्ववान जीवों को क्षति न पहुंचाना।
  3. मातरि-पितरि सुसूषा – माता-पिता की सेवा करना।
  4. थेर सुसूषा – वृक्षों की सेवा करना।
  5. गुरुणां अपचिति – गुरुओं का आदर करना।
  6. मित्र संस्तुत नाटिकानां – मित्र व परिचितों से सहानुभूति।
  7. ब्राह्मण समणानां दानं सम्पटिपति – ब्राह्मण श्रमणों से उदारतापूर्वक व्यवहार करना।
  8. दासभतकम्हि सम्प्रतिपति – दासों से समानता का व्यवहार करना।
  9. अपव्ययता और अपमांडता – अल्प व्यय व अल्प संचय।

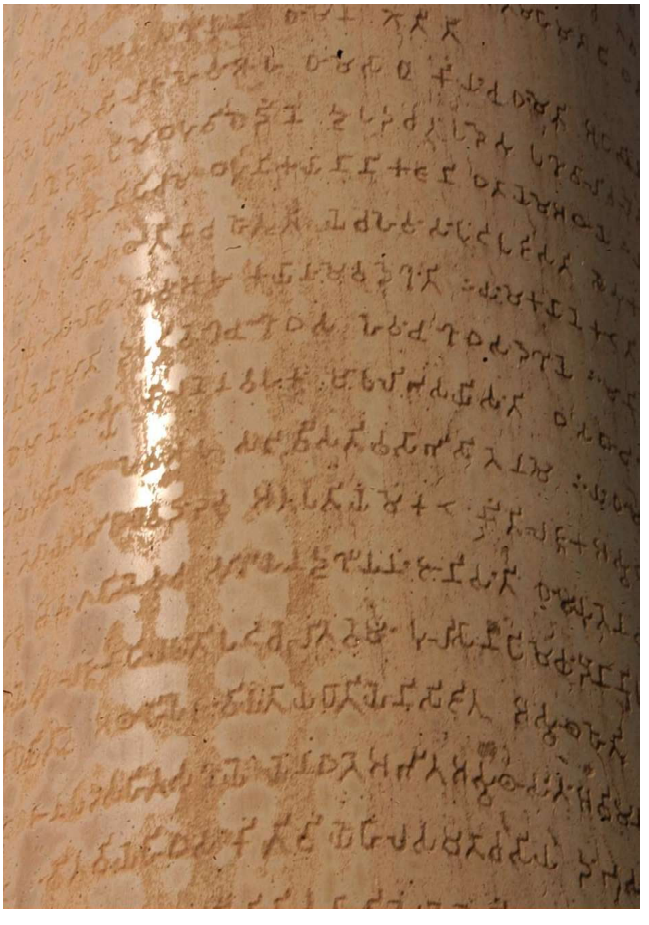

टिप्पणी

इन सब बातों के अतिरिक्त सभी धर्मों की बातों को उदारतापूर्वक सुनना चाहिए। 12वें शिलालेख की पंक्तियों में लिखा है–दास तथा वेतन पाने वाले सेवकों से उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, पशुवध निषेध अत्यंतावश्यक है। इसके अतिरिक्त धम्म का राजनीतिक आदर्श भी था। प्रथम शिलालेख के अनुसार–सभी मेरी प्रजा (संतान) हैं जिस प्रकार मैं अपनी (संतान) प्रजा के लिए इच्छा रखता हूं कि वह सभी पारलौकिक-व-एहलौकिक हितों और सुखों से संयुक्त हों, उसी प्रकार मेरी इच्छा सब मनुष्यों के लिए है। धम्म मंगल का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा, 'इमं तू खो महफल ये अमंगल।' धम्म विजय में कहा कि ऐसी रीति से विजय करो कि दूसरों की उन्नति हो। उनके अनुसार धम्म दान का उच्चतम स्वरूप है। इसका अर्थ किसी को धम्म के विषय में बताना, धम्म में भाग लेना या धम्म से संबंध स्थापित करने से हैं।

(ख) निषेधात्मक सिद्धांत–मानव स्वभाव में कुछ स्वभाव ऐसे हैं जिनका हमें पालन नहीं करना चाहिए। ये हैं–

क्रोध	–	क्रोधित होना।
ईर्ष्या	–	दूसरों के प्रति ईर्ष्या भाव रखना।
मान	–	कभी भी घमंड करना।
निठुलिय	–	निष्ठुरता।
चंडिय	–	उग्रता।

इस प्रकार धम्म के अंतर्गत अनेक धर्मों के आदर्श समाहित थे। डॉ. रोमिला थापर का मानना है– "धम्म जीवन का एक मार्ग था जो सामाजिक एवं नैतिक जिम्मेदारियों पर आधारित था... समन्वय उत्पन्न करने वाले सिद्धांतों की खोज में अशोक ने हर प्रश्न के बुनियादी पक्ष पर अपना ध्यान केंद्रित किया और इसके फलस्वरूप धम्म नाम की प्रसिद्ध नीति का जन्म हुआ।"

धम्म का स्वरूप

अन्य प्रश्नों के समान ही अशोक के धम्म के स्वरूप में भी पारस्परिक मतभेद हैं। इतिहासकारों के अनुसार धम्म के स्वरूपों का वर्णन निम्नलिखित है–

टिप्पणी

1. **राजधर्म**–कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक का धम्म राजधर्म था। फ्लीट का मानना है- "अशोक का धम्म किसी प्रकार भी बौद्ध धर्म नहीं कहा जा सकता है।" अशोक के शिलालेखों का उद्देश्य बौद्ध धर्म या किसी अन्य धर्म का प्रचार करना नहीं था वरन संप्रदाय को ध्यान में रखते हुए दया तथा न्याय धारण करना है। अशोक ने धम्म को किसी प्रकार भी राजधर्म नहीं कहा है। साथ ही उसने महात्मा बुद्ध का भी उल्लेख किया है। इस तर्क का समर्थन करते हुए सेनार्ट ने भी कहा है कि –"अशोक के धम्म में ऐसी कोई बात न थी जिससे हम उसे बौद्ध धर्म कह सकें।"

   परंतु उपर्युक्त तर्कों का खंडन अनेक विद्वानों ने किया है जो धम्म को राजधर्म होने से अस्वीकार करते हैं।

2. **ब्राह्मण धर्म**–विल्सन एवं हेरास जैसे विद्वानों का मत है कि अशोक का धम्म ब्राह्मण धर्म था। परंतु इसका खंडन करते हुए विद्वानों ने कहा है कि अशोक के अभिलेखों में कहीं भी ब्राह्मण कार्य-कलापों यज्ञ एवं धार्मिक अनुष्ठानों का वर्णन नहीं मिलता अत: उसका धर्म ब्राह्मण धर्म नहीं था।

3. **सार्वभौम धर्म**–डॉ. स्मिथ, भंडारकर, मुखर्जी आदि विद्वानों का मानना है कि अशोक का धम्म सार्वभौम धर्म था। स्मिथ का मानना है यह सिद्धांत मूलत: सभी धर्मों में विद्यमान था, चाहे एक संप्रदाय या एक पंथ इसके किसी अंश को प्रचारित करता हो। इसी प्रकार के विचार मैकफेल व त्रिपाठी के हैं। त्रिपाठी ने लिखा है–यह सभी धर्मों का सार था। परंतु इन तर्कों के विपक्ष में विद्वानों ने कहा है कि उसने जिस धर्म का प्रचार किया वह बौद्ध धर्म ही था।

4. **उपासक बौद्ध धर्म**–सेनाई, हुत्श, नीलकंठ शास्त्री आदि विद्वानों का मानना है कि अशोक के धम्म का मूल स्रोत बौद्ध धर्म ही था। अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए किए गए कार्य इस बात के प्रमाण हैं।

   परंतु विद्वानों का तर्क है कि यदि धम्म बौद्ध धर्म था तो उसने निर्वाण के स्थान को स्वर्ग क्यों कहा?

अशोक की महानता के कारण

अशोक न केवल भारत वरन विश्व का महानतम सम्राट था। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार कर अपनी वीरता का परिचय दिया। 40 वर्षों तक सफल शासन कर शांतिप्रियता अपनाकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की तथा जनता में प्रशंसा व लोकप्रियता प्राप्त की। एच. जी. वेल्स का मानना है-"वह न तो ईसा, न केवल बुद्ध, महावीर व गांधी था और न ही केवल चार्लमेन, चंद्रगुप्त, खलीफ उमर व अकबर था वरन वह इन सभी व्यक्तियों के गुणों से युक्त था। वह श्रेष्ठता की प्रतिमूर्ति था। इसी कारण उसे अशोक महान के रूप में सभी स्वीकार करते हैं।" उसकी महानता के कारण निम्नलिखित हैं–

1. **कर्तव्यनिष्ठ शासक**–अशोक एक कर्तव्यनिष्ठ शासक था। वह प्रजा को अपनी संतान मानता था। उसने कहा था "प्रत्येक समय चाहे मैं भोजन कर रहा हूं

टिप्पणी

प्रतिवेदक प्रजा की दशा से मुझे अवगत कराएं। मैं सदैव प्रजा का कार्य करूंगा। प्रजा का हित करना मेरा सर्वोपरि लक्ष्य है।"

2. **महान विजेता**–वह महान विजेता था। उसने न केवल अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा वरन जनता के हृदय को भी जीता था। वेल्स का मत है–"यदि अशोक योग्य न होता तो वह अपने विशाल साम्राज्य पर 40 वर्ष तक कैसे कुशलता से शासन करता तथा ऐसा नाम न छोड़ता जो 2000 वर्षों बाद भी हम नहीं भुला सके हैं।"
3. **राष्ट्रीय एकता प्रदान करने वाला**–अशोक ने राष्ट्र को एक सूत्र में बांधा जिससे राजनीतिक एकता की स्थापना हो सकी।
4. **उदार एवं लोकहितकारी कार्य**–अशोक अत्यंत उदार सम्राट था। वह पशु-पक्षियों व जीव-जंतुओं को भी कष्ट नहीं पहुंचाना चाहता था। अतः उसने अनेक धर्मशालाएं बनवाईं, छायादार वृक्ष लगवाए, कुएं, औषधालय आदि का निर्माण कार्य करवाया।
5. **धर्म सहिष्णु सम्राट**–अशोक धर्म सहिष्णु सम्राट था। वह मानव धर्म को सर्वोपरि मानता था। इसीलिए उसने धम्म का निर्माण कराया जिसमें सभी धर्मों की अच्छाइयां शामिल थीं। धम्म का ही दूसरा नाम नैतिकता था।
6. **कुशल धर्म प्रचारक**–अशोक ने अपने धर्म का प्रचार अत्यधिक कुशलता से किया जिससे अत्यधिक लोग आकर्षित हुए। राय चौधरी का मानना है, ''अशोक ने धर्म प्रचार में ऐसे कार्य किए जो तीनों महाद्वीपों तक फैले हैं, जिनके कारण गंगा की घाटी का संप्रदाय संसार के एक महान संप्रदाय में बदल गया।''

इसके अतिरिक्त अनेक कारण थे; जैसे-उसका व्यक्तित्व, कलाप्रेमी, महान अहिंसा प्रेमी, उपदेशक व प्रजा हितैषी सम्राट था। राधा कुमुद मुखर्जी का मानना है कि "वह एक व्यक्ति व शासक के रूप में महान था।" डॉ. को पलस्टन ने अशोक की प्रशंसा में लिखा है–"वह बौद्ध धर्म का प्रवर्तक ही न था बल्कि यूनानी के स्थान पर बौद्ध धर्म का अविजित सिकंदर भी था। वह ऐसा निःस्वार्थ नेपोलियन था जो यश के स्थान पर कल्याण से प्रेरित था।"

2.2.4 मौर्य प्रशासन

चंद्रगुप्त मौर्य न केवल कुशल विजेता था वरन उनका शासन प्रबंध भी बहुत उच्च कोटि का था। उन्होंने सुदृढ़ शासन की नींव प्रदान की जिसे कालांतर में वंश के सभी शासकों ने अपनाया था। मौर्य प्रशासन की प्रकृति और प्रमुख आधारों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

शासन का आदर्श–

प्रजा सुखे सुख राज्य, प्रजानां चाहिते हितम।
नात्म प्रियं हितं राज्ञः, प्रजानां तु हितम प्रियमे।।

अर्थात प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है। राजा का कर्तव्य धर्म की रक्षा करना था। इसी आदर्श पर प्रशासन आधारित था। राजा जनता की सुरक्षा, उन्नति, आवश्यकता की पूर्ति के लिए जिम्मेदार होता था। मौर्य प्रशासन को निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं–

टिप्पणी

1. **केंद्रीय शासन**–केंद्रीय शासन के निम्न भाग थे–

   राजा–मौर्य साम्राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। राज्य की सर्वोच्च शक्ति राजा में निहित थी। अर्थशास्त्र में वर्णित है "राजा का व्यवहार पिता के समान होना चाहिए।" राजा कुशल योद्धा, उच्च कुलोत्पन्न, योग्य प्रबंधक होना चाहिए। राजा के तीन कर्म–शासन, न्याय व सैनिक थे। मैगस्थनीज ने लिखा है–"राजा उस समय भी न्याय करता था जबकि उसके शरीर पर आबूनस से मालिश की जाती थी। राजा सेना का सर्वोच्च सेनापति व प्रमुख न्यायाधीश होता था, परंतु राजा निरंकुश नहीं था।" कौटिल्य लिखते हैं, "राजा वह नहीं है जिससे केवल राजा का मनोरंजन हो वास्तविक सुकर्म वह है जिससे प्रजा का लोकरंजन हो।"

   मंत्रिपरिषद–मौर्य साम्राज्य की विशालता के कारण राज्य के कार्य में सहायता देने के लिए मंत्रिपरिषद होती थी। राजा योग्य मंत्रियों को ही अपनी परिषद में चुनता था। कौटिल्य का मानना था–एक पहिये से राजा की शासनरूपी गाड़ी नहीं चल सकती अतः गाड़ी रूपी शासन को चलाने के लिए दूसरे पहिये 'मंत्रिपरिषद' की आवश्यकता होती है। अतः राजा मंत्रियों की नियुक्ति करें और परामर्श करें। ये मंत्री ईमानदार, विश्वस्त, बुद्धिमान होते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से 18 मंत्रियों का बोध होता है। प्रत्येक मंत्री अपने विभाग का अध्यक्ष होता था। 18 विभागों को तीर्थ कहते थे। ये विभाग थे - (1) युवराज (2) प्रधानमंत्री (3) सेनापति (4) द्वारिक (द्वारों का रक्षक) (5) पुरोहित (6) अंतरवेशिक (अंतःपुर का अध्यक्ष) (7) प्रशास्त्रीय (कारागार अध्यक्ष) (8) समाहर्ता (आर्य संग्रहकर्ता) (9) सन्निधाता (10) प्रदेष्टा (11) नायक (नगर रक्षक) (12) पौर (13) व्यावहारिक (प्रधान न्यायाधीश) (14) कर्मांतिक (15) मंत्रिपरिषद अध्यक्ष (16) दंडपाल (17) दुर्गपाल (18) अंतपाल।

   राजा की सलाह के लिए मंत्रियों की एक छोटी-सी समिति होती थी जिसमें 3-4 मंत्री होते थे, जिसे 'मंत्रिण' कहा जाता था। स्मिथ ने लिखा है–"मौर्य साम्राज्य स्पष्ट रूप से विभिन्न विभागों तथा सावधानीपूर्वक श्रेणीबद्ध कर्मचारियों जिनके कर्तव्य स्पष्ट होते थे पर आधारित था।"

2. **प्रांतीय शासन**–साम्राज्य की विशालता के कारण साम्राज्य को प्रांतों में विभाजित कर दिया गया था। प्रांतीय शासन अत्यंत सुव्यवस्थित व सुगठित था। यह 6 प्रांतों में विभक्त था। प्रांतों को 'चक्र' कहा जाता था।

   (1) **उत्तरापथ**–इस प्रांत में गांधार, कंबोज, अफगानिस्तान, कश्मीर, पंजाब आदि क्षेत्र थे तथा इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

टिप्पणी

(2) **मध्यदेश**–इस प्रांत में उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार क्षेत्र थे एवं राजधानी पाटलिपुत्र थी।

(3) **दक्षिणापथ**–दक्षिणापथ प्रांत में विंध्याचल एवं दक्षिण के समस्त प्रदेश सम्मिलित थे। इसकी राजधानी सुवर्णगिरी थी।

(4) **अवंति राष्ट्र**–काठियावाड़, गुजरात, राजपूताना व मालवा इसके अंग थे। इसकी राजधानी उज्जैन थी।

(5) **कलिंग**–कलिंग के अंतर्गत विजन प्रांत था एवं इस प्रांत की राजधानी तोषाली थी।

(6) **गृहराज्य**–इसका शासन राजा महामात्रों के सहयोग से करता था।

प्रत्येक प्रांत अनेक मंडलों में विभक्त था। मंडल पुनः अनेक जनपदों में विभक्त था तथा जनपद अनेक नगरों में विभक्त थे। मजूमदार के अनुसार-विशाल साम्राज्य अत्यंत सुसंगठित व प्राजातांत्रिक था।

3. **नगर प्रशासन**–चंद्रगुप्त मौर्य का नगर प्रशासन अपनी मौलिकता व विशेषता के लिए विश्व इतिहास में विशेष स्थान रखता है। नगर का अध्यक्ष 'नागरक' होता था। मैगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के विषय में लिखा है– "यह नगर भारतवर्ष का बहुत बड़ा नगर था। यह गंगा व सोन नदियों के संगम पर बना हुआ था। इसकी लंबाई साढ़े नौ मील व चौड़ाई 3/4 मील है।" नगर शासन हेतु 5-5 सदस्यों की 6 समितियां थीं। इन समितियों के कार्य निर्धारित थे। ये समितियां थीं–(1) शिल्प कला समिति (2) वैदेशिक समिति (3) जनसंख्या समिति (4) वाणिज्य समिति (5) उद्योग समिति (6) कर समिति।

   नागरक की सहायता के लिए स्थानिक पदाधिकारी होते थे।

4. **ग्राम प्रशासन**–'ग्राम' शासन की निम्नतम इकाई थी। इसका सर्वोच्च अधिकारी 'ग्रामिक' होता था। अर्थशास्त्र में उद्धृत है-"ग्रामिक के बड़े अध्यक्ष को 'गोप' कहते थे जिसको 5-6 ग्राम का शासन प्रबंध करना होता था। 'स्थानिक' गोप के ऊपर था। गांवों का प्रबंध अच्छा था व किसानों की दशा अच्छी थी।" ग्रामिक का चयन ग्रामवासी ही करते थे।

5. **दंड व न्याय व्यवस्था**–न्याय व्यवस्था अत्यंत उच्च कोटि की थी। राजा सर्वोच्च न्यायाधीश था। राजा किसी के भी अपराध को क्षमा कर सकता था। कौटिल्य ने लिखा है-"यदि राजा किसी को गलत दंड दे दे तो उसको उससे 3 गुना दंड मिलना चाहिए।" दो प्रकार के न्यायालय थे–धर्मस्थानीय न्यायालय - यह दीवानी अदालतों के समान थी तथा दूसरे कंटकशोधन न्यायालय - यह फौजदारी के मामलों का निर्णय करती थी। इन दो न्यायालयों के अतिरिक्त ग्राम पंचायतें भी अपने प्रारंभिक रूप में चल रही थीं।

   दंड व्यवस्था अत्यंत कठोर थी। छोटे से अपराध के लिए बहुत बड़ा दंड दिया जाता था। मैगस्थनीज लिखता है–"भारतीयों के यहां कोई लिखित कानून नहीं था पर कठोर दंड विधान में साधारण अपराध के लिए मृत्युदंड था।"

टिप्पणी

6. **सैन्य व्यवस्था**–सेना का सर्वोच्च सेनापति राजा होता था। मौर्य वंश रक्त व लौह पर स्थापित हुआ था तथा इसी नीति से यह सुरक्षित रह सकता था। इसके लिए विशाल एवं सुसंगठित सेना की आवश्यकता थी जिसका चंद्रगुप्त ने पालन किया। सेना को 6 भागों में विभक्त किया गया था - 1. पैदल, 2. नौसेना, 3. अश्वसेना, 4. रथ सेना, 5. गज सेना, 6. सैनिक सेना। प्लिनी ने लिखा है "इस विशाल सेना का प्रबंध एक मंडल द्वारा होता था। मंडल में 3 सदस्य मंडल व 6 उपमंडल में विभक्त थे।"

   मंडलों के अतिरिक्त 5 दुर्ग थे–(1) स्थल दुर्ग, (2) जलदुर्ग, (3) वन दुर्ग, (4) गिरि दुर्ग (5) मरु दुर्ग। अस्त्र-शस्त्र के निर्माण के लिए अनेक कारखाने होते थे। मैगस्थनीज लिखता है कि सैनिक को इतना वेतन मिलता था कि वह सुखमय जीवन व्यतीत कर सके। शक्तिशाली सेना के बल पर ही चंद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य को इतना विस्तृत किया था।

7. **पुलिस व गुप्तचर व्यवस्था**–गुप्तचर व्यवस्था अत्यंत श्रेष्ठ थी। गुप्तचरों को 'चर' कहा जाता था। इसका प्रधान अधिकारी महामात्रा पर्सप था। इसके दो विभाग थे–

   (क) संस्था-पंच संस्था प्रकार्तिता–यह एक स्थान पर रहकर ही गुप्त रिपोर्ट देते थे; जैसे विद्यार्थी, गृहस्थ, तपस्वी आदि।

   (ख) संचारा–यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमकर गुप्तचरी करते थे। इसके अतिरिक्त गुप्त लिखाई भी प्रसिद्ध थी। प्रो. वाजपेयी ने लिखा है "यह निर्विवाद सत्य है कि हमारे देश की यह व्यवस्था पाश्चात्य व्यवस्था से हीन नहीं थी।" स्मिथ ने भी तत्कालीन गुप्तचर व्यवस्था की प्रशंसा की थी।

8. **राजस्व व्यवस्था**–आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर था। राज्य की भूमि की आय 'सीता' व कृषक भूमि की आय 'भाग' कहलाती थी। कुल उपज का 1/6 भाग लिया जाता था। मैगस्थनीज के अनुसार 1/4 भाग था। नगरों से प्राप्त आय 'दुर्ग' कहलाती थी। जनता का जीवन अत्यधिक संपन्न था। गरीबों के साथ उदारता का व्यवहार किया जाता था।

9. **लोकोपकारी कार्य**–मौर्य सम्राटों ने जनता की भलाई के लिए अनेक लोकोपकारी कार्य किए जिससे जनता की उन्नति हुई। यातायात के साधनों का विकास किया तथा थोड़ी-थोड़ी दूरी पर विश्रामगृह बनाए। सुविधा के लिए वृक्ष एवं प्याऊ की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त औषधालय बनवाए गए।

निष्कर्ष–उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि मौर्य प्रशासन अत्यंत सुगठित था। उन्होंने ऐसी शासन व्यवस्था की स्थापना की जिसको कालांतर में गुप्त शासकों ने भी अपनाया। रायचौधरी का मत है–"अस्त-व्यस्त भारत के टुकड़ों को जोड़ने, चक्रवर्ती के आदर्श को व्यावहारिक रूप देने तथा इस देश को बाहरी दुनिया के साथ संपर्क में लाने के लिए एक परम पुरुषार्थी तथा पराक्रमी व्यक्ति की आवश्यकता थी और इस देश का सौभाग्य था कि शीघ्र ही उसे चंद्रगुप्त के रूप में ऐसा पराक्रमी सम्राट मिल गया जिसने

एक सुसंगठित साम्राज्य स्थापित किया।"

2.2.5 मौर्य कला और वास्तुकला

टिप्पणी

मौर्य कला भारतीय कला के इतिहास में युग प्रवर्तक है। मौर्य सम्राट असाधारण निर्माता थे। यदि कहा जाए कि भारतीय कला का इतिहास मौर्यकाल से प्रारंभ होता है तो अतिशयोक्ति न होगी। नि:संदेह पूर्ववर्ती युग में कला अवश्य थी परंतु उच्चकोटि की नहीं थी। डॉ. स्मिथ ने ठीक कहा है कि "कठोर पाषाण को चिकना बनाने की कला इस पूर्णता तक पहुंचा दी गई थी कि यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में कलात्मक शक्तियों के लिए यह एक खोई हुई कला ही है।" परंतु कुछ इतिहासकार इस कला की उत्कृष्टता को स्वीकार नहीं करते। गोखले के अनुसार - "भारत की कला का इतिहास भाषा की दृष्टि से एक पृष्ठ और पुरातत्व की दृष्टि से खाली अलमारी की भांति है।" मौर्यकला को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है–

- **राजप्रासाद**–चंद्रगुप्त का पाटलिपुत्र में राजप्रासाद स्थित था। सभा ऊंचे स्तंभ पर आश्रित था जिस पर सुंदर मूर्ति चित्रित थी। एरियन का मानना है- "चंद्रगुप्त का राजभवन एशिया के प्रसिद्ध सूसा व एकबेतन के भवनों से कहीं अधिक शानदार था।" राजप्रासाद के तीन भाग थे-(1) राजशाला व सैनिकों के परकोटे (2) सभा मंडप (3) राजा का अंतपुर। फाह्यान का मत है- "यह प्रासाद मानवकृति नहीं है वरन देवों द्वारा निर्मित है। प्रासाद के स्तंभ पत्थरों से बने हैं और उन पर अद्वितीय चित्र उभरे हैं।" इसी प्रकार स्पूनर ने भी कहा है "यदि वे कलाकार आज पुन: इस संसार में आ जाएं तो वे विचार करेंगे कि आज भी काष्ठ कला में उनके सीखने के लिए कुछ नहीं है।"
- **स्तूप और चैत्य**–स्तूपों में मृतकों को अवशेष के रूप में रखा जाता था। यह उल्टे कटोरे के आकार का पत्थर व ईंटों से निर्मित गोल गुंबद था। स्तूप के ऊपर काष्ट और पत्थर का छत्र था व चारों ओर प्रदक्षिणा पथ था। अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक ने 84000 स्तूपों का निर्माण कराया। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, "भरहूत रेलिंग पर वज्रासन मंदिर का जो चित्र अंकित है उसमें अशोक द्वारा निर्मित हस्ति सिर युक्त उल्टे कमल के आकार वाली शिर से सुशोभित गोलाकार स्तंभ है।"

टिप्पणी

- **गुहा भवन**–गुफाएं कठोर चट्टान को काटकर बनायी जाती थीं। गुफाओं के आंतरिक भाग को अत्यधिक चिकना बनाया जाता था। ये भिक्षुओं का निवास स्थान था। 3 बारबरा व नागार्जुनी समूह में 4 गुहाएं प्राप्त हुई हैं, जिन्हें सातघर की संज्ञा दी जाती है। नीलकंठ शास्त्री के अनुसार–"कठोर शिलाओं को काटकर 30 से 40 फुट लंबी गुफा बनाने और उसके अंदरूनी भाग को चिकना करने के लिए जितना परिश्रम करना पड़ता था वह गहरी धार्मिक भावना के बिना असंभव था।"
- **नगर निर्माण कला**–अशोक ने दो नए नगरों का निर्माण कराया श्रीनगर व देवपट्टन। इसके अतिरिक्त सुदर्शन झील का भी निर्माण इस युग में किया गया था।
- **स्तंभ कला**–पाषाणों से स्तंभों का निर्माण कराया गया। शिला स्तंभों अथवा लाट स्थूलाकार या पिंडाकार एक विशालकाय पाषाण है। इन स्तंभों की लंबाई 40 फीट तथा इसका व्यास 3 फीट 7 इंच है। 150 फीट लंबे पाषाण स्तंभ पर आठ सिंह मूर्ति बनी हुई हैं। स्तंभों का भार 50 टन है। स्तंभों के 3 भाग थे- आधारपीठिका यह भाग पृथ्वी पर गढ़ा हुआ होता है तथा पशुपक्षियों व धर्मचक्र के सुंदर चित्र अंकित हैं। तना-यह गोल पत्थर का बना सुंदर पॉलिश का बना होता था। इसकी मोटाई ऊपर की ओर कम होती जाती है। यह 50 फीट लंबा हाथी की सूंड के समान होता था। शीर्ष भाग-शीर्ष स्तर घंटा कृति हैं इसके ऊपर पशु-पक्षियों के चित्र अंकित हैं। स्मिथ ने कहा है- "इतनी प्राचीन इतनी सुंदर पशुओं की मूर्तियां किसी देश में मिलना दुर्लभ है।" स्तंभों की संख्या 40 है जिनमें प्रमुख-सारनाथ, सांची, रामपुरवा, रुम्मिन देई, निग्लिवा आदि हैं। स्मिथ लिखते हैं-"उन्होंने वे कलाएं विकसित कर रखी थीं जिन्हें 20वीं शती में निर्मित कर पाना शक्ति से बाहर है।"
- **मौर्य कला**–वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में–"नारी सौंदर्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति आकर्षक रूप, तिरछी आंखें लज्जावनत चेष्टाएं मूर्ति की खूबियां हैं। मौर्य कालीन विशिष्ट चमक इसके सौंदर्य रूप में चार चांद लगा देती है।... इस मूर्ति की चिकनाहट और गतिशीलता इसे प्राणमय एवं सजीव बना देती है।" मौर्य कालीन मूर्तिकला में धार्मिकता व यूनानी कला का मिश्रण था। मूर्तियां बलिष्ठ व स्थूलता से बनाई जाती हैं।

कुछ इतिहासकार मौर्य कला पर ईरानी प्रभाव मानते हैं। उन्होंने अपने तर्कों में कहा है कि अशोक के स्तंभों की घंटाकृति, स्तंभ व चमकदार पॉलिश आदि पर यूनानी प्रभाव था परंतु इसका खंडन अनेक इतिहासकारों ने किया है, उनका निम्न मत है–

1. मौर्य स्तंभ चमकदार पॉलिश द्वारा निर्मित व गोलाकार हैं जबकि यूनानी स्तंभों में पॉलिश का अभाव है।
2. अशोक स्तंभ एकाश्मक पत्थर के हैं जबकि पर्शियन पत्थरों के टुकड़ों से निर्मित हैं।

3. यूनानी कलाकृतियां मिस्त्री व राज मिस्त्री द्वारा बनाए जाते थे जबकि अशोक के बढ़ई द्वारा बनाए जाते थे।

टिप्पणी

इस तथ्य को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि मौर्य कला पर यूनानी प्रभाव नहीं था क्योंकि कलाकृतियों पर थोड़ा बहुत ईरानी प्रभाव परिलक्षित होता है। चमड़े की कला व महल बनाने की कला यूनानी व भारतीय कला का सम्मिश्रण था। डॉ. शास्त्री के शब्दों में- "अशोक ने प्राचीन समस्याओं का डिजाइन तथा कुछ विदेशी उदाहरणों के आधार पर संभवतः उनका प्रारूप तैयार करने के लिए विदेशी कलाकारों को नियुक्त किया परंतु उनकी साज-सज्जा का निर्माण कार्य पूर्ण रूप से भारतीयों द्वारा तैयार किया गया तथा भारतीय कला की शुद्धता के इन स्मारकों को रखा गया।"

2.2.6 मौर्य संस्कृति

मौर्य काल सांस्कृतिक उपलब्धियों व सामाजिक संगठन के लिए भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध था। इस काल में हमारी गौरवशाली संस्कृति प्रवाहमान रही। इस समय की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं–

सामाजिक दशा

इस युग में मनुष्य सुखी व समृद्धशाली थे। जीवन की आवश्यकताएं ही नहीं अपितु सामाजिक जीवन की सुख सुविधाएं भी इन लोगों को प्राप्त थीं। सामाजिक दशा इस प्रकार थी–

1. **वर्ण व वर्णाश्रम व्यवस्था**–समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था थी। अर्थशास्त्र के अनुसार- समाज 4 वर्णों में विभाजित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र, जबकि मैगस्थनीज ने लिखा है–भारतीय समाज 4 वर्णों में नहीं 7 जातियों में विभक्त था। ये जातियां हैं–(1) कृषक (2) दार्शनिक (3) गोप शिकारी (4) मजदूर (5) क्षत्रिय (6) अध्यक्ष (7) मंत्री या सभासद। कोई भी व्यक्ति अपनी जाति व्यवसाय छोड़कर दूसरा कार्य नहीं कर सकता था, परंतु मैगस्थनीज द्वारा 7 जातियों का उल्लेख उचित प्रतीत नहीं होता परंतु इतना निश्चित था कि वर्ण व्यवस्था अत्यंत जटिल हो गई थी।

   आश्रम व्यवस्था भी प्रचलित थी। जीवन को 4 आश्रमों में बांटा गया था– 1. ब्रह्मचर्य, 2. गृहस्थाश्रम, 3. वानप्रस्थाश्रम, 4. संन्यास। कौटिल्य के अनुसार-चारों वर्णों के लिए सत्य, शुचिता, अहिंसा, ईर्ष्या, दया, क्षमा, धर्म व कर्तव्य आवश्यक था। दास प्रथा भी प्रचलित थी।

2. **विवाह**–पारिवारिक जीवन की आधारशिला विवाह था। विवाह का मुख्य उद्देश्य संतानोत्पत्ति था। बहुविवाह भी प्रचलित था। सामान्यतः एक जाति में ही विवाह होता था। विवाह एक प्रमुख संस्कार माना जाता था। विवाह 8 प्रकार के थे–(1) ब्रह्म विवाह (2) दैव विवाह (3) आर्य विवाह (4) प्रजापत्य विवाह (5) असुर विवाह (6) गंधर्व विवाह (7) राक्षस विवाह (8) पैशाच विवाह।

स्त्रियों की दशा वैदिक काल की अपेक्षा निम्न थी। सती प्रथा व विधवा विवाह का भी प्रचलन था। अरिस्तोबुलुस का मत है-"पति की मृत्योपरांत स्त्रियां भी सहर्ष पति के शव के साथ जल जाया करती थीं। जो यह कृत्य नहीं करती थीं वह सम्मानित नहीं समझी जाती थीं।" स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। वेश्यावृत्ति के भी साक्ष्य प्राप्त होते हैं। कौटिल्य के अनुसार–"प्रत्येक वेश्या आय का एक भाग कर के रूप में देती थी।" स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार था।

टिप्पणी

3. **मनोरंजन के साधन**–मनोरंजन के साधनों की प्रचुरता एवं विविधता से उनके लौकिक जीवन की समृद्धता स्पष्ट होती है। आखेट, मल्लयुद्ध, रथदौड़, घुड़दौड़, पशुओं की लड़ाई, नृत्य, चौपड़, संगीत इनके मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। लोग अनेक उत्सवों व समारोह आदि मनाते थे।

आर्थिक दशा

मौर्यकाल में जनता का आर्थिक जीवन अत्यंत विकसित हो गया था। कृषि उद्योग व व्यापार में अभूतपूर्व उन्नति हुई जिससे जनता की स्थिति सुदृढ़ हुई। तत्कालीन आर्थिक दशा निम्नवत थी-

1. **कृषि**–मौर्य काल में मुख्य व्यवसाय कृषि था। आर्थिक जीवन कृषि पर आधारित था। कृषि मुख्यत: गांवों में होती थी। तीन प्रकार की भूमि थी–(1) कृष्ट (जुती हुई भूमि) (2) अकृष्ट (बिना जुती भूमि) (3) स्थल (इसके अंतर्गत बंजर भूमि आती थी)। प्रमुख फसलें गेहूं, चावल, मूंग, कपास व तिल थीं तथा भूमिकर 1/6 से 1/4 लिया जाता था। मैगस्थनीज ने लिखा है-"भारत में कभी भी अकाल नहीं पड़ा था। अनाज कभी महंगे नहीं हुए। वर्ष में दो फसलें काटी जाती थीं। कृषक सुखी व समृद्ध थे।"
2. **उद्योग धंधे**–मौर्य काल में उद्योग धंधे अत्यंत उन्नतशील थे। सर्वाधिक प्रसिद्ध वस्त्र उद्योग था। कौटिल्य के अनुसार-मौर्य युग में चीनी, रेशमी वस्त्र और देशी रेशमी वस्त्र में एक-दूसरे से काफी प्रतिद्वंद्विता थी। इसके अतिरिक्त धातुओं व हाथी दांत आदि के कार्य अत्यंत उन्नतशील थे। इसके अतिरिक्त कुंभकार, लौहकार, बढ़ई आदि ने भी अपने उद्योगों का विस्तार कर लिया था।
3. **व्यापार**–देशीय व विदेशी दोनों व्यापार होते थे। वस्त्र आभूषण कलाकृतियों, सुगंधित पदार्थ, घोड़े आदि का निर्यात किया जाता था। यूनानी लेखकों के अनुसार, भारत और यूनानी राज्यों का व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गों से होता था। भारत के लिए पाश्चात्य जगत के साथ व्यापारिक संबंध काफी महत्वपूर्ण व हितकर थे। जुलाहों, तेलियों, ठठेरों आदि के संघों का वर्णन है जिन्हें राजनीतिक व आर्थिक शक्तियां प्राप्त थीं। समृद्धशाली उद्योगों से आंतरिक और बाह्य व्यापार को प्रोत्साहन मिलता था। भारत ऐश्वर्य एवं भोग विलास की वस्तुएं और सुंदर मलमल भी बाह्य देशों को भेजता रहा।
4. **उत्पादन का भौतिक और सामाजिक आधार**–प्रथम सहस्राब्दि ई.पू. के उत्तरार्द्ध में खेती के लिए लोहे का उपयोग होने लगा था। इसके परिणामस्वरूप काफी मात्रा

टिप्पणी

में अधिशेष उत्पादन हुआ। इस अधिशेष से न केवल समाज का भौतिक आधार परिवर्तित हुआ, बल्कि नए सामाजिक वर्ग भी सामने आए। यह नया सामाजिक वर्ग मुख्य रूप से नए विकसित हो रहे शहरों में रहने लगा।

यूनानी लेखक एरियन बताता है कि शहर इतने अधिक थे कि उनकी सही संख्या बताना मुश्किल है। इस वक्तव्य से यह आभास होता है कि इस काल में शहरों की संख्या तेजी से बढ़ी होगी। मैगस्थनीज ने सुव्यवस्थित और सुगठित नगर प्रशासन की चर्चा की है, इस बात से भी इन नगरीय केंद्रों में बढ़ रही जनसंख्या का संकेत मिलता है। इन शहरों में रहने के नियम बड़े कड़े और कठोर थे। हालांकि इस काल की नगर योजना का कोई ठोस सबूत उत्खनन से प्राप्त नहीं हो सका ओर मौर्यकालीन वास्तुकला के अवशेष भी बहुत कम मात्रा में प्राप्त हुए हैं, परंतु उत्तर प्रदेश और बिहार में हुए उत्खननों से प्राप्त अवशेषों से पता चलता है कि उस काल में इमारत बनाने के लिए पक्की ईंटों का उपयोग होता था। घर लकड़ियों से बनाए जाते थे। मैगस्थनीज ने मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र में बने लकड़ी के घरों की चर्चा की है। कुम्हरार (आधुनिक पटना) में हुई खुदाई के दौरान मौर्यकाल के खंभों वाले विशाल कक्ष के अवशेष प्राप्त हुए हैं। खुदाई के दौरान बहुत–सी मौर्यकालीन कड़ियां प्राप्त हुई हैं, जिन्हें लगाकर कुओं से पानी खींचा जाता होगा। इन कड़ियों का उपयोग घरेलू कार्य के लिए होता होगा। बाद के कई वर्षों में यह तकनीक देश के अन्य भागों में भी फैल गई। कुओं से पानी खींचने के लिए कड़ियों का उपयोग और पकी ईंटों का व्यापक प्रयोग इस काल में हुए भौतिक विकास को प्रमाणित करता है। इससे यह भी पता चलता है कि लकड़ी की प्राप्ति सुलभ थी। पकी ईंटों के उपयोग, उत्तरी काले चमकीले मृदभांडों की प्राप्ति और अन्य अवशेषों से पता चलता है कि मौर्य साम्राज्य के नगर देश के विभिन्न भागों में स्थित थे।

गंगा घाटी में शहरों का उदय हुआ, भौतिक समृद्धि बढ़ी, इसका प्रमाण उपरिवर्णित भौतिक अवशेष हैं। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय तकनीकी आधार काफी मजबूत था। अतः डी.डी. कोसांबी और आर.एस. शर्मा ने जोरदार ढंग से यह तथ्य सामने रखा है कि यह तकनीकी आधार लोहे के अधिक उपयोग के कारण मजबूत हुआ। मगध साम्राज्य के आसपास (आज के दक्षिण बिहार के आसपास) लोहे की खानें थीं और महत्वपूर्ण जल और स्थल मार्ग पर उसका नियंत्रण था। उत्खनन के दौरान विभिन्न प्रकार के लोहे के औजार; जैसे मूठ वाली कुल्हाड़ी, हंसिया और शायद हल का फाल भी प्राप्त हुए हैं। इन औजारों की सहायता से पूर्वी गंगा घाटी के घने जंगलों को काटने में आसानी हुई होगी और कृषि क्षेत्र में कुशलता भी बढ़ी होगी। दक्षिण बिहार के लौह–क्षेत्र में लोहे के छोटे–छोटे टुकड़े बिखरे मिले हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि लोहा गलाने की तकनीक बहुत विकसित नहीं थी। इस काल की बहुत–सी स्थानीय भट्टियां प्राप्त हुई हैं, इससे मालूम होता है कि शायद आम आदमी भी लोहे का उत्पादन और उपयोग करता था। अर्थशास्त्र में इस बात का भी जिक्र है कि उस समय लोहा बनाने की उच्च कोटि की विभिन्न तकनीकों की भी जानकारी थी।

टिप्पणी

परंतु, गंगा घाटी से लोहे का प्रयोग देश के अन्य भागों तक नहीं फैला। मौर्य पूर्व और मौर्यकालीन अवशेषों से पता चलता है कि भारत के दूसरे हिस्सों में भी लोहे का प्रयोग तथा उपलब्धता के प्रमाण अलग से मिले हैं। यह स्पष्ट है कि गंगा घाटी की मिट्टी भारी और दुम्मटी थी, इसलिए जुताई के लिए हल में भारी लोहे की जरूरत पड़ती थी। लोहे का उपयोग खेती के लिए किया जाता था, परंतु यह उपयोग यहीं तक सीमित नहीं था। लोहे के उपयोग पर राज्य का अधिकार था। अर्थशास्त्र में इस बात का जिक्र है कि कुछ खास किस्म के खननों पर राजा का एकाधिकार होना चाहिए। यह सलाह संभवत: इसलिए भी दी गई थी क्योंकि कुछ खास धातुओं का उपयोग सेना के लिए औजार बनाने के लिए किया जाता था। विकासशील खेतिहर समुदायों के लिए एक मजबूत तकनीकी आधार की आवश्यकता तो होती है, साथ ही साथ सस्ती श्रम शक्ति की भी जरूरत होती है ताकि अनाज और अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके। उत्पादन के सामाजिक आधार को जानने के लिए यह समझना जरूरी है कि इस श्रम शक्ति को कैसे संयोजित किया जाता था और इन पर नियंत्रण किस प्रकार रखा गया था? हम पहले इस बात का जिक्र कर चुके हैं कि गंगा घाटी में नए प्रकार की खेती, खासकर धान की खेती शुरू हुई। धान की खेती में श्रम–शक्ति की ज्यादा जरूरत पड़ती है, खासकर रोपाई और कटाई के समय। किसान को इस समय अपने परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य लोगों की भी सहायता लेनी पड़ती है। इस प्रकार की खेती इस काल के दौरान लोकप्रिय हो चुकी थी। हमें इस बात का भी पता चलता है कि इस काल में नई भूमि पर खेती के लिए काफी जोर दिया जाता था। निश्चित रूप से इन नई बस्तियों में श्रम–शक्ति का अभाव रहता होगा। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि किस प्रकार राज्य नई बस्तियां बसाने के लिए प्रोत्साहन देता था।

इस संदर्भ में इन इलाकों में शूद्रों को बसाने की बात भी की गई है। वैसे भी खेतिहर मजदूर अधिकतर शूद्र थे और उनसे ही शारीरिक श्रम का काम लिया जाता था। बहुल जनसंख्या वाले इलाकों या विजित राज्यों से उन्हें इन नई बस्तियों में लाया जाता था। कलिंग युद्ध के बाद लगभग डेढ़ लाख लोगों को नई बस्तियों में खेती के काम में लगाया गया था। अर्थशास्त्र में सलाह दी गई है कि इन बस्तियों में विदेशियों को भी बसाने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसी प्रकार, बढ़ई और व्यापारी जैसे अन्य समुदायों को भी संभवत: बसाया गया होगा। नए इलाकों में बसने वाले शूद्रों को वित्तीय सहायता, पशुधन, बीज, औजार आदि प्रदान करने का प्रावधान था। अनजुती भूमि पर खेती करने के लिए यह एक प्रकार का प्रोत्साहन था। ह्रासोन्मुख और उजड़ी बस्तियों को भी इसी प्रकार आबाद किया गया। खेती की पैदावार को बढ़ाने के लिए ऐसा करना जरूरी था।

कई मामलों में नई बस्तियां सीधे राजा के नियंत्रण में होती थीं। इस प्रकार की राजकीय भूमि को सीता भूमि कहते थे। कभी–कभी यह जमीन गांव के पहले के अधिकारियों को जुताई के लिए दे दी जाती थी। अगर कोई किसान खेती में किसी प्रकार का ढीलापन दिखाता था और उसके कारण उत्पादन में कमी आती थी तो उसे दूसरी जगह भेज दिया जाता था। ये गांव राजकीय भूमि के हिस्से थे, अत: स्वाभाविक रूप से राजा और उनके अधिकारियों का उन पर सख्त नियंत्रण था।

इस प्रकार, मौर्य काल में खेती का व्यापक विस्तार हुआ। कच्चे माल और मानव-शक्ति पर नियंत्रण और उनके उपयोग के कारण यह विस्तार तेजी से हो सका।

टिप्पणी

कृषि अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताएं

अर्थशास्त्र में स्थायी बस्तियां बसाने पर जोर दिया गया है ताकि कृषि अर्थव्यवस्था का विस्तार हो सके। इन बस्तियों से करों, खासकर भूमि-कर की प्राप्ति होती थी और ये राजकीय आय के स्थायी स्रोत थे। बस्तियां बसाने की इस प्रक्रिया को जनपद निवेश कहा जाता था, परंतु इसकी ठीक-ठीक प्रक्रिया क्या थी, यह स्पष्ट रूप से मालूम नहीं है। आर. एस. शर्मा के अनुसार, "यह मान लेना उचित होगा कि इस प्रकार गंगा के मैदान के अधिकांश इलाकों में खेती की जाने लगी और इसके साथ-साथ दूरस्थ इलाकों में भी कृषि अर्थव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जाने लगा होगा।"

कृषि के विकास से किसान या जोतदार का महत्व धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मैगस्थनीज भारतीय समाज पर टिप्पणी करता हुआ बताता है कि मौर्य समाज सात वर्णों में विभक्त था। इसमें दार्शनिक के बाद किसान का स्थान है, सैनिक तीसरे स्थान पर है। हालांकि उसका भारतीय समाज का विभाजन संबंधी दृष्टिकोण बिल्कुल सही नहीं है, परंतु यह महत्वपूर्ण बात है कि खेती में लगे किसानों की बड़ी संख्या ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। यूनानी स्रोत, खासकर इस बात को रेखांकित करते हैं कि खेतिहरों के पास अस्त्र-शस्त्र नहीं होते थे। मैगस्थनीज यह बताता है कि युद्ध के दौरान किसानों को क्षति नहीं पहुंचाई जाती थी, परंतु इस कथन पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि कलिंग युद्ध में मरने वालों की जो संख्या अशोक के अभिलेख में बताई गई है, उसमें काफी कृषक भी शामिल होंगे।

हमने पहले सीता या राजकीय भूमि की चर्चा की है। इन इलाकों में निश्चित रूप से स्वामित्व, जोत नीलामी और बिक्री पर राजा और राज्य का लगभग पूर्ण अधि कार था। वस्तुतः अर्थशास्त्र में सीताध्यक्ष या कृषि निरीक्षक का जिक्र है, जो शायद इन इलाकों में कृषि कार्य का निरीक्षण करता होगा। ये इलाके निश्चित रूप से उपजाऊ होंगे और इनमें काफी उपज होती होगी। इन राजकीय खेतों के उद्‌भव के बारे में कुछ कह पाना मुश्किल है। यह संभव है कि पूर्व-मौर्य काल में ये खेत भूमिधारकों के निजी नियंत्रण में रहे होंगे। इन्हीं इलाकों में खेती के लिए राज्य के निरीक्षण में दासों को नियुक्त किया गया होगा। अर्थशास्त्र में विस्तार से तृतीय तकनीक के विकसित ज्ञान का उल्लेख किया गया है यह भी संभवतः इसी प्रकार के खेतों के संदर्भ में वर्णित है।

मौर्य साम्राज्य के अन्य खेतिहर इलाकों को जनपद राज्य-क्षेत्र कहा जाता था। इन इलाकों में संभवतः निजी तौर पर लोग खेती करते थे। जातक कथाओं में बार-बार गृहपति और ग्रामभोजकों की चर्चा आती है। ये भूमिपति थे, जो अपनी जमीन पर खेती करने के लिए मजदूरों की नियुक्ति करते थे। दूसरी तरफ, मजदूरों की स्थिति बहुत दयनीय थी, कहीं-कहीं दासों का भी जिक्र हुआ है। सीता और जनपद दोनों तरह के इलाकों में राजा व्यक्तिगत जमीन रख सकता था परंतु कहीं भी इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। इस तरह, हालांकि संपूर्ण भारत के भूमि-स्वामित्व के सभी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा नहीं

की जा सकती है परंतु यह कहा जा सकता है कि गंगा घाटी में ही विभिन्न प्रकार की स्वामित्व–प्रणालियां कायम थीं, इसके कारण स्वाभाविक रूप से खेती की विभिन्न व्यवस्थाएं और कृषि विकास के कई स्तर सामने आए।

टिप्पणी

अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार की कृषि व्यवस्था की चर्चा की गई है, जिनका निरीक्षण अधिकारीगण किया करते थे। इसके अंतर्गत ऐसी भूमि की चर्चा की गई है, जिन पर राज्य अथवा राजा का सीधा नियंत्रण था। इसके अतिरिक्त जमीन और मकान की बिक्री का भी जिक्र किया गया है। इससे पता चलता है कि एक व्यक्ति जमीन का मालिक हो सकता था, परंतु वह उतनी ही जमीन अपने अधिकार में रख सकता था, जितनी वह खुद बो सके।

राज्य–स्वामित्व वाली भूमि में खेती की सफलता का महत्वपूर्ण कारण था राज्य द्वारा सिंचाई की सुविधा प्रदान करना। खेतिहरों की भलाई के लिए जल–आपूर्ति संबंधी कुछ नियम बनाए गए थे। मैगस्थनीज बताता है कि जमीन मापने और खेत में पानी पहुंचाने वाली नालियों का निरीक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि जहां राज्य द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी, एक नियमित जल–कर वसूल किया जाता था। यह कुल उत्पादन का पांचवां, चौथाई या तिहाई हिस्सा होता था। चूंकि यह कर केवल सिंचित भूमि पर लगाया जाता था, अत: इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि राज्य कम वर्षा वाले क्षेत्र में ही सिंचाई सुविधा उपलब्ध करवाता था ताकि इन इलाकों में सिंचाई की नियमित आपूर्ति से अच्छी फसल प्राप्त की जा सके। चंद्रगुप्त मौर्य के एक राजपाल पुष्यगुप्त ने गिरनार के निकट सौराष्ट्र में एक बांध बनवाया था, जिससे एक विशाल झील तैयार हो सके। यह सुदर्शन तडग झील के नाम से जाना जाता है। यह झील काफी प्रसिद्ध है। यह झील आठ सौ वर्षों यानी पांचवीं शताब्दी ई. तक सिंचाई का स्रोत बनी रही।

भू–राजस्व संगठन

यूनानी लेखक बताते हैं कि कुछ गांव कर से मुक्त थे। परंतु ऐसे गांव अपवाद थे और वस्तुत: ये ऐसे गांव थे, जिनसे सैनिकों की नियुक्ति की जाती थी। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि नई भूमि पर खेती को प्रोत्साहित करने के लिए एक सीमित समय के लिए कुछ गांवों को कर से मुक्त रखा जाता होगा।

मौर्य राज्य की आमदनी का स्थायी और अनिवार्य स्रोत भू–राजस्व ही हो सकता था। अत: लोगों से अधिक से अधिक कर वसूलने के लिए भू–राजस्व प्रणाली को सुव्यवस्थित किया गया। सामान्यत: ऐसा माना जाता है कि प्राचीन भारत की कर–व्यवस्था के क्षेत्र में मौर्य शासन एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मौर्य शासक भू–राजस्व के निर्धारण पर विशेष बल देते थे और करों का लेखा–जोखा रखने के लिए अलग से एक विभाग था, जिसका प्रमुख अधिकारी समाहर्ता कहलाता था। कोषाध्यक्ष सन्निधाता के नाम से जाना जाता था। चूंकि राजस्व वस्तु के रूप में भी प्राप्त किया जाता था। अत: इस प्रकार की आय को संग्रहीत करना सन्निधाता का ही कार्य था।

टिप्पणी

यूनानी लेखकों के अनुसार, किसान कर के रूप में कुल उपज का चौथाई हिस्सा राज्य को देते थे। उनके अनुसार किसान नजराना भी देते थे। भूमि कर (भाग) राजस्व का प्रमुख आधार था। ग्रंथों में प्राप्त विवरण के अनुसार, भाग कर कुल उपज का छठा हिस्सा होता था, लेकिन ऐसा अनुमान है कि मौर्य काल में यह हिस्सा चौथाई तक पहुंच गया था। अशोक लुम्बिनी शिलालेख में कहता है कि बुद्ध के जन्म स्थल लुम्बिनी की यात्रा के दौरान उसने उस गांव को बलि कर से मुक्त कर दिया था और भाग कर को घटाकर कुल उपज का आठवां हिस्सा कर दिया। यहां ध्यान देने योग्य बात है कि बुद्ध के प्रति अगाध श्रद्धा रखने के बावजूद अशोक ने उस गांव (लुम्बिनी) को पूर्णतया कर मुक्त नहीं किया।

भू–राजस्व का एक प्रचलित तरीका था–बटाई। बटाईदारों को पहले बीज, हल–बैल आदि और खेती के लिए जमीन दी जाती थी। इस मामले में कृषक संभवत: कुल उपज का आधा हिस्सा राज्य को दे देता था।

इन करों के अतिरिक्त किसानों को दूसरे कई प्रकार के नजराने पेश करने पड़ते थे। मौर्यों ने कुछ नए कर शुरू किए और पहले से लगे करों को और भी प्रभावी बनाया। पिंड कर एक प्रकार का रिवाजी कर था, जो किसानों से समय–समय पर लिया जाता था। इस कर का निर्धारण सामूहिक रूप से होता था, जिसमें कई गांव शामिल होते थे। अक्सर गांवों को उनके क्षेत्र से गुजरती हुई राजकीय सेना के लिए खाद्य सामग्री की व्यवस्था करनी पड़ती थी। हिरण्य नामक कर के स्वरूप के बारे में ठीक से पता नहीं है, परंतु संभवत: यह एक प्रकार का नकद कर था। वैदिक काल से चला आ रहा बलि कर मौर्यों के अधीन भी कायम रहा। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने जिन करों का जिक्र किया है, उनसे कृषकों पर अतिरिक्त भार ही पड़ता होगा। अर्थशास्त्र में इस बात की भी सलाह दी गई है कि यदि इसके बावजूद राज्य को अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए और अधिक करारोपण करना पड़े तो आपात स्थिति के दौरान लागू किए जाने वाले करों की सहायता ले सकता है। इस प्रकार के करों में प्रमुख है युद्ध कर, जिसे प्रणय कहा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है प्रेम से दिया गया उपहार। इस कर का उल्लेख सबसे पहले पाणिनी ने किया था, परंतु पहली बार विस्तार से इसका विवरण अर्थशास्त्र में ही मिलता है। यह कुल उपज का एक–तिहाई या एक–चौथाई होता था तथा यह हिस्सा भूमि की उर्वरता पर निर्भर था। इस कर का उल्लेख करते हुए प्राय: इसे स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर बताया जाता है, परंतु यथार्थ में यह निश्चित रूप से अनिवार्य कर हो गया होगा। इसके अतिरिक्त आपातकाल में किसानों को दो फसल उगाने के लिए बाध्य किया जा सकता था। इस बात पर बार–बार बल दिया गया है कि अकाल के समय में इस प्रकार का कदम उठाना जरूरी हो जाता था, क्योंकि इस समय भू–राजस्व की वसूली काफी कम हो जाती होगी।

भू–राजस्व मौर्य अर्थव्यवस्था का आधार था, इसलिए अर्थशास्त्र में राज्य की राजस्व व्यवस्था पर काफी गंभीरता और सावधानीपूर्वक विचार किया गया है। काफी सूझ–बूझ के साथ भूमि की उर्वरता के आधार पर विभिन्न गांवों पर अलग–अलग कर लगाए जाने

टिप्पणी

का प्रावधान रखा गया है। विभिन्न प्रकार के राजस्व वसूल करने वाले और उसका निर्धारण करने वाले अधिकारियों की इसमें विशेष रूप से चर्चा की गई है। अत: यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया जा सकता है कि मौर्य काल में करारोपण और वसूली की पद्धति सुदृढ़ थी और राज्य के बड़े हिस्से से अपार राजस्व वसूल किया जाता था। इसी राजस्व के बल पर सरकारी तंत्र और सेना का रख–रखाव संभव हो सका।

व्यापारिक संगठन

इस काल में व्यापार आकस्मिक रूप से विकसित नहीं हुआ। यह लंबे आर्थिक परिवर्तन का एक हिस्सा था, जिसकी शुरुआत मौर्य काल से काफी पहले हो चुकी थी। जातक कथाओं में बार–बार ऐसे व्यापारियों के काफिलों का जिक्र आता है जो काफी मात्रा में सामान देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में पहुंचाते थे। मौर्य शासन द्वारा सुरक्षा प्रदान किए जाने के कारण आंतरिक व्यापार तेजी से फला–फूला। पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया को जाने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्ग उत्तर पश्चिमी भारत से होकर गुजरते थे। उत्तरी भारत के प्रमुख व्यापारिक मार्ग गंगा नदी के किनारे–किनारे और हिमालय की तलहटी से गुजरते थे। मगध साम्राज्यों के प्रमुख केंद्र–राजगृह और कौशाम्बी (इलाहाबाद के निकट)–इस प्रकार आपस में जुड़े हुए थे। मौर्यों की राजधानी पाटलिपुत्र बड़े महत्वपूर्ण स्थल पर बसी हुई थी, जहां से यह चारों ओर से नदी और स्थल मार्ग से जुड़ी हुई थी। उत्तरी मार्ग वैशाली होता हुआ श्रावस्ती और कपिलवस्तु तक जाता था। कपिलवस्तु से यह मार्ग कलसी, हजारा होता हुआ पेशावर तक जाता था। मैगस्थनीज ऐसे मार्ग की भी चर्चा करता है, जो उत्तर–पश्चिमी प्रदेश को पाटलिपुत्र से जोड़ता था, दक्षिण की ओर पाटलिपुत्र एक मार्ग द्वारा मध्य भारत तक और दक्षिण–पूर्व में कलिंग तक जुड़ा हुआ था। यह पूर्वी मार्ग अंतत: दक्षिण की ओर मुड़ जाता था और आंध्र तथा कर्नाटक तक पहुंचता था। पूर्वी मार्ग का दूसरा हिस्सा गंगा डेल्टा होता हुआ ताम्रलिप्ति तक पहुंचता था, जहां से दक्षिण और दक्षिण–पूर्व इलाके तक जाया जा सकता था। कौशाम्बी से पश्चिम की ओर एक रास्ता उज्जैन तक जाता था। यह रास्ता और आगे पश्चिम में गुजरात के समुद्र तट तक नर्मदा के दक्षिण पश्चिम तक जाता था, जिसे दक्षिणपथ यानी दक्षिणी मार्ग के नाम से जाना जाता था। पश्चिम एशिया के देशों का रास्ता तक्षशिला (इस्लामाबाद के निकट) होकर जाता था।

नई बस्तियों के विस्तार से लोगों का आवागमन बढ़ा और इसके परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में संचार कायम हुआ। इससे स्वाभाविक रूप से व्यापार में वृद्धि हुई। राज्य के प्रयत्न से गंगा घाटी के वन काटे गए और इस प्रकार तटों के साफ हो जाने से नदी के यातायात में तेजी आई। बिंदुसार और अशोक के शासनकाल में शांति की नीति अपनाई गई और यूनानियों से मित्रतापूर्ण संबंध कायम किया गया इससे विदेशी व्यापार में भी वृद्धि हुई।

व्यापार के अनेक तरीके विकसित थे। यह सहज रूप से उत्पादन के तरीके और इसके संगठन से जुड़ा हुआ था। उत्तर भारत में कारीगर उत्पादन या हस्तशिल्प उद्योग

टिप्पणी

श्रेणियों के आधार पर संगठित था। यह व्यवस्था मौर्य काल के पहले से चली आ रही थी। मौर्यों के अधीन शिल्पियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। प्रत्येक श्रेणी नगर के एक भाग में बसी हुई थी जिससे एक श्रेणी के सदस्य एक साथ रह सकते थे और कार्य कर सकते थे। आमतौर पर उनमें पारिवारिक संबंध पाया जाता था। ज्यादातर पुत्र अपने पिता के व्यवसाय को अपनाते थे और इस प्रकार हस्तशिल्प अधिकांशतया वंशानुगत होता था। उस काल के अभिलेखों में इस बात का उल्लेख है कि मौर्य काल के बाद ये श्रेणियां काफी शक्तिशाली हो गईं। मैगस्थनीज ने भी श्रेणियों की गणना सात जातियों/वर्गों में की है। इस काल की श्रेणियों में प्रमुख थे- विभिन्न प्रकार के धातुकर्मी, बढ़ई, कुंभकार, चर्मकार, चित्रकार, बुनकर आदि। उत्तरी काली पॉलिश के बर्तन हस्तशिल्प के उत्तम नमूने हैं। यह बर्तन बनाने का विशिष्ट हस्तशिल्प था और गंगा घाटी के बाहर कम ही पाया जाता है। इससे पता चलता है कि देश के इस भाग में यह तकनीक विकसित हुई और शायद यह एक विशेष प्रकार की मिट्टी से ही बनाया जा सकता था।

शिल्पी के समान व्यापारी भी श्रेणियों में विभक्त थे। व्यापारियों का एक समूह किसी खास शिल्पी समुदाय से जुड़ा होता था, जिससे वितरण में सुविधा होती थी। वे भी शहर के किसी खास हिस्से में रहते थे, जो बाद में उनके व्यवसाय से संबद्ध हो गया।

यह ध्यान देने की बात है कि मौर्यों के शासनकाल में राज्य प्रशासन ने व्यापार के संगठन पर भी ध्यान दिया। इस प्रकार के प्रशासनिक नियंत्रण से उत्पादन और व्यापार में काफी सुधार हुआ। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रशासन ने प्रत्यक्षत: श्रेणी संगठन में हस्तक्षेप किया और उसे बदलने की कोशिश की। राज्य का नियंत्रण वस्तुओं के वितरण पर होता था और यहां तक कि राज्य खुद उत्पादक भी बना। दूसरे स्तर पर इसने कुछ शिल्पों को कुछ-कुछ लघु उद्योग के रूप में विकसित किया। इस क्रम में उसने अस्त्र बनाने वाले, जहाज बनाने वाले, पत्थर काटने वाले आदि शिल्पियों को सीधे नियुक्त किया। इन्हें कर नहीं देना पड़ता था क्योंकि ये राज्य को अनिवार्य श्रम सेवा अर्पित करते थे, परंतु अन्य शिल्पियों; जैसे सूत कातने वाले, बुनकर तथा खानों आदि में काम करने वालों को कर देना पड़ता था।

व्यापार और वस्तु उत्पादन को व्यवस्थित करने के सारे कार्य राज्य नीति का हिस्सा थे। आर्थिक गतिविधियों और राजस्व पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखने के लिए राज्य को यह नीति अपनानी पड़ी। मैगस्थनीज ने वाणिज्य अधीक्षक का जिक्र किया है, जो वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करता था और बाजार में किसी वस्तु की मात्रा, बहुत अधिक आ जाने की स्थिति में हस्तक्षेप भी करता था। अर्थशास्त्र में उसका उल्लेख पण्याध्यक्ष के रूप में हुआ है। इसमें कई ऐसे अधिकारियों का जिक्र है, जो विभिन्न आर्थिक गतिविधि यों की देख-रेख करते थे। समस्याध्यक्ष बाजार की निगरानी करता था और व्यापारियों पर नियंत्रण रखता था। पौटवाध्यक्ष या माप-तौल अधीक्षक माप-तौल के स्तर पर सख्त नियंत्रण रखता था। नावाध्यक्ष के अधीन राज्य की नावें रहती थीं, जिनसे यातायात होता था। वह नदी यातायात पर नियंत्रण रखने में सहायता प्रदान करता था और उतराई भी वसूल करता था। सभी व्यापारियों को कर और चुंगी शुल्क देना पड़ता था। यह शुल्क

वस्तु के मूल्य के 1/5वां हिस्से से 1/25वें हिस्से तक होता था। इस शुल्क की वसूली का काम शुल्काध्यक्ष करता था।

टिप्पणी

राज्य द्वारा उत्पादित वस्तुओं की देख–रेख दूसरे अधिकारीगण किया करते थे। इस प्रकार की वस्तुओं को राजपण्य कहते थे। राज्य उसी वस्तु के उत्पादन में हाथ लगाता था जो उसके काम–काज के लिए अनिवार्य था और जिनसे अच्छा राजस्व प्राप्त हो सकता था। कभी–कभी राज्य की वस्तुएं निजी व्यापारियों द्वारा भी वितरित की जा सकती थीं, क्योंकि उनकी वितरण–व्यवस्था सुव्यवस्थित थी और काफी दूर तक फैली हुई थी। इन परिवर्तनों के बावजूद यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकांश शिल्पी या तो निजी तौर पर या श्रेणी–व्यवस्था के अंतर्गत काम करते रहे। ये श्रेणियां इन उत्पादकों के बीच सौहार्द–स्थापित करने का काम करती थीं, साथ ही साथ उन पर नियंत्रण भी रखती थीं। यहां तक कि शिल्पी भी श्रेणी में शामिल होना फायदेमंद मानते थे, क्योंकि अकेले काम करने में खर्च अधिक आता था और प्रतियोगिता काफी बढ़ जाती थी। राज्य को भी इन श्रेणियों से कर वसूलने में सुविधा होती थी। अंतत: स्थानीय तौर पर केंद्रित होने और एक खास शिल्प में विशेषज्ञता हासिल करने के कारण उस व्यापार विशेष में खूब तरक्की हुई, परंतु इस काल में श्रेणियां संपूर्ण भारत में नहीं फल–फूल रही थीं। खासकर दक्षिण में, मौर्य काल के बाद भी उनका उल्लेख मुश्किल से मिलता है। श्रेणियों के विकास के लिए शहरी वातावरण अधिक उपयुक्त था।

2.2.7 मौर्यकालीन भारत में सामाजिक धार्मिक व आर्थिक परिवर्तन

कृषि, व्यापार और उद्योग पर राज्य का नियंत्रण मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी। राज्य के निर्वाह के लिए विभिन्न प्रकार के करारोपण आवश्यक थे। मौर्य साम्राज्य को सुव्यवस्थित रूप में चलाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्रोतों की आवश्यकता थी। मगध और उसके आसपास के इलाकों से प्राप्त स्रोत साम्राज्य के कार्यकलापों के लिए पूरे नहीं पड़ते थे। अत: देश के दूसरे प्रदेशों के स्रोतों पर नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की गई। इसके लिए कलिंग, कर्नाटक के पठार और पश्चिम भारत का उदाहरण लिया जा सकता है, जहां अशोक के अभिलेख पाए जाते हैं। इस प्रकार के सुदूर प्रदेशों की कुछ खास आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए मौर्य शासक विभिन्न पद्धतियां अपनाते थे। यह पद्धति उस प्रदेश से प्राप्त स्रोतों पर आधारित होती थी। उदाहरणस्वरूप कलिंग की विजय से मौर्यों को एक उर्वर कृषि भूमि मिली और उन मार्गों पर नियंत्रण स्थापित हो सका, जो दक्षिण में स्थित खानों तक जाते थे। इसी प्रकार कर्नाटक पर कब्जा जमाने का मूल उद्देश्य सोने और बहुमूल्य रत्नों के स्रोतों पर अधिकार प्राप्त करना था।

जिन इलाकों में मौर्य अभिलेख प्राप्त नहीं हुए हैं, उन इलाकों पर आर्थिक नियंत्रण किस प्रकार का था? रोमिला थापर का विचार है कि "ऐसे क्षेत्रों में मौर्यों के राजनीतिक और आर्थिक नियंत्रण का आकलन मुश्किल है।" उत्तरी दक्कन, पंजाब, सिंध और राजस्थान इसी प्रकार के इलाके थे। इनमें से जिन इलाकों में मौर्यों का प्रभाव था, वहां

टिप्पणी

भी बड़े पैमाने पर किसी प्रकार के फेर-बदल का प्रयत्न नहीं किया गया। मौर्यों का मुख्य उद्देश्य स्रोतों का दोहन था और वह इसके लिए क्षेत्र विशेष के प्रभावशाली वर्ग पर निर्भर रहते थे। यह ध्यान देने की बात है कि इस काल में गंगा घाटी के बाहर अधिकांश प्रदेशों में आर्थिक विकास का स्तर एक-सा नहीं था। इस असमान विकास के कारण इन सभी क्षेत्रों में कोई मूलभूत परिवर्तन लाना और पुनर्रचना करना काफी कठिन काम था।

अर्थशास्त्र और अशोक के अभिलेखों में जनजातियों या कबीलों (अतविक, अरण्यकार) का जिक्र हुआ है, जो साम्राज्य के कई हिस्सों में बसे हुए थे। अन्य इलाकों की तरह इनके इलाके विकसित नहीं थे। कौटिल्य ने राज्य को सुझाव दिया कि इन कबीलों को व्यवस्थित कृषि जीवन की ओर उन्मुख किया जाना चाहिए। उसने अर्थशास्त्र में पूरे एक अध्याय में कबीलाई व्यवस्था को भंग करने और उसके लिए सही और गलत–सभी तरह के तरीके अपनाने की सलाह दी है। अधिक से अधिक भूमि पर खेती करने के लिए आवश्यक था कि पांच से दस परिवारों के एक समूह को एक साथ स्थाई तौर पर बसाया जाए। अशोक इन कबीलों को एक पिता की निगाह से देखता था, परंतु वह उन्हें एक जगह चेतावनी भी देता है कि अगर उन्होंने महामात्यों के आदेश का पालन न किया तो उन्हें सख्त सजा दी जाएगी। जंगल में रहने वाले इन कबीलों पर नियंत्रण दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण था–

1. पहला, नई खेतिहर बस्तियों की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक था कि कबीले उनके आर्थिक विकास में बाधा न पहुंचाए।
2. दूसरे, ज्यादातर व्यापार मार्ग कबीलाई क्षेत्रों के बगल से या उनसे होकर गुजरते थे। अत: इन क्षेत्रों पर नियंत्रण आवश्यक था।

   यह बता पाना तो मुश्किल है कि कितने कबीलाई समूह कृषक बन पाए, परंतु यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रक्रिया को राज्य ने बढ़ावा दिया। भारत के विभिन्न भागों के पुरातात्विक प्रमाण बताते हैं कि बहुत से ऐसे इलाके थे, जो इस युग में पुरी तरह शहरी केंद्र के रूप में विकसित नहीं थे। तीसरी शताब्दी ई. पू. के महापाषाणीय स्थलों, दक्कन और दक्षिण भारत के कई हिस्सों को देखने से पता चलता है कि वहां खेती आरंभिक अवस्था में थी, चरवाहे समुदायों का अस्तित्व था और शिल्प उद्योग की सीमित जानकारी थी।

तीसरी शताब्दी ई.पू. में भारत जैसे विशाल देश में पूर्ण रूप में परिवर्तन लाना संभव भी नहीं था, परंतु मौर्य शासन के दौरान कुछ भौतिक और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों की शुरुआत हो चुकी थी, जो आगे की शताब्दियों में फलीभूत हुई।

मौर्य साम्राज्य के कई क्षेत्रों, जैसे उत्तरी और पश्चिमी बंगाल, कलिंग, दक्कन और इनके दक्षिण प्रदेश में आरंभिक ऐतिहासिक सांस्कृतिक पद्धति की शुरुआत मौर्यकाल या मौर्यकाल के बाद की अवधि से मानी जाती है। इसका अर्थ यह है कि मौर्यकाल और मौर्यकाल के बाद प्रभावकारी मानवीय बस्तियों (जैसे शहरों और नगरों) का विकास हुआ है, जिसमें विभिन्न सामाजिक समूह रहा करते थे। वे सिक्कों का उपयोग करते थे। उनकी एक लिपि थी और काफी मात्रा में वे परिष्कृत वस्तुओं का

सेवन करते थे। भौतिक जीवन में ही नहीं अपितु सामाजिक संगठन और विचारों में भी बदलाव आया। सामाजिक संगठन में अधिक जटिलता आई। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक समूहों के बीच और अंततः एक संस्था के रूप में राज्य में अलगाव पैदा हुआ। मौर्यों के बाद कई क्षेत्रों में स्थानीय राज्य विकसित हुए। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि मगध साम्राज्य के संपर्क में आने वाले भारत के अनेक हिस्सों में सामाजिक-आर्थिक बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई जो समाज में हो रहे अधिशेष उत्पादन से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी।

टिप्पणी

धार्मिक जीवन

जिस समय भारत के राजनीतिक नभ मंडल पर मौर्य साम्राज्य रूपी सूर्य उदित हो रहा था, उसी समय भारत के धार्मिक विचारों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। इस युग में ब्राह्मण धर्म का प्राधान्य अधिक था। वैदिक देवी-देवताओं की उपासना अभी भी प्रचलित थी। इंद्र, वरुण, स्कंध, शिव, विष्णु आराध्य देव थे। यज्ञादि व अनुष्ठान व्यक्ति अपने उद्धार हेतु करता था। इसके अतिरिक्त अशोक द्वारा बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन देने से यह धर्म भी बहुत विकसित हुआ। बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के अतिरिक्त जैन धर्म, आजीवक संप्रदाय भी प्रचलित थे। एक अन्य दूसरा संप्रदाय जिसका नियमित रूप से उत्कर्ष हो रहा था, वह था भागवत धर्म, जिसने भक्ति पर अधिक जोर दिया। इसके साथ ही ब्राह्मण धर्म की एक शाखा शैव मत भी प्रगति पर था।

2.2.8 मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

184 ई.पू. अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने हत्या कर शुंग वंश की स्थापना की और मौर्य वंश का पतन हो गया। मौर्य वंश के पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे–

1. **निर्बल एवं अयोग्य उत्तराधिकारी**–अशोक की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी इतने योग्य न थे जो इतने विशाल साम्राज्य को सुरक्षित रख सकते। यही कारण था कि अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने कर दी तथा प्रजा ने इस घटना को सहज ही स्वीकार कर लिया। डॉ. रोमिला थापर का मत है कि, "अशोक की मृत्यु के पश्चात कमजोर शासकों के कारण मौर्य वंश का पतन हो गया।"
2. **साम्राज्य की विशालता**–मौर्य साम्राज्य अत्यंत विशाल था परंतु निर्बल केंद्रीय शासन के कारण प्रांतीय शासकों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी यदि सम्राट योग्य होते तो निश्चित ही वह विद्रोह को तथा स्वायत्तता को दबा सकते थे। कुशल सम्राट ही विशाल साम्राज्य को सुरक्षित रख सकते थे।
3. **साम्राज्य का विकेंद्रीकरण**–साम्राज्य का विकेंद्रीकरण भी पतन के लिए उत्तरदायी था। कश्मीर में जालौक ने स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। तारानाथ के अनुसार, "वीरसेन नामक एक प्रांतीय शासक ने मौर्य शक्ति को कम होते देखकर इस अवसर का लाभ उठाकर गांधार में अपना शासन स्थापित किया।"

टिप्पणी

4. **विदेशी आक्रमण**–विदेशी आक्रमणों ने मौर्य साम्राज्य को और भी जर्जर बना दिया था। गार्गी संहिता में लिखा है- "यूनानी सेना का सामना न कर सकने के कारण मौर्य राजा निश्चय ही प्रजा की दृष्टि में गिर गए होंगे और इसी कारण मौर्य साम्राज्य न टिक सका।"

5. **राजकोष की रिक्तता**–मौर्य सम्राट अशोक ने अत्यधिक निर्माण कार्य किए जिससे राजकोष रिक्त हो गया। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार "राजा की शक्ति कोष पर आश्रित होती है। कोष की रिक्तता ने भी मौर्य साम्राज्य को पतनोन्मुख बनाया।"

6. **राजनीतिक षड्यंत्र व गुटबंदी**–मगध राजनीतिक षड्यंत्र का केंद्र बन गया था। इसका प्रमुख उदाहरण यही है कि सुबंधु ने चाणक्य जैसे कूटनीतिज्ञ को अपदस्थ करा दिया।

7. **अशोक की अहिंसात्मक नीति**–जो साम्राज्य रक्त व लौह की नीति पर स्थापित होता है उसे उसी से सुरक्षित रखा जा सकता है परंतु अशोक की अहिंसात्मक नीति से न केवल प्रांतीय शासक स्वेच्छाचारी हो गए थे वरन विदेशियों के हृदय से भी साम्राज्य व शासक का भय निकल चुका था। दूसरा, अशोक का बौद्ध धर्म के प्रति अत्यधिक झुकाव होने के कारण ब्राह्मण शासन के विरोधी हो गए थे। सेना युद्ध न लड़ने के कारण शिथिल हो चुकी थी। परंतु अधिकांश इतिहासकार उपर्युक्त तर्कों की आलोचना करते हैं। यदुनंदन कपूर का मत है, "अशोक की शांतिमय नीति घातक नहीं थी। अशोक ने मगध की सामरिक शक्ति या राजनीतिक प्रतिभा का नाश नहीं किया। अशोक ने 13वें शिलालेख में स्पष्ट कर दिया था अशोक उनके प्रति दया दृष्टि रखता है जो उन्हें धर्म में लाने का प्रयास करते हैं। यदि वे अपराध करना बंद न करेंगे तो कलिंग को जीतने वाली सेना उनका भी नाश कर देगी।"

8. **करों की अधिकता**–निर्माण कार्यों की अधिकता से राजकोष रिक्त हो गया। जनता पर नये-नये कर लगाए गए जिससे जनता की आर्थिक स्थिति और खराब हो गई। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार करों की अधिकता का भार मध्य वर्ग के लिए असहनीय हो रहा था। हो सकता है कि इस कारण भी प्रजा के असंतोष में वृद्धि हुई थी।

9. **राज्य कर्मचारियों का अत्याचार**–मौर्य शासन प्रांतों में विभक्त था। प्रांतीय शासक जनता पर स्वेच्छा से अत्याचार करते थे। बिंदुसार के समय हुए विद्रोह इसका प्रमाण थे।

निष्कर्ष–उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त और भी कई कारण थे जिससे मौर्य वंश का पतन हो गया। जनता अंतिम मौर्यों से अत्यंत रुष्ट थी एवं ब्राह्मण प्रतिक्रिया ने मौर्य शासन को और खोखला कर दिया। इसके अतिरिक्त अशोक की धम्म विजय की नीति आध्यात्मिक दृष्टि से भले ही शानदार हो राजनीतिक दृष्टि से विनाशकारी ही प्रमाणित हुई।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. मौर्य वंश का संस्थापक कौन था?
   (क) चंद्रगुप्त (ख) बिंदुसार
   (ग) अशोक (घ) इनमें से कोई नहीं
2. मौर्य वंश के किस शासक ने 'धम्म' आरंभ किया?
   (क) चंद्रगुप्त (ख) अशोक
   (ग) बिंदुसार (घ) इनमें से कोई नहीं

2.3 शुंग और कण्व

शुंग वंश का संस्थापक पुष्यमित्र शुंग था। पुष्यमित्र शुंग ने अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या कर शुंग वंश की स्थापना की थी। सर्वप्रथम उसने मगध साम्राज्य को संगठित किया। इसने अवश्वमेध यज्ञ का भी आयोजन करवाया। शुंग को ब्राह्मण धर्म का पुनरुद्धारक कहा जाता है। इस इकाई में हम पुष्यमित्र शुंग के कार्यकलापों, इस वंश के पतन तथा कण्व वंश की स्थापना के विषय में जान सकेंगे।

मौर्योत्तर भारत (200 ई.पू. से 300 ई. तक पूर्व)–मौर्यों के समय जिस भारत ने प्रचंड राजनीतिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता का अनुभव किया उसी भारत में अशोक की मृत्यु के अनंतर शीघ्र ही विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति प्रधान हो गयी। अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या कर उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने शुंग वंश की स्थापना की।

2.3.1 शुंगों का राजनीतिक सर्वेक्षण

शुंग कौन थे–शुंग कौन थे? उनकी जाति क्या थी? इस विषय में विद्वानों में अत्यंत मतभेद हैं। इस विषय में प्रमुख मत निम्नांकित हैं–

शुंग पारसी थे–डॉ. हरप्रसाद शास्त्री ने शुंगों को पारसी माना है। उनके अनुसार प्रत्येक शुंग वंशीय शासक के नाम के पीछे मित्र लगा है जो इस बात का द्योतक है कि वे पारसी थे। पारसियों में मित्र का अर्थ सूर्य है और ईरानी शासक सूर्योपासना करते थे। शुंग भी सूर्य उपासक थे परन्तु विद्वान इस तर्क से सहमत नहीं हैं।

शुंग ब्राह्मण थे–ब्राह्मण साहित्य में शुंगों की जाति ब्राह्मण मानी गई है। लाटायन सूत्र के भाष्य में शुंग आचार्य थे तथा भारद्वाज ऋषि की संतान थे जिनका विवाह विश्वामित्र के वंशजों में हुआ था। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि वेदशास्त्र का ज्ञाता ही सेनापतित्व, राजस्व, सेना का नेतृत्व व समस्त देश का राज्य पा सकता है। तारानाथ भी पुष्यमित्र को राजपुरोहित मानते हैं और राजपुरोहित ब्राह्मण ही हो सकता था। मालविकाग्निमित्र में शुंगों को बैब्मिकानां कुलव्रतम अर्थात् बैम्बिक कुल का कहा है जो ब्राह्मण कुल था।

टिप्पणी

डॉ. त्रिपाठी का मत है, ''वास्तव में शांत और चिंतक ब्राह्मण के इस शस्त्र-धारण कर्म में किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं क्योंकि आवश्यकता वश उनके शस्त्र ग्रहण का विधान मनु ने किया था।'' डॉ. भगवत शरण उपाध्याय ने भी कहा है–ब्राह्मण पुष्यमित्र का इतिहास रक्तरंजित है।

2.3.2 पुष्यमित्र शुंग

शुंग वंश का प्रथम शासक पुष्यमित्र शुंग, अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ के समय मौर्यों का प्रधान सेनापति था। इसके माता-पिता कौन थे तथा इसने यह पद कैसे प्राप्त किया था, ठीक-ठीक पता नहीं है। दिव्यावदान में इसके पिता का नाम पुष्यधर्म मिलता है, पर उससे सम्बन्धित अन्य विवरणों का अभाव है। उपलब्ध सभी साक्ष्य इसके जीवन का प्रारंभ बृहद्रथ के सेनानी के रूप में ही करते हैं। पुराण तथा हर्षचरित से ज्ञात होता है कि इसने अपने स्वामी बृहद्रथ की, जिस समय वह सेना का निरीक्षण कर रहा था, धोखे से हत्या कर मगध की राजगद्दी हथिया ली।

पुष्यमित्र शुंग द्वारा बृहद्रथ की धोखे से हत्या करने तथा मगध की गद्दी हथियाने की घटना की व्याख्या इतिहासकार अलग-अलग ढंग से करते हैं। हरप्रसाद शास्त्री का विचार है कि पुष्यमित्र के सेनापतित्व काल में यवनों ने मौर्य साम्राज्य को क्षति पहुंचाने की कोशिश की, पर पुष्यमित्र ने उन्हें उल्टे पांव वापस कर दिया। इस सफलता से मौर्य दरबार में इसका जो स्वागत हुआ उससे यह फूला न समाया और जिस समय नगर के बाहर पड़े शिविर में बृहद्रथ सेना का निरीक्षण कर रहा था, इसने उसका काम तमाम कर दिया तथा मगध की सत्ता ग्रहण कर ली। के.पी. जायसवाल, आर.के. मुकर्जी जैसे विद्वान भी पुष्यमित्र द्वारा बृहद्रथ की हत्या तथा मगध की गद्दी प्राप्त करने के मूल में उसकी यवनों के विरुद्ध सफलता को ही उत्तरदायी मानते हैं। डी.सी. सरकार इससे कुछ भिन्न कहानी गढ़ते हैं। इनके अनुसार प्रारंभ में तो बृहद्रथ ने यवनों के प्रतिरोध की प्रतिज्ञा की, पर जब वास्तविक आक्रमण हुआ, वह दुर्ग में छिप गया। पुष्यमित्र ने उसको प्रेरित करने के लिए उससे सैनिक दल का निरीक्षण करवाया। किंतु जब इससे भी उसके विचार में कोई परिवर्तन न हुआ तो इसने उसकी हत्या कर दी। किंतु यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए तो ये सभी मत काल्पनिक दिखते हैं। पहले तो भारत पर यवनाक्रमण की तिथि सुनिश्चित नहीं है। यदि थोड़ी देर के लिए इसे पुष्यमित्र के राज्यारोहण के समय की घटना मान भी लिया जाए तो भी इससे बृहद्रथ की हत्या तथा पुष्यमित्र के राज्यग्रहण का सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है।

हरप्रसाद शास्त्री यवनाक्रमण के साथ-साथ पुष्यमित्र के राज्यग्रहण की घटना में ब्राह्मणों द्वारा मौर्य सत्ता के प्रति किए गए विद्रोह की भूमिका भी स्वीकार करते हैं, पर किसी साक्ष्य से इसका समर्थन नहीं मिलता।

मालविकाग्निमित्रम के आधार पर एच.सी. रायचौधरी प्रस्तावित करते हैं कि बृहद्रथ के शासन काल में मौर्य दरबार दो स्पष्ट गुटों में बंट गया था। एक का नेतृत्व बृहद्रथ का मंत्री अपने संबंधी यज्ञसेन की आड़ में कर रहा था तथा दूसरे का नेतृत्व सेनापति पुष्यमित्र कर रहा था। मंत्री ने यज्ञसेन को विदर्भ की गवर्नरी दिला दी थी। पुष्यमित्र ने अग्निमित्र

को विदिशा का वायसराय बनवा दिया था। पुष्यमित्र महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। इसके दिमाग में यज्ञसेन का खतरा बराबर बना रहता था। अतएव इसे सदा के लिए समाप्त करने के उद्देश्य से इसने बृहद्रथ की हत्या की योजना बनाई तथा सेना के निरीक्षण का स्वांग रचकर उसकी हत्या कर दी तथा मगध की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

टिप्पणी

पुष्यमित्र को सभी उपलब्ध साक्ष्यों में 'सेनानी' के रूप में उल्लिखित किया गया है। इसके विपरीत इसके पुत्र को सर्वत्र 'राजा' की उपाधि दी गई है। इस आधार पर एस. पाण्डुरंग तथा विल्सन जैसे विद्वान यह मान बैठे कि पुष्यमित्र कभी गद्दी पर बैठा ही नहीं। बृहद्रथ की हत्या के बाद इसने अपने पुत्र अग्निमित्र को राजा बना दिया। किंतु इस प्रकार के निष्कर्ष का कोई औचित्य नहीं दिखायी पड़ता। पुष्यमित्र ने जिस प्रकार मौर्यों के अनंतर राजनीतिक ध्रुवीकरण किया तथा सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत की, जिस प्रकार दो-दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान कर वैदिक धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा कर राजनीतिक महत्ता अर्जित की उससे इसके राजपद ग्रहण करने में संदेह करना ठीक न होगा। रही बात सेनानी उपाधि की, तो ऐसा लगता है कि मौर्यों की सेना का लंबे समय तक सेनापति होने के कारण इसने इसी रूप में ख्याति अर्जित की थी। अतएव राजपद पाने के बाद भी इसने इस उपाधि को न छोड़ा। डी.सी. सरकार इसकी तुलना पेशवाओं से करते हैं।

पुष्यमित्र शुंग की उपलब्धियां

पुष्यमित्र शुंग ने जिस समय मौर्य सत्ता हथियाई, परिस्थितियां अनुकूल न थीं। मौर्यों के दुर्बल शासन में एक ओर मौर्य साम्राज्य बिखर गया था तथा सर्वत्र राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त थी, तो दूसरी ओर साम्राज्य के पश्चिमी हिस्सों पर यवन क्रूर दृष्टि लगाए थे। पुष्यमित्र को इन दोनों परिस्थितियों से निबटना था। संयोग से इसमें यह पूर्णतया सफल रहा। पाटलिपुत्र पर अधिकार करने के बाद इसने कौशल, वत्स तथा अवन्ति पर अपनी पकड़ मजबूत करने का प्रयास किया। अवन्ति में विदिशा नगर में साम्राज्य की दूसरी राजधानी स्थापित की तथा वहां अपने पुत्र अग्निमित्र को उपराजा बनाया। इससे दूरस्थ प्रान्तों पर सुविधापूर्वक नियंत्रण संभव था। अयोध्या लेख से ज्ञात होता है कि कौशल में भी इसका कोई प्रतिनिधि नियुक्त था। संभवतया नर्मदा के तटवर्ती प्रदेश में भी किसी प्रतिनिधि की नियुक्ति की गई थी। साम्राज्य के विभिन्न भागों में अपने प्रतिनिधियों की नियुक्ति कर तथा सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत कर पुष्यमित्र ने सैनिक कार्रवाई प्रारंभ की।

विदर्भ से युद्ध एवं उस पर अधिकार–पुष्यमित्र शुंग ने अपने सामरिक जीवन की शुरुआत विदर्भ-युद्ध से की। हम इस बात की चर्चा कर चुके हैं कि अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ के समय मौर्य दरबार दो गुटों में बंट गया था। एक का नेतृत्व मंत्रिवर्ग के हाथ था तथा दूसरे का सेनापति के। मंत्रिगुट के समर्थन से यज्ञसेन को विदर्भ का शासन मिला था। बृहद्रथ की हत्या करने के बाद पुष्यमित्र ने जब मगध की राजगद्दी प्राप्त की तो प्रतिक्रिया में इसने मंत्री को कारागार में डाल दिया। इससे यज्ञसेन बहुत नाराज हुआ तथा विदर्भ में उसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। पुष्यमित्र के लिए यह चुनौती थी। इसने यज्ञसेन को भी रास्ते से हटाने का मन बना लिया तथा वह उचित मौके की तलाश

टिप्पणी

करने लगा। मालविकाग्निमित्रम के अनुसार एक दिन जब माधवसेन (जो यज्ञसेन का चचेरा भाई था) अग्निमित्र से मिलने विदिशा जा रहा था तो रास्ते में यज्ञसेन ने उसे बंदी बना लिया। अग्निमित्र ने यज्ञसेन से अपने मित्र माधवसेन को छोड़ देने का आग्रह किया पर यज्ञसेन ने इसके बदले शुंगों के कारागार में बंद अपने संबंधी को छोड़ देने की मांग की। इससे अग्निमित्र बहुत नाराज हुआ। उसने तत्काल अपने पिता की आज्ञा लेकर वीरसेन को विदर्भ पर आक्रमण करने का आदेश दिया। युद्ध किस प्रकार लड़ा गया, स्पष्टतया ज्ञात नहीं है। पर हम इतना जानते हैं कि इसमें यज्ञसेन की पराजय हुई तथा वह बंदी बना लिया गया। माधवसेन को मुक्ति मिल गई। विदर्भ राज्य यज्ञसेन तथा माधवसेन में बांट दिया गया। वरदा नदी दोनों राज्यों की सीमा मान ली गयी। दोनों ने पुष्यमित्र की आधीनता में अपने-अपने राज्य का शासन संभाला।

यवनाक्रमण का सफल प्रतिरोध–पुष्यमित्र शुंग के शासन काल की दूसरी महत्वपूर्ण घटना यवनों के आक्रमण के सफल प्रतिरोध से संबंधित है। बृहद्रथ की हत्या तथा पुष्यमित्र के मगध की सत्ता संभालने की अवधि में मौर्य साम्राज्य में जो अस्थिरता का वातावरण पैदा हुआ, उसका लाभ उठाते हुए यवन भारतीय सीमा में आ धमके। इसकी पुष्टि महाभाष्य, गार्गीसंहिता, भागवत पुराण, मालविकाग्निमित्रम्, जैनेन्द्र महावृत्ति (अभयनंदिकृत जैनेन्द्र व्याकरण की टीका) तथा कतिपय पुरातात्त्विक साक्ष्यों से हो जाती है। महाभाष्य में आख्यान है कि यवनों ने साकेत पर आक्रमण किया, यवनों ने मध्यमिका (चित्तौड़) पर आक्रमण किया (अरुणद् यवनः साकेतम्। अरुणद् यवनः मध्यमिकाम्) गार्गीसंहिता में कुछ विस्तृत चर्चा करते हुए आख्यात है कि दुष्ट विक्रांत यवन साकेत, पंचाल तथा मथुरा पर विजय प्राप्त कर पाटलिपुत्र तक आ गए। इससे प्रशासन में घोर अव्यवस्था उत्पन्न हो गई और सभी व्याकुल हो गए। किंतु दुर्मद यवन मध्य देश में अधिक दिन रुक न सके–

तत: साकेतमाक्रम्य पांचालान्मथुरांस्तथा ।
यवना: दुष्टविक्रान्ता: प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम् ।।
तत: पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हिते।
आकुला विषया: सर्वे भविषयन्ति न संशय: ।।
मध्यदेशे न स्थस्यन्ति यवना: युद्धदुर्मदा: ।
तेषामन्योन्य संभावा भविषयन्ति न संशय: ।।

भागवत पुराण में एक स्थल पर काल यवन द्वारा तीन करोड़ म्लेच्छ सेनाओं द्वारा मथुरा पर आक्रमण करने (रुरोध मथुरामेत्य तिसशभिर्म्लेच्छ कोटिभि:) तथा अन्यत्र भूतनन्द नामक राजा के बाह्लीक पुत्रों में पुष्यमित्र तथा दुर्मित्र (पुष्यमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च।) का उल्लेख किया गया है। मालविकाग्निमित्रम् में पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध के लिए छोड़े गए अश्व के सिंधु तट पर यवनों द्वारा पकड़ लिए जाने तथा पुष्यमित्र के साथ उनके संघर्ष का विशद वर्णन किया गया है। पुष्यमित्र के समय हुए यवनाक्रमण के कतिपय पुरातात्विक साक्ष्य भी हैं। इनका विवेचन जी.आर. शर्मा ने 'रेह इन्सक्रिप्शन ऑव मिनेन्ण्डर एण्ड द इण्डोग्रीक इनवेजन ऑव द गंगा वैली' शीर्षक ग्रंथ में किया है। के.

टिप्पणी

सी. ओझा इस बात से सहमत नहीं है कि पुष्यमित्र के समय गंगा घाटी में कोई यवन आक्रमण हुआ था। आपके अनुसार मध्य गंगा घाटी में यवन पुष्यमित्र के बहुत बाद शकों तथा पह्लवों के समय प्रथम शती ई.पू. में आए थे। विद्वान लेखक की राय है कि न तो पतंजलि तथा पुष्यमित्र समकालीन थे न किसी पुरातात्विक साक्ष्य से डिमेट्रियस तथा मिनांडर के आक्रमण का समर्थन मिलता है। गार्गीसंहिता के आधार पर यह कहा जाता है कि यवन मध्य देश में आंतरिक कलह के कारण नहीं रुक सके। किंतु इसी ग्रंथ की एक पांडुलिपि में यवनों के मध्य देश में रुकने की बात कही गयी है।

पुष्यमित्र के समय हुए इस यवनाक्रमण का नेता कौन था, स्पष्टतया ज्ञात नहीं है। डी.आर. भंडारकर, एच.सी. रायचौधरी, डब्लू. डब्लू. टार्न, के. पी. जायसवाल आदि इसका नेता डिमेट्रियस को मानते हैं तो विंसेंट स्मिथ, ई.जे. रैप्सन, ए.के. नारायण, जी. आर. शर्मा आदि इसका श्रेय मिनांडर को देते हैं। एन.एन. घोष इन दोनों से भिन्न मत व्यक्त करते हुए प्रस्तावित करते हैं कि पुष्यमित्र के समय दो यवन आक्रमण हुए। पहला पुष्यमित्र के शासन के प्रारंभ में, इसका नेतृत्व डिमेट्रियस ने किया। दूसरा आक्रमण इसके शासन के अंतिम भाग में हुआ। इसका नेतृत्व मिनांडर ने किया। टार्न यह तो मानते हैं कि पुष्यमित्र के समय एक ही आक्रमण हुआ तथा इसका नेतृत्व डिमेट्रियस ने ही किया पर आपका विचार है कि डिमेट्रियस अपने साथ अपने भाई एपोलोडोटस तथा सेनापति मिनांडर को भी लाया था। ऐसा लगता है कि डिमेट्रियस तथा मिनांडर दोनों ने साथ–साथ ही प्रस्थान किया। एक सेना का नेतृत्व डिमेट्रियस ने स्वयं अपने हाथ में लिया तथा दूसरी का नेतृत्व मिनांडर को दिया। स्वयं सिंध पर विजय कर मध्यमिका (चित्तौड़) की ओर बढ़ा, पर यहां पुष्यमित्र के पौत्र वसुमित्र ने इसे करारी मात दी। मिनांडर के नेतृत्व वाली सेना पंजाब पर अधिकार करती हुई मथुरा, पांचाल तथा साकेत को रौंदती हुई मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (कुसुमध्वज) तक पहुंच गई। यहां इसका सामना स्वयं पुष्यमित्र ने किया और इसे उल्टे पांव वापस कर दिया।

पुष्यमित्र के समय चाहे एक यवनाक्रमण हुआ हो अथवा दो। इसका नेतृत्व चाहे डिमेट्रियस ने किया हो चाहे मिनांडर ने अथवा दोनों ने, इतना निश्चित है कि यह आक्रमण भयंकर था और इससे शुंग साम्राज्य में भीषण संकट उत्पन्न हो गया था। पर पुष्यमित्र शुंग ने अपनी योग्यता तथा सैनिक सूझ–बूझ से यवनों को भारतीय सीमा से बहिष्कृत कर देश को महा–विपत्ति में डूबने से बचा लिया। मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार यह युद्ध सिंधु के दाहिने तट पर हुआ था (सिन्धोरदक्षिणरोधसि)। स्मिथ, कनिंघम, स्टेन कोनो, रैप्सन, घोष आदि विद्वानों ने इस सिंधु की पहचान सिंधु अथवा चम्बल की सहायक काली सिंधु से करते हैं। इसके विपरीत आर.सी. मजूमदार तथा जे. एस. नेगी जैसे विद्वान सिंधु से आशय पश्चिमोत्तर भारत की सिंधु से ही ग्रहण करते हैं। इनका कथन है कि नाटक से पता चलता है कि यज्ञाश्व एक वर्ष में सिन्धु तट पहुंचा था। यह अस्वाभाविक लगता है कि इसे काली सिन्धु तट पर पहुंचने में एक वर्ष लग गया होगा। अग्निमित्र को वसुमित्र की विजयश्री की सूचना पुष्यमित्र के माध्यम से यज्ञशाला में लिए गए पत्र के द्वारा मिली थी। यदि युद्ध मध्य भारत में कहीं लड़ा गया होता तो इसकी सूचना विदिशा में अग्निमित्र को अवश्य रहती। नाटक के अनुसार वसुमित्र

टिप्पणी

की माता अपने पुत्र के विषय में बहुत चिंतित रहती थी। यदि वसुमित्र विदिशा के सन्निकट कहीं युद्ध में व्यस्त होता तो माता से उसका संपर्क बराबर बना रहता तथा माता उसके विषय में इतनी अधिक चिंतित न रहती। इससे यही अनुमान लगता है कि वसुमित्र विदिशा से कहीं दूर लड़ रहा था। नाटक में स्पष्टतया दक्षिण तट का उल्लेख किया है। सिंधु नदी ही दक्षिण तटवाली है, शेष के तट पूर्व पश्चिम हैं। अतः सिंधु काली सिंधु न होकर पश्चिमोत्तर भारत की प्रसिद्ध सिंधु नदी है।

जालंधर तथा स्यालकोट पर अधिकार–विदर्भ एवं यवनों के विरुद्ध सफलता के साथ-साथ पुष्यमित्र ने कुछ अन्य सफलताएं प्राप्त की थीं अथवा नहीं, कुछ कहना कठिन है। दिव्यावदान तथा तारानाथ के विवरणों से ज्ञात होता है कि इसने पंजाब में जालंधर तथा स्यालकोट पर विजय प्राप्त की थी। ये दोनों नगर इसके साम्राज्य में सम्मिलित थे।

शातकर्णि से संघर्ष–रैप्सन जैसे कुछ विद्वान मानते हैं कि अग्निमित्र ने जिस विदर्भ शासक को पराजित किया था, वह आंध्रों का सामंत था। अतः विदर्भ युद्ध से निबटने के बाद पुष्यमित्र को आन्ध्रों से भी लड़ना पड़ा। इसमें प्रारंभ में तो शुंग सफल रहे, किंतु बाद में आंध्रों को ही सफलता मिली तथा शातकर्णि ने पुष्यमित्र से उज्जयिनी छीन लिया। उज्जयिनी पर शातकर्णि के स्वत्व का समर्थन मुद्राशास्त्रीय प्रमाणों से भी हो जाता है। किंतु यह बात मान्य नहीं हो सकती है। हम जानते हैं कि प्रथम सातवाहन शासक शिमुक ने कण्व शासक सुशर्मन को हटाकर राजगद्दी प्राप्त की थी। कण्व शुंगों के बाद सत्ता में आए थे। मेरुतुंग के विवरण से स्पष्ट होता है कि पुष्यमित्र का अवन्ति पर अधिकार था।

प्रशासनिक उपलब्धियां

इस प्रकार पुष्यमित्र ने अपने शासन के छत्तीस वर्षों में बिखरते मौर्य साम्राज्य को एक बार पुनःसंगठित कर उसे शुंग साम्राज्य का रूप दिया। बाहुबल से उसने अपने साम्राज्य को दक्षिण में नर्मदा तक तथा पश्चिमोत्तर भाग में पंजाब तक बढ़ा लिया। इस तरह मगध के निकटवर्ती क्षेत्र, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश तक इसके राज्य का विस्तार हो गया।

टिप्पणी

इस विस्तृत साम्राज्य के नियंत्रण के लिए विदिशा में दूसरी राजधानी स्थापित की गयी। कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं हैं कि विदिशा में शुंगों की दूसरी राजधानी स्थापित की गई। इनका तर्क है कि यदि विदिशा पुष्यमित्र शुंग की राजधानी होती तो पुष्यमित्र अग्निमित्र को विदिशा में पत्र लिखकर वसुमित्र द्वारा यवनों की विजय की सूचना न देता। अतः संभावना यह लगती है कि राजधानी पाटलिपुत्र में ही थी। विदिशा एक प्रमुख नगरी थी, जहां अग्निमित्र उपराजा या गवर्नर के रूप में शासन कर रहा था।

पुष्यमित्र ने साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ इसके समुचित संगठन की ओर भी ध्यान दिया। वायुपुराण के अनुसार इसने अपना राज्य आठ भागों में बांट दिया तथा प्रत्येक भाग के शासन की जिम्मेदारी अपने पुत्रों को दे दी। किंतु वायुपुराण के जिस पाठ के आधार पर यह स्थापना की जाती है, पार्जीटर महोदय उसे प्रामाणिक नहीं मानते। अतः इस बारे में अंतिम रूप से कुछ कहना संभव नहीं है। मालविकाग्निमित्रम् में अग्निमित्र को विदिशा के राजा के रूप में उल्लिखित किया गया है। धनदेव के अयोध्या लेख में धनदेव को कौशल का राज्यपाल कहा गया है। मालविकाग्निमित्रम् में अमात्यपरिषद तथा महाभाष्य में सभा का उल्लेख किया गया है। इससे शासन में मंत्रिपरिषद के महत्व का अंदाज़ लग जाता है। राजा के साथ-साथ युवराज की भी एक परिषद थी, जो आवश्यक विषयों पर मंत्रणा देती थी।

धार्मिक क्रियाकलाप : वैदिक धर्म का पुनरुत्थान

पुष्यमित्र का शासनकाल जितना राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा उतना ही धार्मिक दृष्टि से भी। इसके अविर्भाव के समय बौद्ध मतानुयायी मौर्यों के संरक्षण के कारण बौद्ध धर्म काफी फल-फूल रहा था तथा वैदिक धर्म एक प्रकार से शिथिल पड़ गया था। पुष्यमित्र शुंग ने प्रयास कर एक बार पुनः इसमें जान फूंकी। इसीलिए इसका शासनकाल ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान का युग माना जाता है। इसने पुनः यज्ञ, बलि, पूजा तथा उपासना, जिसे अशोक ने बंद करवा दिया था, प्रारंभ करवाए। यवनों पर सफलता प्राप्ति के बाद इस विजय के द्योतनार्थ तथा वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना के लिए पुष्यमित्र ने स्वतः दो अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया।

पुष्यमित्र द्वारा संपादित अश्वमेध यज्ञ की सूचना हमें महाभाष्य, मालविकाग्निमित्रम् तथा धनदेव के अयोध्या लेख से मिलती है। महाभाष्य में वर्तमान काल के उदाहरण के प्रसंग में 'इह पुष्यमित्रम् याजयाम्:' (पुष्यमित्र के लिए यहां यज्ञ कर रहे हैं) पद प्रयुक्त है। मालविकाग्निमित्रम्, के अनुसार पुष्यमित्र द्वारा छोड़े गए यज्ञाश्व को यवनों ने सिंधु तट पर पकड़ लिया था। हरिवंश पुराण में कलि में एक औद्भिज ब्राह्मण काश्यपगोत्रीय सेनानी द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान का उल्लेख किया गया है पुष्यमित्र द्वारा संपादित अश्वमेध यज्ञ का आभिलेखिक साक्ष्य धनदेव का अयोध्या लेख है। यह लेख फैजाबाद के अयोध्या से लगभग 1.5 किमी. अयोध्या-फैजाबाद मार्ग पर रानोपाली नामक भवन में बनी बाबा संगतबक्श समाधि के पूर्वी द्वार से मिला था। इसमें पुष्यमित्र का उल्लेख दो अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठानकर्ता द्विरश्वमेध यानिजः सेनपातेः पुष्यमित्रस्यद) के रूप में किया गया है।

टिप्पणी

उक्त साक्ष्यों से पुष्यमित्र शुंग द्वारा दो अश्वमेध यज्ञ करने का समर्थन मिल जाता है। एन.एन. घोष का विचार है कि इसने एक यज्ञ मगध में राजसत्ता ग्रहण करने के बाद किया तथा दूसरा यवनों को परास्त करने के बाद उस समय किया जब वह वृद्ध हो गया था। क्योंकि इस समय इसकी सेना का नियंत्रण इसका पौत्र वसुमित्र कर रहा था। लेकिन घोष महोदय के तर्क मान्य नहीं हो सकते। मालविकाग्निमित्रम् से पता चलता है कि यवनों के संघर्ष के पहले ही अश्वमेध की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। घोड़ा सिंधु तट पर छोड़े जाने के लगभग एक वर्ष बाद पहुंचा था। अतः पुष्यमित्र द्वारा संपादित पहला यज्ञ वह है जिसका उल्लेख मालविकाग्निमित्रम् में किया गया है। इसने दूसरा यज्ञ अवश्य बाद में वृद्धावस्था में किया, पर इस समय यवनाक्रमण अतीत की घटना बन चुकी थी। महाभाष्य में इसी दूसरे यज्ञ का उल्लेख किया गया है। इस दूसरे यज्ञ में ही पतंजलि ने संभवतया पुरोहित का कार्य किया था।

पुष्यमित्र ने यह यज्ञ कहां किया था, ठीक-ठीक पता नहीं है। धनदेव के लेख में पुष्यमित्र द्वारा दो अश्वमेध यज्ञों के अनुष्ठान का उल्लेख से यह कहा जा सकता है कि इस यज्ञ का संपादन यहीं किया होगा। मालविकाग्निमित्रम् में अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में पुष्यमित्र पौराणिक राजा सगर का उल्लेख करता है, जिसने अंशुमन द्वारा यज्ञाश्व वापस लाने पर यज्ञ किया था। सगर अयोध्या के पौराणिक शासक थे तथा यहीं पर उन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। पुष्यमित्र द्वारा सगर का स्मरण किया जाना इस बात का अप्रत्यक्ष प्रमाण है कि पुष्यमित्र ने भी संभवतः अपना यज्ञ अयोध्या में ही संपन्न किया होगा। के.डी. वाजपेयी की मान्यता है कि पुष्यमित्र द्वारा यह यज्ञ संभवतः प्रयाग में किया गया था।

जहां एक ओर पुष्यमित्र ब्राह्मण धर्म के संरक्षक एवं उद्धारक रूप में विख्यात हैं वहीं बौद्ध ग्रंथ दिव्यावदान तथा तारानाथ के विवरणों में इसका उल्लेख 'बौद्ध धर्म के उत्पीड़क' के रूप में मिलता है। दिव्यावदान के अनुसार इसने 84000 बौद्ध स्तूपों को नष्ट करवा डाला। इसने पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम विहार को नष्ट करने का उद्यम किया पर सफलता न मिली। मध्य भारत के अन्य विहारों को नष्ट करते हुए यह साकल पहुंचा और वहां घोषणा की कि, ''जो मुझे एक श्रमण सिर देगा उसे मैं सौ दीनार दूंगा (ये मे श्रमण शिरो दास्यति तस्याहं दीनार शतं दास्यामि।)।'' तारानाथ के अनुसार पुष्यमित्र ने मध्य देश से जालंधर तक के बौद्ध विहारों को नष्ट किया। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प के अनुसार गोभिमुख्य नामक एक शासक ने पूर्वी किनारे से कश्मीर के द्वार तक शीलसंपन्न बौद्ध भिक्षुओं की हत्या की तथा श्रेष्ठ विहारों को ध्वस्त किया। पी.सी. बागची इस गोभिमुख्य की पहचान सेनापति पुष्यमित्र से करते हैं। क्षेमेंद्रकृत अवदान-कल्पलता में भी पुष्यमित्र द्वारा बौद्धों को क्षति पहुंचाने का उल्लेख किया गया है। इन वक्तव्यों को आधार मानते हुए विंसेंट स्मिथ, एन.एन. घोष, एन.जी. मजूमदार, सुधार चट्टोपाध्याय जैसे कुछ विद्वान पुष्यमित्र शुंग को बौद्धविरोधी तथा उसका विनाशक मानते हैं।

किंतु एच.सी. रायचौधरी, आर.एस. त्रिपाठी, राजबली पांडेय, जगन्नाथ, नीलकंठ शास्त्री आदि विद्वान पुष्यमित्र को इन आक्षेपों से मुक्त मानते हैं। इनका कथन है कि बौद्ध

ग्रंथों में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है। पुष्यमित्र ब्राह्मण धर्म का संरक्षक तथा एक उत्साही ब्राह्मण था, किंतु इसके समय जिस प्रकार बौद्ध कला का संवर्द्धन हुआ उससे इसे बौद्ध विरोधी नहीं माना जा सकता। वास्तव में बौद्ध-समर्थक राजवंश के उन्मूलन के कारण बौद्ध लेखकों ने इसे बौद्ध विरोधी के रूप में प्रस्तुत कर दिया। लेकिन गंभीरतापूर्वक विचार करने पर इन विद्वानों के मत निर्मूल साबित हो जाते हैं।

टिप्पणी

यही सही है कि बौद्ध ग्रंथों में बहुत सी काल्पनिक तथा अतिरंजित बातें हैं, पर समूचा का समूचा विवरण अनैतिहासिक तथा कल्पनाजनित नहीं माना जा सकता। पुष्यमित्र ने जिस प्रकार मौर्यवंश को समाप्त कर मगध की गद्दी हासिल की, उससे इसे ब्राह्मण समर्थक होने तथा बौद्ध विरोधी होने में संदेह नहीं रह जाता। यदि यह अहिंसापरक बौद्ध धर्म का समर्थक होता तो शायद इसकी आत्मा इस प्रकार के राजनीतिक अपराध करने की गवाही न देती। पुष्यमित्र चाहता था कि ब्राह्मण जनमत इसके पक्ष में हो। इसके लिए बौद्ध विरोधी रवैया अपनाना युग के अनुरूप था। जहां तक इस युग में बौद्धकृतियों के संवर्द्धन का प्रश्न है, ये कृतियां पुष्यमित्र शुंग के शासन के अंतिम दिनों में अथवा इसके उत्तराधिकारियों के समय बनीं, जब शुंगों में बौद्ध विरोधी भावनाओं के स्थान पर धार्मिक सहिष्णुता की भावना आ गयी थी। हैवेल की मान्यता हे कि भरहुत तथा सांची के तोरणों का निर्माण कम से कम सौ वर्षों में किया गया। अतः बौद्ध विरोधी पुष्यमित्र के बौद्ध होने से इनके निर्माण में तनिक भी बाधा नहीं दिखती। मार्शल के अनुसार तक्षशिला में इस समय बौद्ध स्मारकों के क्षति के प्रमाण उपलब्ध हैं। सांची में महास्तूप की कुछ क्षति हुई थी। जी. आर. शर्मा का विचार है कि दूसरी शती ई. पू. में घोषिताराम विहार को कुछ क्षति पहुंची थी। ऐसा पुष्यमित्र के अत्याचारों के कारण ही हुआ था।

साहित्यिक योगदान–पुष्यमित्र शुंग ने वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के साथ-साथ भाषा एवं साहित्य के संवर्द्धन में भी योगदान दिया। इसकी प्रेरणा से ही संभवतः पतंजलि ने अष्टाध्यायी की व्याख्या के लिए महाभाष्य की रचना की। मनुस्मृति की रचना भी संभवतया इसी समय की गयी जिससे वैदिक व्यवस्था पुनर्स्थापना में सहायता मिली। कुछ लोगों की मान्यता है कि महाभारत के कुछ अंश भी इसी समय तैयार किए गए।

पुष्यमित्र शुंग का मूल्यांकन

पुष्यमित्र शुंग भारत के उन महान शासकों में है, जिनका शासनकाल एक युग प्रवर्त्तक रहा। इसने जिस समय मगध की सत्ता संभाली, वह परवर्ती मौर्य शासकों की अयोग्यता से न केवल अत्यधिक जर्जर हो गया था, प्रत्युत पश्चिमी सीमा पर यवनों के आक्रमणों के खतरों से उसका रहा-सहा अस्तित्व भी संकट में पड़ गया था। किंतु पुष्यमित्र ने बड़ी योग्यता तथा कर्मठता से इन संकटों से मगध साम्राज्य को बचा लिया। एक ओर अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ की हत्या कर मौर्य साम्राज्य को अयोग्य तथा प्रज्ञादुर्बल राजा के हाथ से छुटकारा दिलाया तो दूसरी ओर दुर्मद यवनों को सिंधु तट पर परास्त कर उनके भारतीय अभियान के हौंसले को पस्त कर दिया। विदर्भ के शासक को पराजित कर इसने दरबारी राजनीति समाप्त कर दी। पुष्यमित्र शुंग की ये उपलब्धियां आसाधारण रहीं। इससे मौर्य साम्राज्य के ध्वंसावशेषों पर पुनः एक बार संगठित शुंग साम्राज्य की स्थापना हुई।

टिप्पणी

पुष्यमित्र मात्र विजेता या साम्राज्य निर्माता ही नहीं था। इसने देश को स्वच्छ तथा सुगठित प्रशासन भी दिया। इसके प्रतिनिधि राज्य के विभिन्न भागों में इसकी ओर से शासन संचालन करते हुए दिखते हैं। निरंकुश शासक होते हुए भी इसने प्रजातांत्रिक पद्धति से शासन किया तथा मंत्रिपरिषद को महत्व दिया। जिससे विदेश नीति निर्धारण तथा गंभीर समस्याओं के समाधान में यह सहायता लेता था।

पुष्यमित्र परम धर्मनिष्ठ तथा वैदिक धर्म का अनुयायी था। इसके समय एक बार पुनः वैदिक धर्म में जीवंतता आई। दो बार अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कर इसने एक आदर्श प्रस्तुत किया। कुछ विद्वान इस पर बौद्ध विरोधी होने का दोष मढ़ते हैं तो दूसरे इसे धर्मसहिष्णु मानते हैं। पर वास्तविकता दोनों के बीच में है। इसने जिस प्रकार वैदिक धर्म के उत्थान के लिए कार्य किया उससे स्वाभाविक रूप से बौद्धों को क्षति पहुंची। पर यह कार्य समय एवं युग के अनुरूप था। मौर्य समर्थक बौद्ध तथा उनके केंद्र मठ व विहार इसके उत्कर्ष में बाधक बनकर बराबर षड्यंत्र करते रहते थे। संभवतया इन्होंने पश्चिम में यवनों का भी साथ दिया था। राज्य की सुरक्षा के लिए इन पर नियंत्रण आवश्यक था। इसीलिए पुष्यमित्र ने इन्हें क्षति पहुंचाई तथा इनके केंद्रों को क्षति पहुंचाकर इनकी शक्ति विघटित की। इस प्रकार इसका धर्म विरोध किसी धार्मिक भावना के तहत नहीं, प्रत्युत राजनीतिक कारणों से था। पुष्यमित्र के समय संस्कृत भाषा एवं साहित्य की भी पर्याप्त उन्नति हुई। महाभाष्य, मनुस्मृति तथा महाभारत के कुछ अंश इसके शासनकाल में ही प्रणीत हुए। संभवतः सांची तथा भरहुत के कुछ शिल्प भी इसके समय बनाए गए थे। इस तरह चाहे जिस दृष्टि से देखा जाय, पुष्यमित्र हमें एक आदर्श शासक के रूप में मिलता है।

शासनकाल

कुछ पुराणों के अनुसार पुष्यमित्र ने छत्तीस वर्ष शासन किया। कुछ में यह अवधि साठ वर्ष बतायी गई है। जैन ग्रंथों में इसकी शासनावधि तीस वर्ष अंकित है। एस. चट्टोपाध्याय की मान्यता है कि साठ वर्ष की शासनावधि में वह काल भी सम्मिलित है जब यह मौर्यों का सेनापति था। अतः इसकी शासनावधि मात्र 36 वर्ष ही मानी जानी चाहिए। इसने 185 ई. पू. में मगध की राजगद्दी प्राप्त की थी। अतएव इसका शासन 148 ई. पू. में समाप्त हुआ।

2.3.3 पुष्यमित्र शुंग के उत्तराधिकारी एवं शुंग राजवंश का अंत

पुराणों के अनुसार पुष्यमित्र के बाद इसका ज्येष्ठ पुत्र अग्निमित्र राजा बना। अपने पिता के शासनकाल में यह विदिशा का गवर्नर था। इसके शासनकाल की किसी घटना की जानकारी नहीं है। इसका समय संभवतया भोगविलास में व्यतीत हुआ। इसने कुल आठ वर्ष तक शासन किया। इसके बाद इसका भाई वसुज्येष्ठ गद्दी पर बैठा। कौशाम्बी से प्राप्त एक लेख में ज्येष्ठमित्र का नाम मिलता है। कुछ विद्वान दोनों की अभिन्नता मानते हैं। वसुज्येष्ठ के विषय में भी अधिक ज्ञात नहीं है। पुराणों के अनुसार इसने सात वर्ष शासन

टिप्पणी

किया। वसुज्येष्ठ के बाद वसुमित्र गद्दी पर बैठा। पुराणों में इसे वसुजेष्ठ का पुत्र माना गया है इस स्थिति में यह पुष्यमित्र का प्रपौत्र प्रतीत होता है, पर यह निष्कर्ष मालविकाग्निमित्रम् के विपरीत है, क्योंकि इसमें इसका पुष्यमित्र के पौत्र के रूप में उल्लेख किया है। वसुमित्र के नेतृत्व में ही शुंगों ने यवन सेना को सिंधु तट पर पराजित किया था। लगता है कि अपने पितामह पुष्यमित्र के समय साम्राज्य के उत्तरी पश्चिम सीमा प्रांत का राज्यपाल था, इसीलिए यवनों के प्रतिरोध का दायित्य इसे दिया गया था। यवनों को पराजित करने का गौरवपूर्ण कार्य तो वसुमित्र ने पितामह के शासन काल में किया था। शासन ग्रहण करने के बाद इसने क्या किया, कुछ पता नहीं है। पर हम इतना जानते हैं कि यह अत्यंत विलासप्रिय था। बाण के अनुसार यह नृत्य तथा संगीत का प्रेमी था। एक दिन किसी नृत्य समारोह में मित्रदेव नामक किसी व्यक्ति ने इसकी हत्या कर दी। पुराणों में वसुमित्र का शासनकाल 10 वर्ष बताया गया है। मूल देव ने संभवतया अयोध्या में एक स्वतंत्र राज्य कायम कर लिया। अयोध्या से इसके कुछ सिक्के मिलते हैं।

पुराणों में वसुमित्र के अनन्तर आंध्रक, पुलिंदक, घोष, वज्रमित्र तथा भागवत के नाम मिलते हैं। इनमें भागवत (भागभद्र) को छोड़कर किसी के विषय में कुछ पता नहीं है। भागवत एक शक्तिशाली शासक था। इसने करीबन 32 वर्ष तक शासन किया। इसके शासनकाल में तक्षशिला के यवन शासक एण्तियलक्ड्स का राजदूत हेलियोडोरस भागवत धर्मानुयायी हो गया था तथा विष्णु में अपार भक्ति के कारण उसने इस गरुड़ध्वज की स्थापना करवाई थी। इस लेख में भगवत (भागभद्र) का भी साभार उल्लेख उसने किया है। इस वंश का अंतिम शासक देवभूमि (देवभूमि) था। इसका शासनकाल 10 वर्ष बताया गया है। हर्षचरित के अनुसार यह अत्यंत विलासी था। अंततः इसके अमात्य कण्व वसुदेव ने इसकी हत्या कर राजपद प्राप्त कर लिया। इस प्रकार देवभूति के अंत के साथ-साथ शुंग राजवंश भी समाप्त हो गया। यह घटना अनुमानतया 75 ई.पू. के आसपास की है।

2.3.4 शुंग वंश का महत्व

शुंग काल भारतीय इतिहास में राजनीतिक सांस्कृतिक व कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह युग वैदिक धर्म के अभ्युत्थान तथा ब्राह्मण धर्म एवं संस्कृति के पुनरुत्थान का युग था। इस वंश की स्थापना 184 ई.पू. में पुष्यमित्र शुंग ने की थी। तथा इसका पतन 92 ई.पू. अंतिम सम्राट देवभूति की हत्या के साथ हुआ। शुंग वंश के काल में भारत का न केवल राजनीतिक विघटन होने से बचा वरन ब्राह्मण धर्म ने अपना खोया हुआ वैभव पुनः प्राप्त हुआ। साहित्य के क्षेत्र में पतंजलि का महाभाष्य, वात्स्यायन का कामसूत्र, भास का प्रतिज्ञायौगन्धरायणः महाविभाषाशास्त्र आदि महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई। कलाओं में विदिशा का गरुड़ध्वज, भाषा का चैत्य, नासिक का कार्ले चैत्य आदि ने भारतीय कलाओं को नया आयाम दिया। शुंग कालीन संस्कृति गुप्तकालीन भारतीय संस्कृति की शैशवावस्था थी। के. एम. मुंशी का मत है। ''पुष्यमित्र और उसके उत्तराधिकारियों ने अशोक के पूर्ववर्ती मगध की परम्परा को बढ़ाया।''

टिप्पणी

2.3.5 कण्व

पुराण तथा हर्षचरित के सम्मिलित साक्ष्य से ज्ञात होता है कि अंतिम शुंग शासक देवभूति को अपनी कामुकता के कारण जीवन से हाथ धोना पड़ा था। इस षड्यंत्र का नायक कण्वायन ब्राह्मण वसुदेव था। इन राज्यों में इसे शुंगों का आमात्य माना गया है। कण्वायन वसुदेव ने देवभूति की हत्या किन परिस्थितियों में की थी, स्पष्टतया ज्ञात नहीं है। पुराणकार तथा बाण उसे कामुक कह कर ही चुप हो जाते हैं। कण्व कौन थे तथा इनका कुल क्या था, निश्चित कुछ कहना कठिन है। विष्णु तथा भागवत पुराण में देवभूति की हत्या करने वाले वसुदेव को शुंगों का आमात्य स्वीकार किया गया है। इनमें इनकी जाति का कोई उल्लेख नहीं है। किंतु वायुपुराण में कण्ववंशीय चार शासकों को शुंगों का भृत्य तथा ब्राह्मण माना गया है- (चत्वारः शुंगभृत्यास्ते नृपाः कण्वायना द्विजाः)।

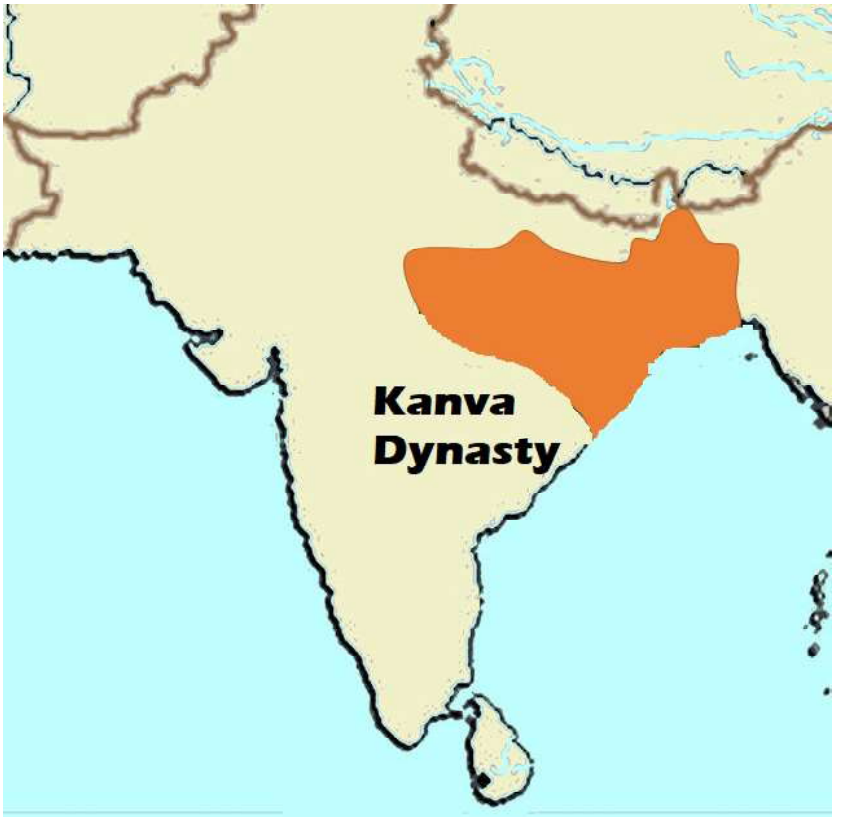

कण्ववंशीय शासकों के विषय में बहुत कम सूचनाएं हैं। पुराणों में मगध पर शासन करने वाले कण्व वंशीय शासकों का नाम मिलता है। इनमें प्रथम शासक वसुदेव था। इसी ने अंतिम शुंग शासक देवभूति की हत्या की थी। पुराणों में इसे देवभूति का आमात्य स्वीकार किया गया है। लगता है कि देवभूति की हत्या किसी सुनियोजित षड्यंत्र के अंतर्गत की गयी थी, जिसमें दरबार का प्रमुख हाथ था। पुराणों में वसुदेव का शासनकाल नौ वर्ष माना गया है। इसके बाद भूमित्र (भूमिमित्र) ने राज्य ग्रहण किया। मित्र शासकों की उपलब्ध बहुसंख्यक मुद्राओं में जेठमित्र, अग्निमित्र, भद्रघोष तथा भूमिमित्र के नाम भी मिलते हैं। इनमें भूमिमित्र नामधारी सिक्कों का संबंध कण्ववंशीय भूमिमित्र से स्थापित करने का प्रयास किया गया है, किंतु इसे अभी अंतिम रूप से मान्यता नहीं मिली है। पुराणों के अनुसार भूमित्र ने चौदह वर्ष शासन किया। डॉ. त्रिपाठी के शब्दों में कहा जा

सकता है कि ''इन राजाओं ने किसी क्षेत्र में विशेष कीर्ति अर्जित नहीं की। अंतिम शासक सुशर्मा की हत्या आंध्र नरेश सिमुक ने कर दी और विदिशा के आसपास के राज्य को विजेता के राज्यों में मिला लिया।'' आंध्रवंश ने कण्वों को व उनके वंश को समाप्त कर दिया। कण्व राजाओं ने 75 ई.पू. से 80 ईसा तक राज्य किया।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. शुंग वंश का सबसे महत्वपूर्ण शासक कौन है?

(क) अग्निमित्र (ख) ज्येष्ठमित्र

(ग) पुष्यमित्र शुंग (घ) इनमें से कोई नहीं

4. कण्व वंश के प्रथम शासक का क्या नाम है?

(क) कण्वायन वसुदेव (ख) सुशर्मा

(ग) भूमित्र (घ) इनमें से कोई नहीं

2.4 भारत में इंडो–ग्रीक और पार्थियन

इस अध्याय में हम इंडो-ग्रीक तथा पार्थियन का अध्ययन करेंगे।

2.4.1 इंडो–ग्रीक

भारत प्राचीन काल से ही अपनी समृद्धता, सम्पन्नता व गौरव के लिए विख्यात रहा है। इसी कारण मौर्य वंश के पतनोपरांत भारत पर यवनों ने आक्रमण किया। डॉ. डी.सी. सरकार का मत है- जिन तत्वों के कारण साम्राज्यवादी मौर्यों के वंश का नाश हुआ उनमें से एक तत्व यह भी था कि भारत के उत्तरी-पश्चिमी द्वार से यवन आक्रमणकारियों का उदय हो चुका था।

भारत से लौटने के पश्चात बेबीलोन में 323 ई.पू. में सिकन्दर की मृत्यु हो गई। सिकंदर अपनी मृत्यु के समय एक विशाल साम्राज्य अपने पीछे छोड़ कर गया था। जिसमें मेसोपोटामिया, फिनीशिया, जुदेआ, गाझा, ईरान, मिस्र, मेसीडोनिया, सीरिया, बैक्ट्रिया, पार्थिया, अफगानिस्तान एवं उत्तर–पश्चिम भारत (पंजाब) के कुछ भाग शामिल थे। सिकंदर की सेना में कई सेनापति थे जो सिकंदर की मृत्यु के पश्चात उसके द्वारा विजित इन क्षेत्रों के बंटवारे को लेकर आपस में लड़ते हैं। सिकंदर की सेना के दो प्रभावशाली सैनापति थे सैल्यूकस निकेटर और ऐन्टिगोनस। ये दोनों सेनापति मिलकर सिकंदर के बाकी के सेनापतियों से युद्ध करते हैं तथा उनसे उनके (सिकंदर द्वारा विजित) सभी छोटे–बड़े राज्य छीन लेते हैं। इस प्रकार सिकंदर के द्वारा विजित सभी क्षेत्रों पर सैल्यूकस निकेटर तथा ऐन्टिगोनस दोनों सेनापतियों का अधिकार हो जाता है। कुछ समय तक दोनों ने मिलकर इन राज्यों पर शासन किया। लेकिन 301 ई.पू. में दोनों के मध्य ईम्पस का युद्ध होता है जिसमे ऐन्टिगोनस की पराजय होती है तथा सेल्यूकस सभी क्षेत्रों पर अधिकार कर लेता है। हालांकि इससे पहले 305–304 ई.पू.

टिप्पणी

में सैल्यूकस भारत में सिकन्दर द्वारा जीते गए क्षेत्रों पर पुनः अधिकार करने के उद्देश्य से आक्रमण करता है लेकिन यहां चन्द्रगुप्त मौर्य की विशाल सेना के हाथों उसे पराजित होना पड़ता है। सैल्यूकस को चन्द्रगुप्त मौर्य से संधि करनी पड़ती है जिसके परिणामस्वरूप उसे काबुल, कंधार तथा बलूचिस्तान के कुछ क्षेत्र चन्द्रगुप्त मौर्य को देने पड़ते हैं। इसके साथ ही वह अपनी पुत्री हेलेना का विवाह भी चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ कर देता है तथा अपना एक राजदूत मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रखता है।

एण्टियोकस–I तथा फिलाडेल्फस (टॉलेमी–II)

बिन्दुसार मौर्य के समय में सीरिया और मिस्र स्वतंत्र हो गए थे। उस समय मिस्र पर फिलाडेल्फस (टॉलेमी–II) का तथा सीरिया पर एण्टियोकस–I (सेल्यूकस का पुत्र) का अधिकार हो गया था। हालांकि इन शासकों ने सिकन्दर के शासन से अपने आप को पूरी तरह से अलग नहीं किया था तथा इन्होने सिकन्दर के उत्तराधिकारी के रूप में शासन किया। एण्टियोकस–I (293 ई.पू.) ने एशिया माइनर में रहने वाली गाल जनजाति (एक बर्बर जनजाति) को पराजित कर अपने राज्य के लोगों की उनसे रक्षा की थी तथा उसने सोटर या सैवियर (बचाने वाला) की उपाधि धारण की। बिन्दुसार मौर्य के सीरिया के तत्कालीन शासक एण्टियोकस–I के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे तथा वह अक्सर पत्र व्यवहार द्वारा एण्टियोकस–I से सूखी अंजीर तथा मीठी शराब की मांग करता था। सीरियाई शासक एण्टियोकस–I ने अपने एक राजदूत डायमेकस को बिन्दुसार मौर्य के दरबार में भेजा था। मिश्र के तत्कालीन शासक फिलाडैल्फस (टॉलेमी–II) ने भी अपना एक राजदूत डायोनिसस को बिन्दुसार के दरबार में भेजा था।

बैक्ट्रिया तथा पार्थिया

कम से कम 35 इंडो–ग्रीक शासक हुए, इनकी दो शाखायें थीं –

1. डेमेट्रियस शाखा तथा
2. यूक्रेटाइड्स शाखा।

बैक्ट्रिया (बल्ख) हिन्दुकुश पर्वत के उत्तर तथा पामीर के पश्चिम में स्थित क्षेत्र को कहा जाता था जिसमें वर्तमान का अफगानिस्तान, ताजिकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान का कुछ क्षेत्र सम्मलित था। इतिहासकार स्ट्रैबो के अनुसार बैक्ट्रिया को 'आर्यना का गौरव' कहा

जाता था। बैक्ट्रिया में सीथियन जनजाति (शक या बर्बर) के लोग रहते थे इसके अलावा यहां यूनानी तथा ईरानी लोग मिश्रित रूप से रहते थे।

टिप्पणी

266 ई.पू. में एण्टियोकस–II (सेल्यूकस का पौत्र) एण्टियोकस–I का उत्तराधिकारी शासक बनता है। लेकिन वह एक अयोग्य शासक था वह शराब और अय्याशी में डूबा रहता था। उसने थियस (देवता) की उपाधि भी धारण की थी। यही कारण था कि एण्टियोकस–II के समय में लगभग 250 ई.पू. में विद्रोह होता है और बैक्ट्रिया तथा पार्थिया स्वतंत्र (सिकन्दर के साम्राज्य से) हो जाते हैं। इस विद्रोह के फलस्वरूप बैक्ट्रिया में डायोडोटस–I तथा पर्शिया में आरेक्सस ने स्वंय को स्वतंत्र सम्राट घोषित कर दिया। डायोटोडस–I, एण्टियोकस–I के बैक्ट्रिया प्रान्त का गवर्नर था तथा वह बैक्ट्रिया का सबसे प्रभावशाली नेता था। इस समय डायोडोटस–I के पास एक विशाल सेना थी और वहां की जनता का भी सहयोग था इस मौके का फायदा उठाकर उसने विद्रोह कर दिया और बैक्ट्रिया को सिकंदर के साम्राज्य से स्वतंत्र करवाकर वहां का शासक बन गया। वह पार्थिया को भी अपने अधिकार में करना चाहता था। दोनों राज्यों में कई बार झड़प होती हैं लेकिन डायोडोटस–I अपने मकसद में कभी कामयाब नहीं हो पाता है क्योंकि पर्शिया पर आरेक्सस का अधिकार था उसके पास भी डायोडोटस–I का मुकाबला करने के लिए बहुत बड़ी सेना थी।

1. यूथीडेमस–I

डायोडोटस–I के पश्चात् डायोडोटस–II ने बैक्ट्रिया पर शासन किया। हालांकि डायोडोटस–I का शासन अभी सैल्यूकस नीतियों के अधीन था। लेकिन डायोडोटस–II के समय एण्टियोकस–III (सीरिया का शासक तथा सेल्यूकस का उत्तराधिकारी) ने उसे पूरी तरह स्वतंत्रता दे दी थी। डायोडोटस–II एक कुशल प्रशासक था उसने अपने पिता डायोडोटस–I की पार्थिया विरोधी नीतियों में बदलाव किया तथा पार्थियन राज्य से संधि कर ली। लेकिन बाद में एक बहुत बड़ा उलटफेर होता है और डायोडोटस–II की हत्या करके यूथीडेमस–I नामक एक व्यक्ति बैक्ट्रिया पर अधिकार कर लेता है। 212 ई.पू. तक डायोडोटस वंश का शासन पूरी तरह समाप्त हो जाता है।

एण्टियोकस–III सीरिया का एक शक्तिशाली शासक था। एण्टियोकस–III अपना राज्य विस्तार करने के लिए हिंदुकुश पर्वत पार करके काबुल घाटी होते हुए भारत पहुंचता है। उस समय काबुल पर राजा सोफागसैनस (सुभगसैन) का शासन था जो मौर्य सम्राट अशोक के वंश का था। यूनानी लेखक पोलिबियस ने सुभगसेन को 'भारतीयों का राजा' भी कहा है। एण्टियोकस–III की विशाल सेना देखकर सुभगसैन ने सांकेतिक समर्पण कर दिया तथा उसने एण्टियोकस–III को उपहारस्वरूप हाथी और मुद्राएं दीं। इसके पश्चात् एण्टियोकस–III काबुल से ही वापिस लौट जाता है। एण्टियोकस–III को 'एण्टियोकस महान' भी कहा जाता था। वह बैक्ट्रिया तथा पार्थिया पर फिर से अधिकार स्थापित करना चाहता था। यही कारण था कि दोनों की सेनाओं के मध्य 223 ई.पू. से 187 ईपू. तक बार–बार युद्ध हुए। लेकिन आखिर में यूथीडेमस–I अपने एक दूत टैलियस को एण्टियोकस–III के पास शांति वार्ता के लिए भेजता है जिसे एण्टियोकस–III अस्वीकार कर देता है।

टिप्पणी

यूथीडेमस–I का एक पुत्र था डैमेट्रियस, जिसे इतिहास में डैमेट्रियस–I के नाम से भी जानते हैं। डेमैट्रियस अपने पिता यूथीडेमस–I को समझाता है कि वह एण्टियोकस–III से संधि वार्ता करने के लिए जायेगा। डैमैट्रियस प्रभावशाली व्यक्तित्व का था। एण्टियोकस–III डैमेट्रियस से इतना प्रभावित होता है कि वह अपनी पुत्री का विवाह उससे करा देता है।

यूथीडेमस का साम्राज्य हिन्दूकुश तक ही सीमित था। किसी भी लेखक ने यवनों की भारतीय विजय के प्रसंग में उसका नामोल्लेख नहीं किया है। वस्तुतः इन्डो–ग्रीक की भारतीय विजय का इतिहास यूथीडेमस के शक्तिशाली पुत्र डेमेट्रियस के समय से ही प्रारम्भ होता है।

2. डेमेट्रियस

190 ई.पू. के लगभग यूथीडेमस की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र डेमेट्रियस बैक्ट्रिया के यवन साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। वह एक महान् विजेता तथा महत्वाकांक्षी शासक था। उसने एक विशाल सेना के साथ हिन्दूकुश की पहाड़ियों को पार कर सिन्ध तथा पंजाब के प्रदेशों पर विजय प्राप्त की।

डेमेट्रियस का भारत के साथ सम्बन्ध कुछ साहित्यिक तथा पुरातत्वीय प्रमाणों द्वारा भी सिद्ध होता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि भारत पर यवनों का प्रथम आक्रमण पुष्यमित्र शुंग के समय में हुआ था और इस प्रकार आक्रमण का नेता डेमेट्रियस ही था।

इसका उल्लेख अनेक भारतीय ग्रन्थों– पतंजलि के महाभाष्य, गार्गीसंहिता, मालविकाग्निमित्र आदि में हुआ है। इन ग्रन्थों के अनुसार यवन साकेत, माध्यमिका (चित्तौड़) पञ्चाल तथा मथुरा को जीतते हुये पाटलिपुत्र तक बढ़ आये थे। परन्तु वे मध्यप्रदेश में अधिक दिनों तक न ठहर सके और उन्हें शीघ्र ही देश छोड़ना पड़ा।

इसके दो कारण थेः

1. गार्गी–संहिता के अनुसार उनमें आपस में ही घोर युद्ध छिड़ा।
2. पुष्यमित्र शुंग के भीषण प्रतिरोध में भी यवनों के पैर उखड़ गये। उसके पौत्र वसुमित्र ने यवनों को सिंधु नदी के दाहिने किनारे पर पराजित कर दिया।

यद्यपि यवन मध्यप्रदेश पर अधिकार नहीं कर सके तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमी पंजाब तथा सिंधु की निचली घाटी पर डेमेट्रियस ने अपना शासन कायम कर लिया। इन प्रदेशों से उसकी ताम्र मुद्रायें मिलती हैं।

इन पर यूनानी तथा खरोष्ठी लिपियों में लेख (महारजस अपरजितस दिमे त्रियस) उत्कीर्ण हैं। बेसनगर से प्राप्त एक मुद्रा पर 'तिमित्र' उत्कीर्ण मिलता है। क्रमदीश्वर के व्याकरण में 'दत्तमित्री' नामक एक नगर का उल्लेख मिलता है जो सौवीर (निचली सिन्धु घाटी) प्रदेश में स्थित था।

सम्भवतः इसकी स्थापना डेमेट्रियस द्वारा की गई थी। ऐसा लगता है कि उसने शाकल पर पुनः अधिकार कर लिया। खारवेल के हाथीगुंफा अभिलेख में 'दिमिति'

नामक किसी यवन राजा का उल्लेख मिलता है। काशी प्रसाद जायसवाल ने उसकी पहचान डेमेट्रियस से की है, परन्तु यह संदिग्ध है। इस प्रकार डेमेट्रियस ने आक्सस नदी से सिंधु नदी तक के प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया था।

टिप्पणी

3. यूक्रेटाइड्ज

जिस समय डेमेट्रियस अपनी भारतीय विजयों में फंसा हुआ था उसी समय यूक्रेटाइड्ज नामक एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति ने उसके गृह–राज्य बैक्ट्रिया में विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया तथा 171 ई.पू. के लगभग बैक्ट्रिया डेमेट्रियस के अधिकार से जाता रहा। डेमेट्रियस एक बड़ी सेना के साथ बैक्ट्रिया पहुंचा, परन्तु चार महीने के घेरे के बाद भी उसे सफलता नहीं मिली।

डेमेट्रियस के अन्तिम दिनों के विषय में हमें ज्ञात नहीं है। या तो वह यूक्रेटाइड्ज के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया अथवा विद्रोह का दमन करने में असफल होने पर उसने अपने अन्तिम दिन भारत में ही व्यतीत किये। स्ट्रेबो के विवरण से हमें ज्ञात होता है कि यूक्रेटाइड्ज ने स्वयं को बैक्ट्रिया से 1,000 नगरों का शासक बना लिया।

जस्टिन के अनुसार उसने भारत (सिंध प्रदेश) पर भी विजय प्राप्त की। ऐसा प्रतीत होता है कि यूक्रेटाइड्ज ने डेमेट्रियस की मृत्यु के पश्चात उसके कुछ भारतीय प्रांतों के भी जीत लिया। उसके सिक्के पश्चिमी पंजाब से पाये गये हैं।

उनमें यूनानी तथा खरोष्ठी लिपियों में लेख मिलते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि ये सिक्के भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में चलाने के उद्देश्य से ही ढलवाये गये थे। स्ट्रैबो के अनुसार यूक्रेटाइड्ज झेलम नदी तक बढ़ आया था।

यूक्रेटाइड्ज की भारतीय विजयों के फलस्वरूप पश्चिमोत्तर भारत में दो यवन–राज्य स्थापित हो गये:

1. यूक्रेटाइड्ज तथा उसके वंशजों का राज्य– यह बैक्ट्रिया से झेलम नदी तक फैला था तथा इसकी राजधानी तक्षशिला में थी।
2. यूथीडेमस के वंशजों का राज्य– यह झेलम से मथुरा तक फैला था तथा इसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) में थी।

जस्टिन के अनुसार जब यूक्रेटाइड्ज अपनी भारतीय विजयों के पश्चात् बैक्ट्रिया जा रहा था तो मार्ग में अपने पुत्र द्वारा मार डाला गया। यह हत्यारा सम्भवतः हेलियोक्लीज था। वह बैक्ट्रिया में यवनों का अंतिम शासक था। 125 ई.पू. के लगभग बैक्ट्रिया से यवन–शासन समाप्त हो गया तथा वहां शकों का राज्य स्थापित हो गया। हेलियोक्लीज काबुल घाटी तथा सिंध स्थित अपने राज्य में वापस लौट आया।

बैक्ट्रिया के हाथ से निकल जाने के पश्चात् यवनों का राज्य अब केवल मध्य एवं दक्षिण अफगानिस्तान तथा पश्चिमोत्तर भारत तक ही सीमित रह गया। इन भागों में डेमेट्रियस तथा यूक्रेटाइड्ज दोनों के वंश के अनेक राजाओं ने शासन किया।

टिप्पणी

सिक्कों से इन दोनों कुलों के कम से कम 35 राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं जिन्होंने द्वितीय शताब्दी ई.पू. के मध्य से लेकर लगभग 100 वर्षों तक (हिन्द–पह्लव तथा शकों के आगमन तक) इन प्रदेशों में राज्य किया। उनका शासन काल परस्पर संघर्ष एवं विद्वेष का काल है।

4. मिनांडर

इन्डो–ग्रीक शासकों में मिनांडर का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। क्लासिकल लेखकों ने उसके साथ–साथ एपोलोडोटस का नामोल्लेख किया है। संभवतः वह डेमेट्रियस का छोटा भाई था और उसी के साथ भारतीय युद्धों में भाग लिया था।

संभव है उसने डेमेट्रियस के पश्चात् कुछ समय तक शासन भी किया हो परन्तु उसके राज्य–काल के विषय में हमें अधिक ज्ञात नहीं है। अनेक क्लासिकल लेखकों–स्ट्रेबो, जस्टिन, प्लूटार्क आदि ने मिनांडर की गणना महान् यवन विजेताओं में की है।

उसका एक लेख, शिवकोट (बजैर–घाटी) की धातुगर्भ मंजूषा के ऊपर अंकित प्राप्त हुआ है। इससे सूचित होता है कि बजौर क्षेत्र (पेशावर) उसके अधिकार में था। हाल ही में उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले में स्थित रेह नामक स्थान से एक अन्य लेख मिला है।

इसे जी. आर. शर्मा ने मिनांडर का मानते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि उसने इस भाग को जीता था। किन्तु यह पहचान संदिग्ध है। पेरीप्लस के अनुसार मिनांडर के सिक्के भड़ौच में चलते थे। स्ट्रेबो लिखता है कि उसने सिकन्दर से भी अधिक प्रदेश जीते थे तथा हाइफेनिस (व्यास) नदी पारकर इसेमस (कालिन्दी अथवा यमुना नदी जिसे प्राचीन साहित्य में इक्षुमती कहा गया है) तक पहुंच गया था।

मथुरा से उसके तथा उसके पुत्र स्ट्रेटो प्रथम के सिक्के मिले हैं। इस प्रकार मिनांडर एक विस्तृत साम्राज्य का शासक बना जो झेलम से मथुरा तक विस्तृत था तथा शाकल (स्यालकोट) उसकी राजधानी थी। मिलिन्दपण्हो में इस नगर का सुन्दर वर्णन मिलता है। तदनुसार 'अनेक आराम, उद्यान तथा तड़ागों से यह सुशोभित था। नगर के चारों ओर साकार एवं परिखा (खाई) बनवाई गयी थी। नगर के भीतर सुन्दर सड़कें, स्वच्छ नालियां तथा भव्य चौराहे बनाये गये थे।'

कुछ विद्वानों का मत है कि मिनांडर ने यूक्रेटाइड्ज के वंशजों से भी कुछ प्रदेशों को छीन लिया था क्योंकि काबुल घाटी तथा सिंध क्षेत्र से उसकी मुद्रायें मिलती हैं। उसके सिक्कों का विस्तार गुजरात, काठियावाड़ तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक था।

उसके पांच प्रकार के चांदी के सिक्के मिलते है जिनकी तौल 32–35 रत्ती के बीच है। मुख भाग पर मुकुट धारण किये हुए राजा का सिर तथा यूनानी विरुद के साथ उसका नाम तथा पृष्ठ भाग पर खरोष्ठी लिपि में मुद्रालेख 'महरजस पतरस मिलिद्रस' उत्कीर्ण है।

मिनांडर के कुछ तांबे के सिक्के भी मिलते हैं जिनपर यूनानी तथा प्राकृत भाषा में लेख जैसे– महरजस ध्री मिकस मिनिद्रस, बेसिलियस सोटेरस मिनिन्द्राय, बेसिलियम

डिकेआय मिनिन्द्राय, आदि अंकित हैं। 'ध्रमिकस' उपाधि से सिद्ध होता है कि वह एक धर्मनिष्ठ बौद्ध था।

टिप्पणी

प्लूटार्क के अनुसार वह एक न्यायप्रिय शासक था तथा अपनी प्रजा में बहुत अधिक लोकप्रिय था। वह अपने विशाल साम्राज्य का शासन राज्यपालों की सहायता से चलाता था। शिवकोट धातुगर्भ मंजूषा लेख में वियकमित्र तथा विजयमित्र नामक उसके राज्यपालों का उल्लेख मिलता है जो स्वातघाटी में शासन करते थे।

बौद्ध जनश्रुति में मिनांडर को बौद्ध धर्म का संरक्षक बताया गया है। क्षेमेन्द्रकृत अवदानकल्पलता से पता चलता है कि मिनांडर ने अनेक स्तूपों का निर्माण करवाया था। मिनांडर का समीकरण मिलिन्द से किया जाता है जिनका उल्लेख नागसेन ने 'मिलिन्दपण्हो' (मिलिन्द–प्रश्न) में किया है।

इस ग्रन्थ में महान् बौद्ध भिक्षु नागसेन राजा मिलिन्द के अनेक गूढ़ दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर देते हैं तथा अन्ततोगत्वा वह उनके प्रभाव से बौद्ध हो जाता है। यह कहा गया है कि मिनांडर अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन त्याग कर न केवल भिक्षु अपितु 'अर्हत्' बन गया।

मिलिन्दपण्हो के अनुसार मिनांडर का जन्म अलसन्द (काबुल के समीप सिकंदरिया) द्वीप के 'कालसीग्राम' में हुआ था। प्लूटार्क लिखता है कि उसकी मृत्यु में बाद अनेक नगरों में उसकी धातुओं (भस्मावशेष) के लिए संघर्ष हुए तथा प्रत्येक नगर में उनके ऊपर स्तूपों का निर्माण हुआ।

यह विवरण हमें बुद्ध के भस्मावशेषों के विवरण की याद दिलाता है। टार्न का विचार है कि बौद्ध मत की ओर उसका झुकाव राजनीतिक कारणों से था क्योंकि उसकी जनसंख्या में बौद्धों का एक बड़ा भाग सम्मिलित था।

जी.आर. शर्मा का विचार है कि मिनांडर के ही नाम का उल्लेख रामायण में कर्दम, भागवत पुराण में 'पुष्पनिद्र', विष्णु पुराण में 'अलिसन्निभ', दिव्यावदान में 'यक्षकृमिश', आर्यमंजुश्रीमूलकल्प में 'महायक्ष' तथा तारानाथ के विवरण में 'मिनार' रूप में हुआ है।

इससे उसकी लोकप्रियता सूचित होती है। इस प्रकार मिनांडर एक शक्तिशाली एवं न्यायप्रिय शासक था। एक साधारण स्थिति से ऊपर उठकर अपनी योग्यता के बल पर वह एक विशाल साम्राज्य का स्वामी बन बैठा।

मिलिन्दपण्हो से पता चलता है कि वह उच्चकोटि का विद्वान तथा विद्या और कला का प्रेमी था। मिलिन्दपण्हो के अनुसार उसे इतिहास, पुराण, ज्योतिष, न्याय–वैशेषिक, दर्शन, तर्कशास्त्र, सांख्य, योग, संगीत, गणित, काव्य आदि विभिन्न विद्याओं का अच्छा ज्ञान था।

उसकी राजधानी शाकल तत्कालीन भारत का प्रमुख सांस्कृतिक एवं व्यापारिक स्थल बन गयी थी। मिलिन्दपण्हो से पता चलता है कि यहां के बाजारों में बहुमूल्य वस्तुएं बिक्री के निमित्त सजी रहती थीं। नगर के भीतर हजारों की संख्या में भव्य एवं उत्तुंग प्रासाद शोभायमान थे। यहां के नागरिकों के पास भारी मात्रा में कार्षापण, स्वर्ण तथा रजत मुद्रायें विद्यमान थीं। इसकी शोभा को देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि– 'साक्षात् स्वर्गलोक ही पृथ्वी पर उतर आया है।'

मिनांडर यद्यपि एक विदेशी शासक था तथापि उसने भारतीय धर्म को अपनाया तथा उसमें अपने लिये अत्यन्त आदरणीय स्थान बना लिया। निःसन्देह भारत में उसका स्थान सिकन्दर की अपेक्षा कहीं अधिक ऊंचा है।

टिप्पणी

मिनांडर के उत्तराधिकारी

मिनांडर के अन्तिम दिनों के विषय में हमें ज्ञात नहीं है। उसकी मृत्यु के समय उसका पुत्र स्ट्रेटो प्रथम अवयस्क था। अतः उसकी पत्नी ऐगथोक्लिया ने शासन संभाला। उसने अपने पुत्र के साथ मिलकर सिक्के प्रचलित करवाये थे।

स्ट्रेटो प्रथम का पुत्र तथा उत्तराधिकारी स्ट्रेटो द्वितीय बना। इन दोनों का काल यूथीडेमस साम्राज्य के पतन का काल रहा। प्रथम शताब्दी ई.पू. के मध्य तक आते–आते पूर्वी पंजाब स्थित उनका राज्य शकों के अधिकार में चला गया। इस प्रकार यूथीडेमस वंश का अंत हुआ।

यूक्रेटाइड्ज के उत्तराधिकारी

यूथीडेमस वंश के विनाश के पश्चात् यूक्रेटाइड्ज के वंशज शक्तिशाली हुए। इस कुल के दो राजाओं के नाम मिलते हैं– एन्तियालकीड्स तथा हर्मियस। एन्तियालकीड्स तक्षशिला का शासक था जिसने शुंगनरेश भागमद्र के विदिशा स्थित दरबार में हेलियोडोरस नामक अपना एक राजदूत भेजा था।

उसका उल्लेख बेसनगर के गरुड़ स्तम्भ–लेख में हुआ है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि अब यवनों की शक्ति काफी क्षीण हो गयी थी और वे आक्रमण का मार्ग छोड़कर भारतीय नरेशों के साथ मैत्री–सम्बन्ध बनाये रखने के इच्छुक थे।

हर्मियस यूक्रेटाइड्ज वंश का अन्तिम हिन्द–यवन शासक था। उसका राज्य ऊपरी काबुल घाटी तक सीमित था। उसके कुछ सिक्कों के ऊपर कुषाण वंश के प्रथम शासक कुजुल कडफिसेस का नाम उत्कीर्ण है। यह इस बात का सूचक है कि बैक्ट्रिया में कुजुल उसकी अधीनता स्वीकार करता था।

वह अपने राज्य को अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रख सका तथा प्रथम शताब्दी ई.पू. के द्वितीयार्ध में गांधार क्षेत्र के पार्थियनों ने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। हर्मियस ने 50 ई.पू. से 30 ई.पू. के लगभग तक शासन किया। उसके साथ ही पश्चिमोत्तर भारत से यवनों का लगभग दो सौ वर्षों का शासन समाप्त हुआ।

टिप्पणी

यूनानी संपर्क का भारत पर प्रभाव

बख्त्री–यवनों का पश्चिमोत्तर भारत पर शासन सिकन्दर की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस समय भारत तथा यूनान के सांस्कृतिक सम्पर्क बहुत अधिक बढ़ गये। एक ओर जहां यूनानी भारतीय धर्म से प्रभावित हुये वहीं दूसरी ओर भारतीयों ने कला, विज्ञान, मुद्रा, ज्योतिष आदि के विषय में यूनानी संस्कृति से बहुत कुछ सीखा।

यवन सम्राट मिनांडर नागसेन के प्रभाव से बौद्ध हो गया तथा वह अर्हत् पद पर पहुंच गया। हेलियोडोरस ने भागवत धर्म ग्रहण कर लिया तथा विष्णु मन्दिर के सामने (विदिशा में) विष्णुध्वज की स्थापना की। इसी प्रकार कुछ अन्य यवनों ने भी भारतीय धर्म, रहन–सहन आदि अपना लिया था।

दूसरी ओर भारत भी यवन प्रभाव से अछूता न रहा। कला के क्षेत्र में स्पष्टतः यूनानी प्रभाव देखा जा सकता है। कला की गांधार शैली की नींव इसी युग में पड़ी थी। इसमें भारतीय विषयों को यूनानी ढंग से व्यक्त किया गया।

सांचे में ढली मुद्राओं के निर्माण की विधि भारतीयों ने यूनानियों से ही ग्रहण की। यूनानी प्रभाव से भारतीय मुद्रायें सुडौल, लेखयुक्त तथा कलात्मक होने लगीं। कुणिन्द तथा औदुम्बर गणराज्यों के सिक्के यवन नरेश अपोलोडोटस के सिक्कों के अनुकरण पर ढाले गये हैं।

इण्डो–ग्रीक शासकों ने ही सर्वप्रथम अपने सिक्कों पर लेख उत्कीर्ण करवाया था। पूर्व मध्य काल के लेखों में सिक्के के लिये 'द्रम्म' शब्द आया है। यह यूनानी भाषा से लिया गया है। ज्योतिष के क्षेत्र में भी भारत ने यूनान से प्रेरणा ली। बृहत्संहिता में कहा गया है कि– 'यवन बर्बर हैं, पर ज्योतिष का जन्म उनसे हुआ है, अतः वे ऋषियों की भांति सम्मान–योग्य हैं।'

ज्योतिष

भारतीय ग्रन्थों में ज्योतिष के पांच सिद्धांत मिलते हैं–

(1) पैतामह,

(2) वशिष्ट,

(3) सूर्य,

(4) पोलिश और

(5) रोमक।

इनमें अन्तिम दो का उदय यवन–सम्पर्क से ही बताया जाता है। पोलिश सिद्धांत सिकंदरिया के हाल की खोजों पर आधारित लगता है। रोमक के सम्बन्ध में वाराहमिहिर ने जिन नक्षत्रों के नाम गिनाये हैं वे यूनान से लिये गये प्रतीत होते हैं।

वाराहमिहिर के 'होरा' विषयक ज्ञान, जिसका सम्बन्ध कुण्डलियों से है, के ऊपर यूनानी खगोलशास्त्र का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। सम्भवतः इस विद्या का जन्म बेबीलोन में हुआ था और यहां से यह यूनान एवं अन्य देशों में पहुंची।

टिप्पणी

भारतीय ज्योतिष में प्रचलित अनेक शब्द जैसे– केन्द्र, लिप्त, द्रक्कन आदि यूनानी भाषा से ही लिये गये प्रतीत होते हैं। टार्न के अनुसार निश्चित तिथि से काल–गणना की प्रथा, संवतों का प्रयोग तथा सप्ताह का सात दिनों में विभाजन आदि भारतीयों ने यूनानियों से ही सीखा।

चिकित्सा

इसी प्रकार यूनानी चिकित्सक हिप्पोक्रेटिज तथा भारतीय चिकित्साशास्त्री चरक के सिद्धांतों में अनेक समानतायें दिखाई देती हैं। दोनों के ग्रन्थों में चिकित्सा–शास्त्र के विद्यार्थी के लिये जो प्रतिज्ञा बताई गयी है वह एक समान है।

दर्शन

दर्शन के क्षेत्र में भी भारतीयों तथा यूनानियों में अनेक समानतायें हैं। बेबर आदि कुछ विद्वान भारतीय नाटकों का उद्‌भव भी यूनानी नाटकों से ही बताते हैं। संस्कृत नाटकों में पर्दे के लिये 'यवनिका' शब्द आया है जो यूनानी भाषा से लिया गया प्रतीत होता है।

नाटक

कुछ विद्वान 'मृच्छकटिक' की तुलना 'न्यू एटिक कामेडी' से करते हैं। किन्तु यह ठीक नहीं है। वस्तुतः भारतीय नाटकों का उद्‌भव 'नट' (नृत्य) में ढूंढा जाना चाहिए। नृत्य में प्रयुक्त मुद्रायें ही नाटकों में प्रयुक्त होती थीं।

भारतीय नाटकों को कहीं से कोई प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी। इसका मूल यम–यमी संवाद में देखा जा सकता है। संस्कृत शब्दकोश में स्याही, कलम, फलक आदि के लिये जो शब्द मिलते हैं वे यूनानी भाषा से लिये गये प्रतीत होते हैं।

प्रायः यह कहा जाता है कि भारत पर यूनानी सभ्यता का प्रभाव जमाने का जो कार्य सिकंदर नहीं कर सका था वह भारत में इंडो–ग्रीक साम्राज्य स्थापित होने से पूर्ण हो गया। इस पक्ष पर और साथ ही तथाकथित गांधार शैली पर ग्रीक प्रभाव के विषय में विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं।

1. बी. ए. स्मिथ एवं डब्लयू. टार्न जैसे इतिहासकारों ने भारत पर यूनानी प्रभाव को नगण्य माना है। उनके अनुसार देश के अंदरूनी भागों पर डेमेट्रियस, यूक्रेटाइड्स, मिनांडर, आदि के आक्रमण अल्पकालिक थे और उन्होंने भारत की मूल संस्कृ ति पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ा। उनके अनुसार भारतीय, सिकंदर, मिनांडर आदि से, विजेताओं के रूप में प्रभावित थे। वे इन्हें संस्कृति का दूत नहीं समझते थे। यद्यपि ये विजेता उनके लिए भय के पात्र अवश्य थे, किन्तु उनके लिए वे अनुकरणीय कदापि नहीं थे। इनके अनुसार यवन शासकों के सिक्कों पर जहां एक ओर ग्रीक कथाएं अंकित हैं वही दूसरी ओर बढ़ती हुई संख्या में भारतीय कथाओं की संख्या यह प्रदर्शित करती है कि यूनानी भाषा भारत के लोगों की समझ में नहीं आती थी।

टिप्पणी

2. किन्तु वुडकाक जैसे इतिहासकारों का कथन है कि ग्रीक विजेताओं ने कई क्षेत्रों में भारत पर अपनी छाप छोड़ी थी। उनके अनुसार मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व के अन्य सभी आक्रांताओं की भांति यद्यपि कालक्रम से यवन भी भारतीय जनसंख्या में समाविष्ट हो गए, किन्तु ई. सन् के प्रारम्भिक काल में भारत पर उनका पर्याप्त प्रभुत्व था। उन्हें 'सर्वज्ञ यवन' (महाभारत) कहकर सम्मानित किया जाता था। यूनानी चिकित्सकों को अत्यन्त ज्ञानी कहकर उनका आदर किया जाता था। व्यूह रचना के विशेषज्ञ एवं युद्ध मशीनों के डिजाइन बनाने वालों के रूप में यवन इंजीनियरों का पूरे भारत में सम्मान था। इसके अतिरिक्त विज्ञान के क्षेत्र में भारतीयों ने मुक्त रूप से यवनों से शिक्षा ग्रहण की थी। भारतीयों का ध्यान ज्योतिष शास्त्र ने विशेष रूप से आकर्षित किया था। उन्होंने यूनानियों से ही कलैंडर प्राप्त किया। सप्ताह का सात दिनों में विभाजन एवं विभिन्न ग्रहों के नाम भी उनसे ही लिए। फलित ज्योतिष का कुछ ज्ञान भारतीयों को पहले से ही था किन्तु नक्षत्रों को देखकर भविष्य बताने की कला भारतीयों ने यूनानियों से ही सीखी। गार्गी संहिता में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि ज्योतिष के क्षेत्र में भारत यूनान का ऋणी है। उसमें लिखा है कि यद्यपि यवन बर्बर हैं किन्तु ज्योतिष के मूल निर्माता होने के कारण वे वंदनीय हैं।
3. वराहमिहिर ने भी लिखा है कि यद्यपि यूनानी म्लेच्छ हैं किन्तु वे ज्योतिष के विद्वान् हैं और इसलिय प्राचीन ऋषियों की भांति पूज्य हैं।

सिक्के बनाने की कला

सिक्के बनाने की कला में भारतीयों ने यूनानियों से बहुत कुछ सीखा। यूनानियों से सम्पर्क होने से पहले भारतीय आहत मुद्राएं काम में लाते थे। उन पर कोई मुद्रा लेख नहीं होता था। यवनों ने यहां पर ऐसे सिक्कों का प्रचलन किया जिन पर एक ओर राजा की आकृति और दूसरी ओर किसी देवता की मूर्ति या कुछ अन्य चिह्न बनाए गए। भारतीय शासकों ने इसी प्रणाली को अपनाया। कनिष्क ने भी बैक्ट्रिया के यूनानी राजाओं और रोम के सिक्कों के अनुरूप अपने सिक्के बनवाए। गांधार और मथुरा की बुद्ध व बोधिसत्वों की मूर्तियों पर यूनानी और रोमन कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

धर्म और दर्शन

धर्म और दर्शन के क्षेत्र में यूनान भारत का ऋणी हुआ। कई यूनानी राजाओं ने भारतीय धर्म को अपनाया। तक्षशिला के एक यवन राजा एण्तियालकीड्स ने हेलियोडोरस नामक अपना राजदूत काशीपुत्र भागभाद्र के पास भेजा था। हेलियोडोरस अपने को 'भागवत' कहता था और उसने देवों के देव वसुदेव के उपलक्ष्य में बेसनगर में 'गरुड़ध्वज' की स्थापना की। मिनांडर स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। सम्भवतः तपस्या और योग की क्रियाएं यूनानियों ने भारतीयों से सीखी।

यवन प्रभाव के सन्दर्भ में एक मनोरंजक मत जर्मनी के प्राच्यविदों का है कि पारंपरिक संस्कृत सुखांत नाटकों पर एथेंस के नाटकों का प्रभाव था, जो कि इंडो–ग्रीक राजाओं के दरबारों एवं नगरों में अभिनीत होते थे। इसके प्रमाण के रूप में किसी अन्य

टिप्पणी

साक्ष्य के अभाव में यह एक बहुत स्पष्ट साक्ष्य माना जाता है कि संस्कृत नाटकों में पटाक्षेप के लिए 'यवनिका' शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु यह एक इतना हल्का साक्ष्य है कि इसके आधार पर संस्कृत नाटकों पर यूनानी प्रभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पारस्परिक सम्पर्क से भारतीय एवं यवनों ने परस्पर बहुत कुछ ग्रहण किया।

इतना तो स्पष्ट है कि संस्कृति के मूल तत्व सर्वथा अप्रभावित एवं अपरिवर्तित ही रहे तथा यवन भारतीयों पर कोई गहरा प्रभाव नहीं छोड़ सके। भारतीय सभ्यता पर यवन–संस्कृति के प्रभावों को अतिरंजित करने के लिये पर्याप्त आधार नहीं हैं।

2.4.2 पार्थियन

शकों के बाद पार्थियन लोग भारत में आए। अनेक भारतीय संस्कृत के मूल पाठों में एक साथ इन दोनों कबीलों के लिए "शक–पहलव" संज्ञा का प्रयोग किया गया है। इस तरह इंडो–पार्थियनों को 'पहलव (पह्लव)' कहा गया है। इनके शासन को सुरेन साम्राज्य (Suren Kingdom) के नाम से भी जाना जाता है. पार्थियन भारत में ईरान (फारस) से आए. ये लोग ई. सं. से दो सौ वर्ष पूर्व भारत में आए और उत्तर–पश्चिमी भारत के कतिपय स्थानों में उनका शासन लगभग सौ वर्ष तक रहा।

मिथ्रीडेट्स प्रथम पार्थियन सम्राट था, जिसने भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश पर आक्रमण किया था। उसने बैक्ट्रियन सेना (उस समय इस क्षेत्र पर बैक्ट्रियन शासक डिमेट्रियस का शासन था) को परास्त कर सिंधु और झेलम के बीच के प्रदेश को जीत लिया. मिथ्रेडेट्स की मृत्यु के पश्चात पार्थियन साम्राज्य के प्रांतीय शासक अपने–अपने प्रदेशों के स्वतन्त्र शासक बन गए। पार्थिया के एक और महत्त्वपूर्ण शासक ने सिंध और पंजाब राज्यों को संगठित कर उन्हें शक्तिशाली बनाया. भारत में पार्थियनों के शासन के विषय में विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है। भारतीय पार्थियन शासकों में एक प्रसिद्ध शासक माउस हुआ। उसकी राजधानी तक्षशिला थी। वह एक महान राजा था। इतिहासकारों का कहना है कि उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की थी। उसके बाद मिथ्रेडेट्स द्वितीय भी एक प्रसिद्ध शासक हुआ। उसने शकों को पराजित किया था। एजेज प्रथम और एजेज द्वितीय भी इस वंश के प्रसिद्ध शासक थे। पर इस वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक गॉन्डोफर्नी था, जिसने 20 ई० से 45 ई० तक शासन किया. उसने अपने राज्य की स्थिति सुदृढ़ बनाने का भरसक प्रयत्न किया और उसे इस कार्य में सफलता भी मिली। सिंध और पंजाब में उसका पूर्ण प्रभुत्व था।

गॉन्डोफर्नी की मृत्यु के बाद पार्थियन राज्य की शक्ति घटती ही रही और धीरे–धीरे इस राज्य का पतन हो गया। कुषाण जाति ने इस जनगण के साम्राज्य का अंत किया। यह तथ्य उपलब्ध दो अभिलेखों से प्रमाणित होता है।

भारत के पार्थियन राज्य

भारत में जिस प्रकार बैक्ट्रिया के यवनों ने आक्रमण कर अपने अनेक राज्य इस देश में स्थापित किए थे, वैसे ही पार्थिया के पार्थियन लोगों ने भी भारत के उत्तर–पश्चिमी

भाग में अपने शासन को कायम किया। पार्थिया के शक्तिशाली राजा मिथिदातस द्वितीय की शक्ति से पराभूत होकर ही शक लोग भारत में प्रवेश करने के लिए विवश हुए थे। मिथिदातस द्वितीय के शासनकाल में पार्थिया कि शक्ति बहुत अधिक बढ़ी हुई थी, और शक आक्रमणों को उसके विरुद्ध सफलता प्राप्त नहीं हो सकी थी।

टिप्पणी

श्पलगदम

श्पलहोर के बाद भारत के पार्थियन राज्य का स्वामी उसका पुत्र श्पलगदम बना, उसके सिक्कों पर 'श्पलहोरपुत्रस ध्रमिअस श्पलगदमस' लिखा है। पार्थियन राजाओं ने अपने नाम के साथ 'ध्रमिक' या 'ध्रमिअ' विशेषण लगाया है। इससे सूचित होता है, कि ये भी भारतीय धर्म के प्रभाव में आ गए थे। भारत के पार्थियन राजा केवल कंधार और सीस्तान के प्रदेशों से ही संतुष्ट नहीं रहे। इन्होंने काबुल पर आक्रमण करके उसे भी जीत लिया, और वहां के यवन राज्य का अन्त किया। इसके बाद वे पुष्करावती (पश्चिमी गांधार) की ओर बढ़े, और उसे भी अपने अधीन कर लिया।

अय (एजस)

पार्थियन लोगों की शक्ति को इस प्रकार विस्तृत करने वाले राजा का नाम अय (एजस) था। जो सम्भवतः श्पलगदम के बाद पार्थियन राज्य का स्वामी बना था। इसके सिक्कों पर 'महाराज राजराज महान् अय' लेख अंकित है। इससे यह सूचित होता है कि वह बहुत ही शक्तिशाली था और राजाधिराज कहलाता था। अनेक इतिहासकारों के मत में यह अय पार्थियन न होकर शक था, और शक महाराज मोग या मोअ का उत्तराधिकारी था। पार्थियन और शक राजाओं के विषय में जो कुछ भी ज्ञान हमें हैं, उसका आधार केवल उनके सिक्के ही हैं। इसी कारण इस विषय में मतभेद की गुंजाइश रहना स्वाभाविक है।

गॉडोफैरस

अय के बाद पार्थियन राज्य का स्वामी गॉडोफैरस (गुदफर) हुआ। उसकी राजधानी पश्चिमी गंधार में थी, और वह बहुत शक्तिशाली था। उसका नाम ईसाई धर्म की प्राचीन अनुश्रुति में भी पाया जाता है। उसके अनुसार ईसाइर मिशनरी सेन्ट टामस ने गुदफर के राज्य में ईसाई धर्म का प्रचार किया था। सन्ट टामस ईसाई धर्म का एक ऐसा प्रचारक था, जिसने भारत में सबसे पहले अपने धर्म का प्रचार किया।

पार्थियन (पहलवी) साम्राज्य

पहलवी साम्राज्य (Parthian Empire 247 ई.पू. – 224 ई.), प्राचीन ईरान और ईराक का प्रमुख राजनैतिक और सांस्कृतिक केन्द्र था। इसका संस्थापक पार्थिया का अश्क प्रथम, जो कि पर्णि कबीले का प्रमुख भी था, ने तृतीय शताब्दी ई.पू. में पार्थिया क्षेत्र को जीत कर पार्थियन साम्राज्य की शुरुआत की थी। मिहर्दत प्रथम (शासनकाल 171–138 ई. पू.) ने सेल्युकस साम्राज्य से मीदि व मेसोपोटामिया छीनकर और अधिक विस्तार किया। अपने उत्कर्ष काल में यह साम्राज्य फरात नदी तक फैल गया था, जो क्षेत्र वर्तमान में उत्तर–पूर्वी तुर्की से लेकर पूर्वी ईरान तक है। यह साम्राज्य रेशम मार्ग पर स्थित था,

जो कि उस समय रोमन साम्राज्य व हान राजवंश के मध्य प्रमुख व्यापारिक मार्ग था। इस कारण से यह साम्राज्य व्यापारिक व वाणिज्यिक केन्द्र बन गया था।

टिप्पणी

पहलवों ने कला, वास्तु–कला, धार्मिक मान्यताएं और राजचिह्न वृहत स्तर पर अपने समकालीन सांस्कृतिक साम्राज्यों से ली थी, जो कि पर्शियन व हेलिनिस्टिक कालखण्ड को परिलक्षित करते हैं। इस साम्राज्य के प्रथम अर्ध कालखण्ड पर यूनानी संस्कृति की छाप दिखती हैं, जो कि धीरे–धीरे अंत तक ईरानी संस्कृति में परिवर्तित हो जाती है। पहलवी साम्राज्य के शासकों को ''राजाधिराज'' की उपाधि प्राप्त थी क्योंकि ये स्वयं को हखमनी साम्राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी मानते थे।

प्रारंभ में पहलवों के शत्रु पश्चिम में सेल्युकस साम्राज्य व पूर्व में शक थे। जैसे–जैसे इनके साम्राज्य का पश्चिम की ओर विस्तार हुआ, इनका सीधा संघर्ष आर्मेनियाई साम्राज्य व रोम गणतन्त्र से होने लगा। रोमनों व पहलवों में आर्मेनिया के राजाओं को अपनी कठपुतली के रूप में स्थापित करने की होड़ लगी रहती थी। पहलवों ने रोमन गवर्नर मार्क्स लिसीनियस क्रास्सस को 53 ई.पू. में कार्रहाए के युद्ध में निर्णायक रूप से हराकर 40–39 ई.पू. तक टायर को छोड़कर पूरे लेवांट क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। तथापि मार्क एन्टोनी ने जवाबी आक्रमण करके एक सीमित सफलता प्राप्त की। इस तरह से कुछ शताब्दियों तक रोमन–पहलव युद्ध चलता रहा। इन युद्धों में कई बार रोमनों ने सेल्युसिया व तेसीफोन नगरों पर नियंत्रण तो किया परन्तु वे लम्बे समय तक इसे अपने हाथ में नहीं रख पाये। इसी बीच सिंहासन के लिये पहलवों के मध्य ही गृह युद्ध होने लग गये जो कि विदेशी आक्रमण से भी अधिक खतरनाक थे। पहलव साम्राज्य का पतन तब हुआ जब फार्स के इश्तकिर के शासक अर्दशीर प्रथम ने पहलवों के विरुद्ध बगावत कर दी व अंतिम शासक अर्ताबनुस पंचम की हत्या करके सासानी साम्राज्य की स्थापना की, जो कि ईरान पर मुस्लिम आक्रमण के पहले सातवीं शताब्दी तक अस्तित्व में रहा।

पहलवी व यूनानी में लिखे मूल पहलव स्रोत सासानी व हखमनी की तुलना में बहुत ही दुर्लभ है। फैले हुए कीलाकर फलकों, शिलालेखों, द्राच्मा सिक्कों तथा कुछ चर्मपत्रों के अतिरिक्त पहलवों का इतिहास बाहरी स्रोतों से ही प्राप्त हुआ है।

टिप्पणी

गॉडोफर्नीज के शासनकाल में सेट थॉमस ईसाई धर्म का प्रचार करने भारत आया था। इसका उल्लेख सीरियाई ग्रंथ Acts of Judas Thomas the Apostle में मिलता है। इस ग्रंथ के अनुसार गॉडोफर्नीज ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था तथा बाद में सेंट थॉमस दक्षिण भारत भी गया। 72 ई. में दक्षिण भारत में चेन्नई के निकट म्यातपुर में सेंट थॉमस की हत्या कर दी गयी थी जिसे वहीं पर दफनाया गया।

गॉडोफर्नीज के समय कुषाणों का दबाव इन क्षेत्रों में बढ़ने लगा था। कुषाणों ने पहले तो इंडो–पार्थियन शासक गॉडोफर्नीज से मित्रता की परंतु गॉडोफर्नीज की मृत्यु के बाद जब इंडो–पार्थियन शासन छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त हो गया तो इस स्थिति का फायदा उठाते हुए कुषाण शासक कुजुल कडफिसस ने पार्थियनों को गंधार प्रदेश, सिंध व पंजाब से खदेड़ कर सत्ता पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार भारत से इंडो–पार्थियन शासन समाप्त हो गया।

इंडो–पार्थियन शासकों के ऐतिहासिक साक्ष्य बहुत कम प्राप्त हुए हैं इसलिए इनके बारे में ज्यादा जानकारी नहीं मिलती है। पार्थियन का इतिहास शकों के इतिहास के साथ इतना मिश्रित हो गया है कि यह पता कर पाना बहुत ही मुश्किल हो गया है कि कौन से शासक पार्थियन थे और कौन से शासक शक।

भारत में हिंदी–पहलव राज्य

पहलवों का मूल निवास स्थान ईरान था। इंडो–पार्थियन को पहलव के नाम से भी जाना जाता है। इतिहास में सिकंदर के समय से ही इनका उल्लेख मिलता है। इसके अलावा महाभारत में भी पहलवों का उल्लेख मिलता है। इतिहास में कहीं–कहीं इनको शकों के साथ उल्लेखित किया गया है। बैक्ट्रिया के साथ ही पार्थिया ने भी स्वंय को यूनानी शासन से स्वतंत्र करा लिया था। जिस प्रकार बैक्ट्रिया के यवनों ने भारत में अपने राज्य स्थापित किये उसी प्रकार पार्थिया के लोग भी भारत में अपने राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से आये। सेल्युकस द्वारा स्थापित सिरियाई साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर पार्थिया ने स्वतंत्रता हासिल की थी। पार्थिया के शक्तिशाली शासक मिथिदातस द्वितीय द्वारा दमन किये जाने पर ही शक भारत में आने को विवश हुए थे। सिक्कों के अनुसार इंडो–पार्थियन लोग एक ईरानी कबीला था। इनमे से कुछ लोग ऐसे थे जो पहले संभवतः पार्थिया शासकों के गवर्नर थे । मिथिदातस प्रथम इस वंश का प्रथम वास्तविक शासक था जिसका शासनकाल 171 ई.पू–130 ई.पू. के आसपास था। वह यूक्रेटाईड्स के समकालीन था। भारत में इनका पहला शासक माउस था जिसका शासनकाल 90 ई.पू. से 70 ई. पू. तक था। पेशावर से प्राप्त एक शिलालेख 'तख्त–ए–बाही' के अनुसार गॉडोफर्नीज इस वंश का सबसे शक्तिशाली ईंडो–पार्थियन(पहुव) शासक था। यह अभिलेख खरोष्ठी लिपि में लिखा गया था। पहली शताब्दी ई.पू. में पहलव भारत आये और इन्होने उत्तर–पश्चिम भारत को अपनी सत्ता का केंद्र बनाया।

तख्त–ए–बाही अभिलेख के अनुसार गुदुफर (गॉडोफर्नीज) ने 20 ई. से 41 ई. तक शासन किया। गॉडोफर्नीज ने तक्षशिला को अपनी राजधानी बनाया। आरंभ में गॉडोफर्नीज का शासन अफगानिस्तान तक था परन्तु बाद में उसने पेशावर तथा सिंधु

टिप्पणी

घाटी के निचले क्षेत्रों पर भी अधिकार कर लिया था। उसने अंतिम हिन्द–यवन शासक हर्मियस को हराकर उत्तरी काबुल घाटी पर अधिकार कर लिया था। अस्पवर्मन (इन्द्रवर्मन वंशीय शक क्षत्रप) के सिक्कों से ज्ञात होता है कि गॉडोफर्नीज ने कुछ क्षेत्रों से एजेज द्वितीय की सत्ता को उखाड़ फेंका था। अस्पवर्मन पहले तो हर्मियस का स्ट्रैटेगो (प्रमुख कमांडर) था लेकिन बाद में उसने गॉडोफर्नीज की आधीनता स्वीकार कर ली।

पार्थियन वंश के शासक

ऐसा प्रतीत होता है, कि मिथिदातस द्वितीय के किसी उत्तराधिकारी राजा के समय में पार्थियनों ने भारत पर आक्रमण किया, और आर्कोशिया (गांधार) व सीस्तान के प्रदेशों को जीत लिया। भारत के उत्तर–पश्चिमी भाग में पार्थियन लोगों का जो शासन इस विजय द्वारा स्थापित हुआ, इसका मूल पार्थियन राज्य के साथ संबंध नहीं रह सका, और वहां पर एक स्वतंत्र पार्थियन वंश शासन करने लगा। इस स्वतंत्र पार्थियन वंश का प्रथम राजा वोनोनस (वनान) था। उसके सिक्कों पर जो लेख है, वे ग्रीक भाषा में हैं। गांधार में कुछ ऐसे सिक्के भी प्राप्त हुए हैं, जिनमें एक ओर तो वोनोनस (वनान) का नाम ग्रीक भाषा में दिया गया है, और दूसरी ओर भारतीय प्राकृत भाषा में 'महाराजभ्रातस ध्रमिअस श्पलहोरस' लिखा है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि वनान सम्पूर्ण पार्थियन साम्राज्य का स्वामी था, और उसका भाई श्पलहोर गांधार व उसके समीपवर्ती भारतीय प्रदेशों पर शासन करने के लिए नियुक्त था। भारत के पार्थियन राज्य का शासक यह श्पलहोर पहली सदी ई. पू. के मध्य भाग में हुआ था।

पार्थियन साम्राज्य का अंत

गुदफर के बाद भारत के पार्थियन राज्य की शक्ति क्षीण होने लग गई। इसका मुख्य कारण यह था, कि इस समय युइशि जाति ने भारत पर आक्रमण शुरू कर दिए थे। हूणों के आक्रमण के कारण युइशि लोग अपने मूल अभियान को छोड़कर शकों पर आक्रमण करने के लिए विवश हुए थे, और शक लोगों ने आगे बढ़कर बैक्ट्रिया को जीत लिया था। शकों की अन्य शाखा इन्हीं युइशि लोगों से धकेली जाकर पार्थिया के समीप से होती हुई भारत में प्रविष्ट हुई थी। पर शक लोग बैक्ट्रिया में देर तक नहीं टिक सके। युइशियों ने वहां पर भी उन पर आक्रमण किया, और बैक्ट्रिया को जीतकर वे भारत की तरफ बढ़ आए। पार्थियन लोगों के भारतीय शासन का अंत करना इन युइशि आक्रांताओं का ही कार्य था।

भारतीय इतिहास में पार्थियन लोगों को पह्लव कहा गया है। पुराणों में शकों और पह्लवों का नाम प्रायः साथ–साथ आता है। इसका कारण यही है, कि शक लोग पार्थिया होकर ही भारत में प्रविष्ट हुए, और यह संभव है कि उनकी सेना में पार्थियन सैनिक भी अच्छी बड़ी संख्या में हों। संभवतः पार्थियन लोग भी विशाल शक–जाति की ही एक शाखा थे, जो अपने जाति–भाइयों से पहले ईरान में प्रविष्ट हो गए थे।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. उस इंडो–ग्रीक शासक का नाम बताओ जिसे बौद्ध धर्म में अपार श्रद्धा थी?

(क) यूथिडेमस (ख) मिनांडर

(ग) डेमेट्रियस (घ) इनमें से कोई नहीं

6. किस पार्थियन शासक ने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की?

(क) मिथ्रीडेट्स (ख) एजेज प्रथम

(ग) माउस (घ) इनमें से कोई नहीं

2.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)
6. (ग)

2.6 सारांश

चंद्रगुप्त मौर्य, मौर्य वंश का संस्थापक था। इसके प्रारंभिक जीवन के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। महावंश टीका से पता चलता है कि चंद्रगुप्त का जन्म 345 ई.पू. मौर्य वंश के क्षत्रिय कुल में हुआ था। इसके पिता मौर्य नगर के राजा थे। एक राजा ने मौर्य नगर पर आक्रमण किया और मौर्य राजा को मार डाला उसकी विधवा पत्नी रक्षा हेतु अपने भाई के यहां रहने लगी। वहीं चंद्रगुप्त का जन्म हुआ। सुरक्षा विचार से चंद्रगुप्त को एक ग्वाले को दे दिया गया। उसने एक शिकारी को इस बालक को बेच दिया। वह बालकों का नेता था। चाणक्य ने चंद्रगुप्त की प्रतिभा से प्रभावित होकर 1000 कार्षापण में चंद्रगुप्त को खरीद लिया। उस समय चंद्रगुप्त की आयु 8 से 9 वर्ष की थी। चाणक्य चंद्रगुप्त की प्रतिभा से अत्यधिक प्रसन्न था अत: वह चंद्रगुप्त को अपने साथ ले आया तथा उसे हर प्रकार की शिक्षा देकर पारंगत कर राजा बना दिया। कुछ विद्वानों का मानना है कि वह ग्राम प्रधान का पुत्र था तथा उस गांव में मोरों की संख्या अधिक थी जिससे यह मौर्य कहलाए।

अशोक का धम्म विश्व इतिहास में अत्यंत प्रसिद्ध था परंतु यह प्रश्न विवादास्पद है कि अशोक का धम्म क्या है? अशोक के धम्म का अभिप्राय धर्म से नहीं वरन निष्ठा, आदर व सदाचरण से है। पाश्चात्य इतिहासकारों ने धम्म का अनुवाद दया के ध

टिप्पणी

र्म से किया है। द्वितीय स्तंभ लेख में अशोक स्वयं प्रश्न करता है कि 'कियं चु धम्मे?' अर्थात धम्म क्या है? स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है –'आपासिनवे बहुकथाने दया दाने सचे सोचये' अर्थात पापकर्म से निवृत्ति, दया, दान, सत्य कर्म शुद्धि ही धम्म है। द्वितीय लघुशिलालेख में वर्णित है- माता-पिता की सेवा, जीवमात्र का सम्मान, सत्य–ये सब दया धर्म के लक्षण हैं तथा गुरुजनों का सम्मान, गरीबों के प्रति सहानुभूति–ये धर्म के सनातन रूप हैं।

मौर्य सम्राटों ने जनता की भलाई के लिए अनेक लोकोपकारी कार्य किए जिससे जनता की उन्नति हुई। यातायात के साधनों का विकास किया तथा थोड़ी-थोड़ी दूरी पर विश्रामगृह बनाए। सुविधा के लिए वृक्ष एवं प्याऊ की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त औषधालय बनवाए गए।

देशीय व विदेशी दोनों व्यापार होते थे। वस्त्र आभूषण कलाकृतियों, सुगंधित पदार्थ, घोड़े आदि का निर्यात किया जाता था। यूनानी लेखकों के अनुसार, भारत और यूनानी राज्यों का व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गों से होता था। भारत के लिए पाश्चात्य जगत के साथ व्यापारिक संबंध काफी महत्वपूर्ण व हितकर थे। जुलाहों, तेलियों, ठठेरों आदि के संघों का वर्णन है जिन्हें राजनीतिक व आर्थिक शक्तियां प्राप्त थीं। समृद्धशाली उद्योगों से आंतरिक और बाह्य व्यापार को प्रोत्साहन मिलता था। भारत ऐश्वर्य एवं भोग विलास की वस्तुएं और सुंदर मलमल भी बाह्य देशों को भेजता रहा।

पुष्यमित्र शुंग ने जिस समय मौर्य सत्ता हथियाई, परिस्थितियां अनुकूल न थीं। मौर्यों के दुर्बल शासन में एक ओर मौर्य साम्राज्य बिखर गया था तथा सर्वत्र राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त थी, तो दूसरी ओर साम्राज्य के पश्चिमी हिस्सों पर यवन क्रूर दृष्टि लगाए थे। पुष्यमित्र को इन दोनों परिस्थितियों से निबटना था। संयोग से इसमें यह पूर्णतया सफल रहा।

बौद्ध ग्रंथों में मिनांडर को मिलिन्द नाम से पुकारा जाता है। इसने उत्तर पश्चिम भारत पर शासन किया। कुछ विद्वानों का विचार है कि पुष्यमित्र के समय भारत पर आक्रमण किया तथा चित्तौड़, साकेत तथा पाटलिपुत्र तक के क्षेत्र को विजित किया। स्ट्रेबो लिखता है कि उसने सिकन्दर से भी अधिक जातियां जीतीं। वह निस्संदेह एक महान विजेता था। वह बौद्ध धर्म का संरक्षक था। विद्वानों के अनुसार बौद्ध साहित्य में उसकी वैसी ही प्रतिष्ठा है जैसी उपनिषदों में विदेह सम्राट जनक की।

बख्त्री–यवनों का पश्चिमोत्तर भारत पर शासन सिकन्दर की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस समय भारत तथा यूनान के सांस्कृतिक सम्पर्क बहुत अधिक बढ़ गये। एक ओर जहाँ यूनानी भारतीय धर्म से प्रभावित हुये वहीं दूसरी ओर भारतीयों ने कला, विज्ञान, मुद्रा, ज्योतिष आदि के विषय में यूनानी संस्कृति से बहुत कुछ सीखा।

धर्म और दर्शन के क्षेत्र में यूनान भारत का ऋणी हुआ। कई यूनानी राजाओं ने भारतीय धर्म को अपनाया। तक्षशिला के एक यवन राजा एण्तियालकीड्स ने हेलियोडोरस नामक अपना राजदूत काशीपुत्र भागभाद्र के पास भेजा था। हेलियोडोरस अपने को

'भागवत' कहता था और उसने देवों के देव वसुदेव के उपलक्ष्य में बेसनगर में 'गरुड़ध्वज' की स्थापना की। मिनांडर स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। सम्भवतः तपस्या और योग की क्रियाएं यूनानियों ने भारतीयों से सीखी।

टिप्पणी

शकों के बाद पार्थियन लोग भारत में आए। अनेक भारतीय संस्कृत के मूल पाठों में एक साथ इन दोनों कबीलों के लिए "शक–पहलव" संज्ञा का प्रयोग किया गया है। इस तरह इंडो–पार्थियनों को 'पहलव (पह्लव)' कहा गया है। इनके शासन को सुरेन साम्राज्य (Suren Kingdom) के नाम से भी जाना जाता है. पार्थियन भारत में ईरान (फारस) से आए. ये लोग ई. सं. से दो सौ वर्ष पूर्व भारत में आए और उत्तर–पश्चिमी भारत के कतिपय स्थानों में उनका शासन लगभग सौ वर्ष तक रहा।

2.7 मुख्य शब्दावली

- **जंबुद्वीप** : सात महाद्वीपों में से एक जिसमें भारतवर्ष की भी स्थिति मानी गई है।
- **दिग्विजय** : संपूर्ण दिशाओं पर विजय प्राप्त करना।
- **धम्म** : धर्म।
- **भेरी–घोष** : युद्ध के आरंभ को इंगित करने हेतु उत्पन्न की गई ध्वनि।
- **गुहा भवन** : गुफा भवन।
- **कृषि निरीक्षक** : कृषि की जांच पड़ताल करने वाला अधिकारी।
- **राजकोष** : खजाना।
- **औचित्य** : उपयुक्तता।
- **पुनरुत्थान** : फिर से जागृत होना।
- **अश्वमेध** : घोड़े का यज्ञ, एक प्रसिद्ध वैदिक यज्ञ जिसे चक्रवर्ती सम्राट ही कर सकता था।
- **पार्थियन** : पार्थिया का (पश्चिमी एशिया का प्राचीन राज्य)।

2.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सिकंदर के किस सेनापति ने चंद्रगुप्त को 500 हाथी भेंट में दिये? और क्यों?
2. मौर्य वंश के उस प्रथम शासक के बारे में संक्षिप्त जानकारी दीजिए जिसने बौद्ध धर्म को अपनाया और इसका प्रचार–प्रसार किया।
3. शुंग वंश के किस प्रमुख शासक ने वैदिक (ब्राह्मण) धर्म का पुनरुत्थान किया। संक्षेप में वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

4. कण्व वंश के बारे में संक्षिप्त विवरण दीजिए।
5. इंडो–ग्रीक शासक डेमेट्रियस के शासन तथा उसकी पुष्यमित्र से पराजय की संक्षिप्त जानकारी दीजिए।
6. पार्थियनों के मूल स्थान तथा भारत में इनके निवास स्थानों की संक्षिप्त जानकारी दीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मौर्य साम्राज्य की स्थापना एवं विस्तार में चंद्रगुप्त मौर्य की सैन्य कुशलता, नेतृत्व क्षमता व नीतिगत फैसलों में पारंगतता का विवेचन कीजिए।
2. अशोक को भारतीय इतिहास का चमकता ध्रुव तारा एवं महान शासक कहा जाता है। कथन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. पुष्यमित्र की सैनिक एवं प्रशासनिक उपलब्धियों के बारे में विस्तार से समझाइए।
4. मिनांडर को इंडो–ग्रीक शासकों में महान का दर्जा दिया जाता है। इसके कारणों के बारे में विस्तार से समझाइए।
5. भारत में पार्थियन साम्राज्य के बारे में अपने विचारों से अवगत कराइए।

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।
3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।
4. झा, डी. एन.ः प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.ः द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.ः इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.ः (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,: द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.ः प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीताः ''प्राचीन भारत का इतिहास'' मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंदः ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूमः II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।

इकाई 3 सातवाहन, चेदि, शक और कुषाण

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 सातवाहन
3.3 चेदि
3.4 शक
3.5 कुषाण
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

पुष्यमित्र शुंग ने लगभग 180 ई. पू. अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या कर शुंग वंश की स्थापना की। सन् 200 ई. पू. के बाद का जो युग था उसमें कोई बड़ा साम्राज्य तो स्थापित नहीं हुआ पर यह युग ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसीलिए महत्वपूर्ण है कि इस युग में मध्य एशिया से सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुए और विदेशी तत्वों का भारतीय समाज में समावेश हुआ। इस युग में उत्तर तथा उत्तर पश्चिम भारत में अनेक राजनैतिक क्षेत्र उभर कर सामने आए। उत्तर पश्चिम भारत का ईरान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया के साथ हमेशा से प्रगाढ़ संबंध रहा है। मौर्यों के शासन के पश्चात लोगों का मध्य एशिया में जाने का सिलसिला बढ़ा और इसका सीधा प्रभाव उत्तर, खासकर ऊपरी गंगा और यमुना के पश्चिम की राजनीतिक स्थिति पर पड़ा। बैक्ट्रिया (उत्तर अफगानिस्तान) के यूनानी हिंदुकुश के पार तक पहुंच गए और उनका शासन पंजाब तक फैल गया। यूनानियों (जिन्हें भारत में यवन कहा जाता था।) के बाद सिथियन (शक), पार्थियन (पह्लव) और कुषाणों (यू ची की एक शाखा) ने इस प्रदेश पर शासन किया। निश्चित रूप से ये गतिविधियां यहीं तक सीमित न रहीं और बाद के वर्षों में भी उत्तरी पश्चिमी सीमांत पर आवागमन का सिलसिला बना रहा। कुषाणों के शासनकाल में क्षत्रप, महादंडनायक और अन्य अधिकारियों का स्थानीय प्रशासन में काफी जोर रहा। इन लोगों के सम्पर्क से भारतीय राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक दशा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

इस इकाई में हम सातवाहन, चेदि, शक और कुषाण जैसे महत्वपूर्ण वंशों का अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सातवाहन वंश के विषय में जान पाएंगे;
- चेदि और शक वंश के प्रमुख शासकों एवं उनकी उपलब्धियों को जान पाएंगे;
- कुषाण सम्राट कनिष्क की सैनिक व अन्य उपलब्धियों से अवगत हो पाएंगे।

3.2 सातवाहन

27 ईसा पूर्व में कण्व वंश का अंत कर सातवाहनों ने शासन किया परंतु सातवाहनों की जाति व मूल निवास स्थान के संबंध में मतभेद है। पुराणों में कण्व वंश का नाश करने वाला सिमुक आंध्र, आंध्र जातीय या आंध्र भृत्य कहा गया है। आंध्र दक्षिण की अनार्य जाति थी। जबकि अधिकांश विद्वान सातवाहनों को ब्राह्मण स्वीकारते हैं। इस संबंध में निम्न धारणाएं प्रचलित हैं।

सातवाहन अनार्य थे–आयंगर सातवाहनों को अनार्य स्वीकारते हैं, उनके अनुसार सातवाहन आंध्र लोग अनार्य थे जो दक्षिण के उत्तरी पूर्वी भाग में निवास करते थे और बहुत शक्तिशाली थे।

1. सातवाहन राजाओं का नाम अनार्य प्रतीत होता है; जैसे सिमुक, पुलुभावी आदि।
2. मातृप्रधान समाज की विशेषता अनार्यों में थी।
3. पुराणों में आंध्रों को अनार्य माना गया है।
4. सातवाहनों ने अनार्य शकों से विवाह किया था।

खंडन–परंतु तर्कों के विपक्ष में जो तर्क दिए गए हैं वे निम्न हैं–

1. सातवाहन जाति आंध्र नहीं है। आंध्र में बसने के कारण ये आंध्र कहलाए।
2. दक्षिण भारत में आर्यीकरण देर से हुआ। अनार्य संस्कृति के प्रभाव में ही कुछ आर्य राजाओं का नाम अनार्य प्रतीत होता है।
3. सातवाहन समाज मातृप्रधान न था यद्यपि स्त्रियों का स्थान सम्मानपूर्ण था।
4. अंतरजातीय विवाह तो प्रत्येक काल में ही होते थे।

सातवाहन क्षत्रिय थे–

1. नासिक अभिलेख में शातकर्णी की माता बलश्री को राजर्षि वधू कहा गया है अत: यह क्षत्रिय थे।
2. नासिक अभिलेख में शातकर्णी की तुलना राम, केशव, अर्जुन, भीम से की गई है। ये सभी क्षत्रिय थे। इस अभिलेख में शातकर्णी को एक ब्राह्मण कहा गया है।

टिप्पणी

खंडन–

1. नासिक अभिलेख में गौतमीपुत्र शातकर्णी को क्षत्रियों का दर्प और मान चूर करने वाला कहा है।
2. एक ब्राह्मण का अर्थ ब्राह्मण जाति का है।
3. ब्राह्मणों को राजर्षि कहा गया है।
4. क्षत्रिय से तुलना का आधार जाति नहीं वीरता है।

सातवाहन ब्राह्मण थे–सेनार्ट, ब्लूयर, त्रिपाठी ने सातवाहन को ब्राह्मण स्वीकार करते हुए कहा है कि नासिक अभिलेख में शातकर्णी को एक ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के दर्प को चूर करने वाला कहा गया है साथ ही इन सम्राटों के गोत्र गौतम व वशिष्ठ थे और ये ब्राह्मण गोत्र के थे।

डॉ. चौधरी ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा है–यह विश्वास योग्य बात है कि आंध्र भृत्य अथवा सातवाहन राजा ब्राह्मण थे, जिनमें कुछ नागरक्त का सम्मिश्रिण था।

जाति की ही भांति मूल निवास स्थान में भी मतविभिन्नता है। कुछ इतिहासकार आंध्र देश, बेलारी, बरार स्वीकारते हैं तो कुछ मध्य देश के दक्षिण में महाराष्ट्र व तेलंगाना स्वीकार करते हैं।

सातवाहन वंश के संस्थापक व शासक

सातवाहन वंश का संस्थापक सिमुक था जिसे शिशुक, सिन्धुक, शिप्रक भी कहा जाता है। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी। इसने 23 वर्ष तक शासन किया। सिमुक के पश्चात कृष्ण गद्दी पर बैठा तत्पश्चात शातकर्णी गद्दी पर आसीन हुआ। यह अपने वंश का सबसे प्रतापी सम्राट था। शातकर्णी को सिमुक वंश का धन (सिमुकसातवाहन वंश वधनस) कहा है। उसने महाराष्ट्र के महारथी की कन्या से विवाह कर अपने प्रभाव में वृद्धि की। नानाघाट अभिलेख में उसे अप्रतिहत चक्रदक्षिणापथ अर्थात संपूर्ण दक्षिण का अधिकारी कहा गया है। इसने दो बार अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान कराकर ब्राह्मण धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की। शातकर्णी की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र अल्पव्यस्क थे अतः शातकर्णी की पत्नी नायनिका ने राजकुमारों का संरक्षकत्व ग्रहण कर राज्यकार्य सम्भाला। शातकर्णी की मृत्यु के पश्चात शकक्षहरात वंश सम्राट नहपान ने सातवाहनों के गौरव को नष्ट कर दिया था।

गौतमी पुत्र शातकर्णी–गौतमी पुत्र शातकर्णी 106 ईसा पूर्व सम्राट बना। वह गौतमी बलश्री का पुत्र व अपने वंश का 23वां सम्राट था। वह सातवाहन वंश का सबसे योग्य व पराक्रमी सम्राट था। उसके लिए वर-वरण-विक्रम, चारु, विक्रम आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है। उसने अपने वंश की मान प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित किया। नासिक प्रशस्ति में लिखा है, ''शातकर्णी ने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की जिसकी विजय पताका अपराजित थी, जिसकी राजधानी शत्रुओं के आक्रमण से परे थी, जो शक्ति में राम, केशव, अर्जुन, भीमसेन के समान था तथा जो यश में नहुष, जनमेजय, सगर, ययाति से कम न था, उसकी विजयें इस प्रकार हैं-

टिप्पणी

1. **शकों पर विजय**–गौतमी पुत्र शातकर्णी ने शकों को पराजित कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। नासिक अभिलेख के अनुसार, ''शकों को पराजित करने से गौतमी पुत्र शातकर्णी का गुजरात सौराष्ट्र, पश्चिमी राजपूताना, मालवा, बरार व उत्तरी कोंकण पर अधिकार हो गया।''

2. **क्षहरातों पर विजय**–शातकर्णी ने शक यवन पहलवों क्षहरातों को पराजित कर अपने वंश की मर्यादा को बढ़ाया था। उसने क्षहरात नरेश नहपान को पराजित कर अपना बदला ले लिया।

3. **पर्वत श्रेणियों पर विजय**–नासिक अभिलेख में उसे अनेक पर्वत श्रेणियों का अधिपति कहा गया है। उसने विंध्य, ऋक्षवत् पारियात्र सह्य मलय, महेंद्र पर विजय प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उसने असिक, अश्मक, मूलक, सुराष्ट्र, कुकर, अपरान्त, अनूप, विदर्भ, आकर, अवन्ति पर विजय प्राप्त की। नासिक अभिलेख में उद्धृत है–गौतमी पुत्र शातकर्णी के वाहनों ने तीन समुद्रों का जल पिया। सभी राजाओं ने उसके शासन को स्वीकार किया।

वह एक महान विजेता ही न था वरन एक आदर्श शासक भी था। नासिक अभिलेख में लिखा है, अपने प्रजाजनों के सुख-दु:ख को वह अपने ही सुख-दु:ख के समान समझता था। वह अपनी प्रजा पर आवश्यकता से अधिक कर नहीं लगाता था तथा अपराधियों के साथ भी दयापूर्ण व्यवहार करता था। वह वेदों का आश्रय दाता व सर्वोच्च ब्राह्मण था। डवेल का मत है कि उसकी मृत्यु पर उसकी माता ने ही नासिक अभिलेख खुदवाया था।

टिप्पणी

वशिष्ठीपुत्र पुलुमावी–गौतमी पुत्र शातकर्णी की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र पुलुमावी 130 ई. में सम्राट बना। इसका शासन काल 15 वर्ष का था। यह अपने पिता के समान ही प्रतिभाशाली था। उसने क्षत्रप रूद्रदामन की कन्या से विवाह कर शक क्षत्रप मैत्री को प्रोत्साहित किया। जूनागढ़ अभिलेख में स्पष्ट है कि उसने दक्षिण के स्वामी को दो बार पराजित किया। उसकी मृत्यु संभवतः 155 ई. में ही हो गई थी।

यज्ञश्री शातकर्णी–यज्ञश्री शातकर्णी सातवाहन वंश का अंतिम प्रसिद्ध व साहसी सम्राट था। उसने 165 ई. से 195 तक शासन किया। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक कर लिया था। विद्वानों के अनुसार यज्ञश्री अंतिम सातवाहन शासक था जिसने महाराष्ट्र और आंध्र दोनों प्रदेशों पर शासन किया। इसके समय में सामुद्रिक व्यापार अत्यंत उन्नत था। डॉ. स्मिथ का मत है, ''यज्ञश्री शातकर्णी ने उन प्रदेशों पर भी अधिकार जमा लिया था जिनको शकों ने कुछ दिनों पूर्व ही सातवाहनों से छीना था।''

सातवाहनों का पतन–यज्ञश्री शातकर्णी के उत्तराधिकारी अत्यंत अयोग्य थे जिससे सातवाहनों की राजनीतिक प्रभुता दिनों-दिन क्षीण होती चली गई। यज्ञश्री के उपरांत विजय 203 ई. से 209 तक तथा चंद्रश्री 209 से 219 ईसवी तक शासक थे परंतु ये नाम मात्र के ही शासक थे। लगभग 225 ईसवी तक सातवाहनों का पतन हो गया। दुर्बल आन्तरिक प्रशासन व बाह्य आक्रमणों ने सातवाहनों को उन्मूलित कर दिया। तदुपरान्त दक्षिण में नयी राजनीतिक शक्तियों का अभ्युदय हुआ जो महाराष्ट्र में आभीरों तथा पूर्वी दक्षिण में इक्ष्वाकु व पल्लवों की शक्ति के नाम से विख्यात हुई।

अपनी प्रगति जांचिए

1. सातवाहन वंश के संस्थापक का नाम क्या है?
   (क) सिमुक (ख) गौतमी पुत्र शातकर्णी
   (ग) वशिष्ठी पुत्र पुलुमावी (घ) इनमें से कोई नहीं
2. सातवाहन वंश के सबसे योग्य व पराक्रमी सम्राट का नाम क्या है?
   (क) वशिष्ठी पुत्र पुलुमावी (ख) गौतमी पुत्र शातकर्णी
   (ग) सिमुक (घ) इनमें से कोई नहीं

3.3 चेदि

मौर्य सम्राट अशोक ने भीषण युद्ध के बाद कलिंग को जीतकर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। ऐसा प्रतीत होता है, कि अशोक के निर्बल उत्तराधिकारी कलिंग पर अपना अधिकार नहीं रख सके तथा उसकी मृत्यु के बाद कलिंग का राज्य पुनः स्वतंत्र हो गया। प्रथम शताब्दी ईसा.पूर्व में कलिंग भारत का एक अत्यंत शक्तिशाली राज्य बन गया। इस समय हम यहां चेदि वंश के महामेघवाहन कुल को शासन करता हुआ पाते हैं।

टिप्पणी

चेदि राजवंश का इतिहास

कलिंग के चेदि राजवंश का संस्थापक महामेघवाहन नामक व्यक्ति था।अतः इस वंश का नाम महामेघवाहन वंश भी पड़ गया। इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा खारवेल था। खारवेल प्राचीन भारतीय इतिहास के महानतम सम्राटों में से एक है। उड़ीसा राज्य के भुवनेश्वर (पुरी जिले) से तीन मील की दूरी पर स्थित उदयगिरि पहाड़ी की हाथीगुंफा से उसका एक बिना तिथि का अभिलेख प्राप्त हुआ है। इसमें खारवेल के बचपन, शिक्षा, राज्याभिषेक तथा राजा होने के बाद से 13 वर्ष तक शासन काल की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण दिया हुआ है। हाथीगुंफा अभिलेख खारवेल के राज्यकाल का इतिहास जानने का एकमात्र स्रोत है।

भुवनेश्वर के समीप उदयगिरि पहाड़ी पर हाथीगुंफा के अभिलेख से कलिंग में चेति (चेदि) राजवंश का इतिहास ज्ञात होता है। यह वंश अपने को प्राचीन चेदि नरेश वसु की संतति (वसु–उपरिचर) कहता है। कलिंग में इस वंश की स्थापना संभवतः महामेघवाहन ने की थी जिसके नाम पर इस वंश के नरेश महामेघवाहन भी कहलाते थे। खारवेल, जिसके समय में हाथीगुंफा का अभिलेख उत्कीर्ण हुआ इस वंश की तीसरी पीढ़ी में था। महामेघवाहन और खारवेल के बीच का इतिहास अज्ञात है। महाराज वक्रदेव, जिसके समय में उदयगिरि पहाड़ी की मंचपुरी गुफा का निचला भाग बना, इस राजवंश की संभवतः दूसरी पीढ़ी में था और खारवेल का पिता था।

प्राचीन भारत में, एक प्रसिद्ध क्षत्रिय जाति थी जिसे चेदि के नाम से जाना जाता था। चेदि लोगों का ब्राह्मणिक, बौद्ध और जैन साहित्य में प्रमुखता से उल्लेख किया गया था।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बुद्ध के दिनों में, भारत के राजनीतिक मानचित्र में सोलह महाजनपद या महान प्रदेश थे। उन महाजनपदों में से एक चेदि क्षेत्र था जो यमुना और नर्मदा नदियों के बीच विस्तारित हुआ था। लगता है कि चेदि लोग समय के साथ अन्य स्थानों पर चले गए।

जैन स्रोतों से मालूम होता है कि अभिचंद्र नाम के एक राजा ने विंध्य के क्षेत्र में चेदिराष्ट्र के नाम से एक राज्य की स्थापना की। इस राज्य की राजधानी सुक्तिमती नदी के तट पर सुक्तिमती–पुरी थी। इस नदी की पहचान अलेक्जेंडर कनिंघम ने महानदी नदी से की है। डीसी सिरकार का मानना है कि सुक्तिमती नदी सुकटेल है जो महानदी (या तेल नदी की) की सहायक नदी है। नाजमस नदी तेल नदी में बहती है जो महानदी नदी से मिलती है।

यदि राजा अभिचंद्र द्वारा कलिंग में कहीं पर चेदि राष्ट्र की स्थापना की गई थी, तो चेदियों का इस भूमि से बहुत पुराना नाता था। लेकिन, कुछ इतिहासकार कुछ अन्य स्थानों पर सुक्तिमती और पुरी की राजधानी सुक्तिमती नदी के होने की बात करते हैं। इस प्रकार चेदि राष्ट्र की सटीक स्थिति अनिश्चित बनी हुई है।

चेदिराष्ट्र के राजा अभिचंद्र के पुत्र और उत्तराधिकारी राजा वासु थे। लगता है कि वासु एक बहुत शक्तिशाली शासक था, और वह राजर्षि की उपाधि अर्जित करने और अपने पवित्र कर्मों के लिए प्रसिद्ध हो गया। कलिंग के राजा खारवेल ने राजर्षि वासु

टिप्पणी

को अपने वंश का संस्थापक माना और अपने हाथीगुंफा शिलालेख में खुद को राजर्षि वासु का वंशज बताते हुए गर्व महसूस किया। यह तथ्य साबित करता है कि कलिंग के चेदि भारत की प्राचीन चेदि जाति की संतान थीं, इसलिए बौद्ध और जैन साहित्य में इसे प्रमुखता से वर्णित किया गया है।

चेदि राजवंश चेता वंश, या चेतवम्सा के रूप में भी प्रसिद्ध है। इसलिए, खारवेल ने अपने शिलालेख में उल्लेख किया है कि उन्होंने चेताराजा (चेताराजवसा वधनेना) के वंश की महिमा को बढ़ाया। कलिंग में चेता वंश के पहले राजाओं का इतिहास ज्ञात नहीं है। जबकि राजा वासु इस वंश के बहुत प्राचीन महत्वपूर्ण व्यक्ति थे, राजा चेतराज कलिंग शासक, खारवेल के तत्काल पूर्ववर्ती थे। यह स्पष्ट है कि चेदि प्राचीन जाति होने की अपनी पृष्ठभूमि के साथ कलिंग में सत्ता में बढ़ रहे थे।

राजवंश ने अपने राजाओं के लिए एक भव्य पदनाम या उपाधि, महामेघवाहन भी रखा हुआ था। कलिंग का चेदि राजवंश, इसलिए, महामेघवाहन परिवार के रूप में भी जाना जाता है। शीर्षक शासकों की शक्ति की बात करता है। महापर्व महामेघवाहन का अर्थ है 'महान बादलों के भगवान' जो अपने वाहन के रूप में बादलों का उपयोग करता है। इसका अर्थ यह हो सकता है कि राजा इंद्र के समान शक्तिशाली थे।

भारत में, उस समय में, कुछ सत्तारूढ़ राजवंशों ने इस तरह की उपाधियां लीं। उदाहरण के लिए, दक्षिण में प्रसिद्ध सातवाहन परिवार था। यह भी हो सकता है कि कलिंग चेदि वंश के पहले राजाओं में से एक महामेघवाहन के नाम से प्रसिद्ध था और उसके उत्तराधिकारियों ने उस महान राजा की स्मृति के सम्मान के रूप में उस परिवार के नाम के रूप में उस नाम का इस्तेमाल किया। इस प्रकार कलिंग के चेदि राजवंश को अधिक उपयुक्त रूप से चेदि महामेघवंश कहा जा सकता है।

वंश के लिए एक और प्रचलित नाम है आइरा। ऐसा भी कहा जाता है कि हाथीगुंफा शिलालेख का ऐरा शब्द चेदि वंश से संबंधित उस नाम के एक राजा के लिए है। लेकिन अन्य इतिहासकारों के अनुसार, आइरा कलिंग के चेदि राजाओं का एक वंशवादी शब्द था। केपी जयसवाल के अनुसार, ऐरा शब्द पुराणिक नाम इला या आइला से आया है जो चंद्र क्षत्रिय जाति से संबंधित था। ऐसा माना जाता है कि कलिंग के चेदि शासकों ने पुराणों के वर्णन के प्रसिद्ध चंद्र क्षत्रिय जाति से संबंधित विश्वास स्थापित करने के लिए खुद को आइरा कहा था।

इस प्रकार, कलिंग के चेदि राजाओं को उनके वंश द्वारा ऐरा महामेघवाहन के नाम से जाना जाता था, और चेताराजा वामा के राजाओं के रूप में भी। मौर्य साम्राज्य के पतन से कलिंग में चेदि वंश का उदय हुआ। हो सकता है कि उन्होंने मूल चेदिराष्ट्र से कलिंग तक अपनी सत्ता स्थानांतरित कर दी हो। ऐसा माना जाता है कि महामेघवाहन कलिंग पर शासन करने वाले वंश का पहला राजा था। यह भी माना जाता है कि कलिंग में राजवंश का दूसरा राजा चेताराजा था।

उनके उत्तराधिकारी खारवेल थे जो कलिंग के इतिहास में और भारत के एक शक्तिशाली सम्राट के रूप में प्रसिद्ध हैं। खारवेल, कलिंग चेदि वंश की तीसरी पीढ़ी के थे। यह उसके अधीन था कि कलिंग एक महान शक्ति बन गया, जिसमें एक साम्राज्य

टिप्पणी

के रूप में व्यापक क्षेत्र थे। खारवेल के जीवन और उपलब्धियों को उनके प्रसिद्ध हाथीगुंफा शिलालेख से स्पष्ट रूप से जाना जाता है। खारवेल के शासनकाल पर चर्चा करने के लिए एक कार्यवाही से पहले इस उल्लेखनीय शिलालेख का संदर्भ आवश्यक है।

खारवेल की मृत्यु के बारे में इतिहास मौन है। यह ज्ञात नहीं है कि वह अपने तेरहवें शासन वर्ष के बाद रहे थे या नहीं।

यह भी ज्ञात नहीं है कि उनके पहले चंद्रगुप्त मौर्य की तरह खारवेल ने भी अपना सिंहासन त्याग दिया और मोक्ष के लिए जैन जीवन जीने के लिए गुमनामी में गायब हो गया।

लेकिन, खारवेल के शानदार शासन के बाद कलिंग में महामेघवाहन राजवंश का शासन जारी रहा। उदयगिरि–खंडगिरी पहाड़ियों की विभिन्न गुफाओं में कुछ छोटे ब्राह्मी शिलालेख हैं जो बाद के महामेघवाहन राजाओं के बारे में कुछ विचार देते हैं। यह माना जाता है कि उस अवधि के कई शिलालेख हमेशा के लिए खो गए हैं।

शिलालेखों में खारवेल की दो रानियों के नाम हैं। मनकापुरी गुफा शिलालेख में वजीरघरा की रानी के रूप में उनकी मुख्य रानी का उल्लेख है। हाथीगुंफा शिलालेख में एक और रानी का उल्लेख है, जिसका नाम सिंहपत की रानी है। पहली रानी को कलिंग के श्रमणों के लिए मनकापुरी गुफा की खुदाई करने के लिए जाना जाता है।

मनकापुरी गुफा शिलालेख में ऐरा महामेघवाहन महाराजा कुदेपसिरी का नाम है और उन्हें कलिन गादीपति या कलिंग के भगवान के रूप में वर्णित किया गया है। यह माना जाता है कि कुदेपसिरी, खारवेल का पुत्र था और अपने शानदार पिता को सिंहासन पर बैठाया। उदयगिरि पहाड़ी में मनकापुरी गुफा की निचली मंजिल में उनका शिलालेख केवल गुफाओं के निर्माण से संबंधित है, और इससे अधिक कुछ नहीं। लेकिन उनके शाही शीर्षकों से पता चलता है कि वह महामेघवाहन वंश के राजा थे जिन्होंने राज्य पर शासन किया था।

उसी गुफा के एक अन्य छोटे शिलालेख में गुफा निर्माण के संबंध में कुमारा वडुखा या वडरेखा का नाम है। लेकिन यह ज्ञात नहीं है कि क्या यह राजकुमार कुदेपसिरी के बाद एक राजा बन गया और इसने कलिंग पर शासन किया।

शिलालेखों में से एक, आंध्र प्रदेश के पश्चिम गोदावरी जिले में गुंटुपल्ली में खोजा गया है, यह साबित करने के लिए एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण है कि खारवेल का राजवंश कई वर्षों तक शासन करता रहा। गुंटुपल्ली शिलालेख में राजा महामेघवाहन सिरी सदा के नाम का उल्लेख है जो कलिंग और महिष्का पर शासन कर रहे थे। महिष्का क्षेत्र महाराष्ट्र क्षेत्र की नर्मदा घाटी में स्थित था जिसे खारवेल ने जीत लिया था।

गुंटुपल्ली शिलालेख से सिद्ध होता है कि महामेघवाहन वंश के कलिंग राजाओं ने खारवेल के काफी समय बाद भी उस भूमि पर शासन किया। यह भी साबित होता है कि कलिंग का चेदि शासन खारवेल के तुरंत बाद गायब नहीं हुआ था।

टिप्पणी

चेदि राज्य : इतिहास और उपलब्धियां

अब हम चेदि राजवंश के इतिहास एवं इसकी उपलब्धियों के बारे में जानेंगे।

1. चेदि राजवंश का परिचय

'चेदि' भारत की एक अत्यन्त प्राचीन जाति थी। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में चेदि महाजनपद विद्यमान था जिसमें संभवतः आधुनिक बुन्देलखण्ड तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश सम्मिलित थे। चेतिय जातक में इसकी राजधानी सोत्थिवती बताई गयी है। महाभारत में इसी को शुक्तिमती (शक्तिमती) कहा गया है। लगता है कि इसी चेदि वंश की एक शाखा कलिंग गयी तथा उसने वहां एक स्वतन्त्र राजवंश की स्थापना की।

महाराज खारवेल

सम्भवतः कलिंग के चेदि राजवंश का संस्थापक महामेघवाहन नामक व्यक्ति था। अतः इस वंश का नाम महामेघवाहन वंश भी पड़ गया। इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा खारवेल हुआ। खारवेल प्राचीन भारतीय इतिहास के महानतम सम्राटों में से एक है।

उड़ीसा प्रान्त के भुवनेश्वर (पुरी जिला) से तीन मील की दूरी पर स्थित उदयगिरि पहाड़ों की 'हाथीगुंफा' से उसका एक बिना तिथि का अभिलेख प्राप्त हुआ है। इसमें खारवेल के बचपन, शिक्षा, राज्याभिषेक तथा राजा होने के बाद से तेरह वर्षों तक के शासन–काल की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण दिया हुआ है। हाथीगुंफा अभिलेख खारवेल के राज्यकाल का इतिहास जानने का एकमात्र स्रोत है। यहां उसी के आधार पर खारवेल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवरण प्रस्तुत किया जायेगा।

2. खारवेल का प्रारम्भिक जीवन

हाथीगुंफा अभिलेख खारवेल की उत्पत्ति तथा वंश परम्परा पर कोई प्रकाश नहीं डालता। उसे कलिंग का तीसरा शासक बताया गया है। महामेघवाहन उसका पितामह था। मंचपुरी गुफा के एक लेख में वक्रदेव नामक महामेघवाहन शासक का उल्लेख हुआ है।

डॉ. सी. सरकार तथा ए. के. मजूमदार जैसे विद्वान इसे ही कलिंग के चेदि वंश का दूसरा शासक तथा खारवेल का पिता बताते हैं। किन्तु यह पूर्णतया अनुमानपरक

टिप्पणी

है तथा इस संबन्ध में हम निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकते।

हाथीगुंफा अभिलेख से पता चलता है कि जन्म से लेकर 15 वर्ष की अवस्था तक उसे युवा राजकुमारों के अनुसार विविध प्रकार की क्रीड़ाओं तथा विद्याओं की शिक्षा–दीक्षा मिली। उसका शरीर स्वस्थ्य तथा वर्ण गौर था। उसे लेख, मुद्रा, गणना, व्यवहार, विधि तथा दूसरी विद्याओं की शिक्षा मिली थी तथा वह सभी विद्याओं में पारंगत हो गया।

15 वर्ष की अवस्था में वह युवराज बनाया गया तथा युवराज के रूप में 9 वर्षों तक प्रशासनिक कार्यों में भाग लिया। 24 वर्ष की आयु में उसका राज्याभिषेक किया गया तथा वह राजा बना। उसका विवाह ललक हत्थिसिंह नामक एक राजा की कन्या से हुआ था जो उसकी प्रधान महिषी बन गयी।

3. खारवेल की उपलब्धियां

राजा होने के पश्चात् प्रथम वर्ष उसने अपनी राजधानी कलिंग नगर में निर्माण कार्य करवाया। उसने तोरणों तथा प्राचीरों की मरम्मत करवाई जो तूफान में ध्वस्त हो गये थे। उसने शीतल जल से युक्त तड़ागों का भी निर्माण करवाया। इन कार्यों में उसने पांच लाख मुद्रायें व्यय कर दीं।

इस प्रकार उसने अपनी प्रजा में व्यापक लोकप्रियता प्राप्त कर ली तथा राजा के रूप में उसकी स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गयी। तत्पश्चात् उसने दिग्विजय के निमित्त एक व्यापक योजना तैयार की। अपने शासनकाल के दूसरे वर्ष खारवेल ने शातकर्णी की शक्ति की उपेक्षा करते हुए एक विशाल सेना, जिसमें अश्व, गज, रथ एवं पैदल सैनिक सभी सम्मिलित थे, पश्चिम की ओर भेजी।

यह सेना कण्वेणा नदी तक आगे बढ़ी तथा इसने मुसिकनगर में आतंक फैला दिया। कण्वेणा नदी तथा मुसिकनगर दोनों के समीकरण के विषय में पर्याप्त मतभेद है। रैप्सन तथा बरुआ कण्वेणा की पहचान वेनगंगा (महाराष्ट्र की एक छोटी नदी) तथा उसकी सहायक नदी कन्हन के साथ करते हैं। उन्होंने मुसिकनगर को गोदावरी घाटी में स्थित अस्सिक (अश्मक) की राजधानी बताया है।

काशी प्रसाद जायसवाल कण्वेणा को आधुनिक कृष्णा नदी तथा मुसिकनगर को कृष्णा तथा मुसी के संगम पर स्थित मानते हैं। शातकर्णी की पहचान सातवाहन नरेश शातकर्णी प्रथम से की जाती है। यह निश्चित नहीं है कि खारवेल तथा शातकर्णी की सेनाओं में कोई प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ या नहीं। अश्मक शातकर्णी के प्रभाव में था।

अतः वह खारवेल के आक्रमण की उपेक्षा नहीं कर सकता था। लगता है यह खारवेल का धावा मात्र था जिसे शातकर्णी सफलतापूर्वक टालने में समर्थ रहा। अपनी इसी सफलता के उपलक्ष्य में शातकर्णी ने अश्वमेध यज्ञ किया।

इस प्रकार खारवेल को प्रथम सैन्य अभियान में कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई। राज्यारोहण के तीसरे वर्ष खारवेल ने अपनी राजधानी में संगीत, वाद्य, नृत्य, नाटक आदि के अभिनय द्वारा भारी उत्सव मनाया। राज्याभिषेक के चौथे वर्ष खारवेल ने बरार

टिप्पणी

के भोजकों तथा पूर्वी खानदेश और अहमदनगर के रीठकों के विरुद्ध सैनिक अभियान किया। वे परास्त किये गये तथा उसकी सेवा करने के लिये बाध्य किये गये।

इसी विजय के प्रसंग में विद्याधर नामक जैनियों की एक शाखा के निवास–स्थान का उल्लेख हुआ है तथा बताया गया है कि खारवेल ने वहां निवास किया था। इसकी स्थापना कलिंग के पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा की गयी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जैनियों का एक पवित्र तीर्थस्थान समझा जाता था तथा इसकी रक्षा करना खारवेल का परम कर्तव्य था।

रथिकों तथा भोजकों ने वहां अपना अधिकार कर लिया होगा। संभव है इसी कारण वह भोजकों तथा रथिकों के विरुद्ध युद्ध में गया हो। खारवेल ने उन्हें पराजित कर उनके रत्न एवं धन को छीन लिया। पश्चिमी भारत में उनका एक शक्तिशाली राज्य था।

रथिकों तथा भोजकों का उल्लेख अशोक के लेखों में भी मिलता है। वे मौर्यों की आधीनता स्वीकार करते थे। सातवाहन वंशी शासकों के साथ उनके मैत्री संबन्ध थे। शातकर्णी प्रथम की पत्नी नागनिका महारथी वंशीय कन्या थी।

इस प्रकार खारवेल द्वारा उन्हें पराजित किया जाना निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। अपने शासन–काल के पांचवें वर्ष वह तनसुलि से एक नहर के जल को अपनी राजधानी ले आया। इस नहर का निर्माण तीन सौ वर्ष पूर्व नन्द राजा द्वारा किया गया था।

यह स्पष्ट नहीं है कि यह नन्द राजा मगध का प्रसिद्ध शासक महापदमनन्द था अथवा कलिंग का कोई स्थानीय शासक था। छठे वर्ष में एक लाख मुद्रा व्यय करके खारवेल ने अपनी प्रजा को सुखी रखने के लिये अनेक प्रयास किये। उसने ग्रामीण तथा शहरी जनता के कर माफ कर दिये। उसके राज्यारोहण के सातवें वर्ष का विवरण संदिग्ध है।

अपने अभिषेक के आठवें वर्ष में खारवेल ने उत्तर भारत में सैनिक अभियान किया। उसकी सेना ने गोरथगिरि (बराबर की पहाड़ियों) को पार करते हुये तथा मार्ग में दुर्गों को ध्वस्त करते हुये घेरा डाला। उसकी सेना के डर से यवनराज दिमिति की सेना आतंकित हो गयी और वह मथुरा भागा।

इस यवन शासक की पहचान सुनिश्चित नहीं है। स्टेनकोनो नामक विद्वान् ने इसका समीकरण डेमेट्रियस प्रथम अथवा द्वितीय से स्थापित किया है। कुछ अन्य विद्वान् इसे कोई हिन्द यवन अथवा शक शासक मानने के पक्ष में हैं। किन्तु इस संबंध में हम निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकते।

नवें वर्ष उसने अपनी उत्तर भारत की विजय के उपलक्ष्य में प्राची नगर के दोनों किनारों पर 'महाविजय प्रासाद' बनवाये। उसने ब्राह्मणों को दानादि दिये तथा आगे भी विजय के लिये सैनिक तैयारियां कीं। दसवें वर्ष उसने पुनः भारतवर्ष यानी गंगा–घाटी पर आक्रमण किया, परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

टिप्पणी

ग्यारहवें वर्ष में खारवेल ने दक्षिण भारत की ओर ध्यान दिया। उसकी सेना ने पिथुन्ड नगर (मद्रास के निकट) को ध्वस्त किया तथा और आगे दक्षिण की ओर जाकर तमिल संघ का भेदन किया (भिदति त्रमिर–दह–संघात)। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सामना करने के लिये सुदूर दक्षिण के तमिल राजाओं ने कोई संघ बना लिया जिसे खारवेल ने नष्ट कर दिया।

लेख के अनुसार खारवेल ने पिथुण्ड नगर में गदहों का हल चलवाया था। इस नगर की पहचान मसूलीपट्टम् के निकट स्थित पिटुण्ड्र नामक स्थान से की जाती है जिसका उल्लेख टालमी ने किया है। सुदूर दक्षिण में विजय करते हुए खारवेल पाण्ड्य राज्य तक जा पहुंचा।

बारहवें वर्ष खारवेल ने दो सैन्य अभियान किये–एक उत्तर भारत तथा दूसरा दक्षिण भारत में। सर्वप्रथम उसने अपनी सेना को उत्तर भारत के मैदानों में भेजा तथा उसने अपने अश्वों एवं हाथियों को गंगा नदी में स्नान करवाया।

मगध नरेश, जिसका नाम डॉ. जायसवाल तथा डॉ. बरुआ ने 'बहसतिमित्र' (बृहस्पतिमित्र) पढ़ा है, पराजित हुआ तथा उसने खारवेल की आधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार यह अभियान सफल रहा तथा खारवेल अपार लूट की सम्पत्ति तथा कलिंग की जिन–प्रतिमा, जिसे तीन शताब्दियों पूर्व नन्दशासक द्वारा मगध ले जाया गया था, को लेकर अपनी राजधानी वापस लौटा।

इस धन की सहायता से उसने सुन्दर टावरों से सुसज्जित एक भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया। डॉ. बरुआ के अनुसार यह मन्दिर भुवनेश्वर में बनवाया गया था। ब्रह्माण्ड पुराण की उड़िया पांडुलिपि के एक संदर्भ से इसकी पुष्टि होती है, जिसमें खारवेल को भुवनेश्वर में एक मन्दिर बनवाने का श्रेय दिया गया है।

उत्तरी अभियान से निवृत्त होने के उपरान्त खारवेल ने बारहवें वर्ष ही दक्षिण की ओर पुनः एक अभियान किया। वह सुदूर दक्षिण में स्थित पाण्ड्य राज्य तक जा पहुंचा। बताया गया है कि उसने जल तथा थल दोनों ही मार्गों से पाण्ड्यों की राजधानी पर धावा बोला। यह अभियान पूर्णरूपेण सफल रहा।

पाण्ड्य नरेश ने उसकी आधीनता स्वीकार की तथा उसके लिये मुक्तामणियों का उपहार दिया। यह खारवेल का अन्तिम सैन्य अभियान था। वह अपने साथ सम्पत्ति लेकर अपनी राजधानी वापस लौट आया। अपने शासन के तेरहवें वर्ष में खारवेल ने कुमारीपहाड़ी पर जैन भिक्षुओं के निवास के निमित्त गुहाविहारों का निर्माण करवाया था। कुमारीपहाड़ी से तात्पर्य उदयगिरि–खंडगिरि की पहाड़ियों से है।

4. चेदि राजवंश का धर्म तथा धार्मिक नीति

सातवाहन नरेशों के विपरीत खारवेल जैन धर्म का अनुयायी था। उसने जैन साधुओं को संरक्षण प्रदान किया, उनके निर्वाह के लिये प्रभूत दान दिये तथा उनके रहने के लिये आरामदायक निवास स्थान बनवाये। हाथीगुंफा लेख का उद्देश्य उदयगिरि पहाड़ी पर बनवाये गये ऐसे ही भिक्षु आवासों का विवरण सुरक्षित रखना था।

टिप्पणी

परन्तु स्वयं जैन होते हुए भी वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था। हाथीगुंफा के लेख से पता चलता है कि उसने सभी देवताओं के मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया था तथा वह अशोक के समान सभी सम्प्रदायों का समान रूप से आदर करता था।

5. चेदि राजवंश के निर्माण–कार्य

खारवेल एक महान् निर्माता भी था। उसने राजा होते ही अपनी राजधानी को प्राचीरों तथा तोरणों से अलंकृत करवाया। अपने राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष उसने भुवनेश्वर के पास उदयगिरि तथा खंडगिरि की पहाड़ियों को कटवा कर जैन भिक्षुओं के आवास के लिये गुहा–विहार बनवाये थे। उदयगिरि में 19 तथा खण्डगिरि में 16 गुहा विहारों का निर्माण हुआ था।

उदयगिरि में रानीगुंफा तथा खंडगिरि में अनन्तगुंफा की गुफाओं में उत्कीर्ण रिलीफ चित्रकला की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। इन चित्रों में तत्कालीन समाज के जनजीवन की मनोरम झांकी सुरक्षित है। उसके द्वारा बनवाया गया 'महाविजय प्रासाद' भी एक अत्यन्त भव्य भवन था।

6. चेदि राजवंश का मूल्यांकन

खारवेल के जीवन एवं कृतियों का जो विवरण हमें प्राप्त है उससे यह स्पष्ट है कि वह एक महान् विजेता, लोकोपकारी शासक, महान् निर्माता तथा धर्म–सहिष्णु सम्राट था। यह स्वयं विद्वान तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। अभिलेख में उसे 'राजर्षि' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त लेमराज, वृद्धराज, भिक्षुराज, धर्मराज तथा महाविजयराज जैसे विशेषणों का प्रयोग भी उसके लिये मिलता है। इनसे सूचित होता है कि खारवेल में एक ही साथ राजविजयी एवं धर्मावजयी शासक के गुणों का समन्वय था।

वस्तुतः वह हमारे समक्ष एक उल्का की भांति उपस्थित होता है। उसकी उपलब्धियां हमें उस विद्युत प्रकाश के समान चकाचौंध करती हैं जो क्षण मात्र के लिये चमक कर तिरोहित हो जाता है। संभव है हाथीगुंफा अभिलेख का विवरण अतिश्योक्तिपूर्ण हो, परन्तु फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह एक असाधारण योग्यता वाला सेनानायक था और उसके समय में कलिंग का राज्य अपने गौरव की पराकाष्ठा पर पहुंच गया जिसे वह उसकी मृत्यु के शताब्दियों बाद भी पुनः नहीं प्राप्त कर सका।

उनकी रानी के लेख में उसे चक्रवर्ती शासक कहा गया है। उसका अन्त किन परिस्थितियों में हुआ, यह हमें ज्ञात नहीं है। वस्तुतः जितनी तेजी से उसका उत्थान हुआ, उतनी ही तेजी से पतन भी हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका शक्तिशाली साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया।

खारवेल ने कुल 13 वर्षों तक राज्य किया। उसकी तिथि के विषय में विवाद है। हाथीगुंफा अभिलेख की लिपि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के आस–पास की है। अतः हम खारवेल को ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में रख सकते हैं। अभिलेख के अन्तःसाक्ष्य से भी इसी तिथि की पुष्टि होती है। इसकी छठीं पंक्ति में कहा गया है कि खारवेल ने तनसुलि से एक नहर का विस्तार अपनी राजधानी तक किया था।

टिप्पणी

इस नहर का निर्माण उसके 300 वर्षों पूर्व मगध के नन्द राजा ने करवाया था। यह नन्द राजा महापदमनन्द ही है जिसकी तिथि ईसा पूर्व 344 मानी जाती है। अतः खारवेल का समय 344 – 300 = 44 ईसा पूर्व में निश्चित होता है।

हाथीगुंफा लेख

उड़ीसा प्रान्त के पुरी जिले में भुवनेश्वर मन्दिर से तीन मील पश्चिम की ओर उदयगिरि–खंडगिरि की पहाड़ियां स्थित है जिनमें प्राचीन जैन गुफायें खोदी गयी हैं। इन्हीं में से एक का नाम हाथीगुंफा है। यहीं सत्रह पंक्तियों में ब्राह्मी लिपि में यह लेख खुदा हुआ है। भाषा प्राकृत है जो पाली से मिलती–जुलती है। इस लेख में कोई तिथि नहीं दी गयी है। लिपिशास्त्र के आधार पर इसे ईसा पूर्व पहली शताब्दी का माना जाता है। इसके रचयिता का नाम भी अज्ञात है।

सर्वप्रथम 1825 ई. में इस लेख की खोज बिशप स्टर्लिंग ने की थी। इसके बाद प्रिंसेप ने इसका वाचन किया, लेकिन वह शुद्ध नहीं था। 1880 ई. में राजेन्द्र लाल मित्र ने इसका दूसरा पाठ और अर्थ प्रकाशित किया लेकिन वह भी अपूर्ण ही रहा। 1877 ई. में जनरल कनिंघम तथा 1885 में भगवान लाल इन्द्र जी द्वारा इसका शुद्ध पाठ प्रस्तुत किया गया जिनमें राजा का नाम 'खारवेल' सही ढंग से पढ़ा गया।

पहली बार डा. के. पी. जायसवाल ने 1917 ई. में इसका छायाचित्र जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी में प्रकाशित करवाया। तत्पश्चात् आर. डी. बनर्जी, ब्यूलर, फ्लीट, टामस, बी. एम. बरूआ, स्टेनकोनो, डी. सी. सरकार, शशिकान्त आदि अनेक विद्वानों ने इस लेख पर महत्वपूर्ण शोधकार्य किये।

हाथीगुंफा लेख एक प्रशस्ति के रूप में है जिसका मुख्य उद्देश्य खारवेल के जीवन तथा उपलब्धियों का विवरण सुरक्षित रखना है। जायसवाल का अनुमान है कि इसका लेखक कोई वरिष्ठ पदाधिकारी था जिसने खारवेल को बचपन से देखा होगा।

हाथीगुंफा लेख का हिन्दी भाषान्तर

अर्हन्तों को नमस्कार। सभी सिद्धों को नमस्कार। आर्य महाराज, महामेघवाहन, चेदिराजवंशवर्धन, प्रशस्त एवं शुभ लक्षणों से युक्त, चारों दिशाओं में व्याप्त गुणों वाले, कलिंग के राजा श्री खारवेल द्वारा पन्द्रह वर्ष तक गौर वर्ण वाले शरीर से कुमार क्रीड़ायें की गयीं।

तत्पश्चात् लेख, रूप, गणना, कानून तथा व्यवहार में प्रवीण, समस्त विद्याओं में विशारद उसके द्वारा युवराज पद नौ वर्ष तक विद्यमान रहा गया। चौबीस वर्ष पूर्ण हो जाने पर (वह), जो बचपन से ही वर्धमान तथा विजय में वेन पुत्र (पृथु) तुल्य था, कलिंग राजवंश तीसरे पुरुषयुग में महाराज अभिषेक को प्राप्त हुआ।

अभिषेक के बाद प्रथम वर्ष में कलिंग नगरी में तूफान से नष्ट हुए गोपुरों, प्राचीरों तथा भवनों की (उसने) मरम्मत करवाई तथा नगर का प्रति संस्कार करवाया। शीतल तथा सोपान युक्त तालाबों एवं उद्यानों का निर्माण करवाया। पैंतीस लाख मुद्रा खर्च कर प्रजा का मनोरंजन किया।

टिप्पणी

दूसरे वर्ष में शातकर्णी की उपेक्षा करते हुए उसने अश्व, गज, पैदल तथा रथों की विशाल सेना पश्चिम की ओर भेजी। उस सेना ने कण्वेणा नदी तक जाकर असिक नगर में आतंक फैलाया। तीसरे वर्ष में गन्धर्व विद्या प्रवीण ने नृत्य, गीत, वाद्य, उत्सव तथा समाज का आयोजन कर नागरिकों का मनोरंजन किया।

चौथे वर्ष विद्याघरों की बस्ती जिस पर पहले कभी आक्रमण नहीं हुआ था, में निवास किया। सब रथिकों और भोजकों से, जो अपने रत्नों और सम्पत्ति से विहीन कर दिये गये थे (उसने) अपने चरणों की वन्दना करवायी। पांचवें वर्ष में नन्दराज द्वारा तीन सौ वर्ष पहले खुदवायी गयी नहर को तनसुलि मार्ग से नगर (राजधानी) में ले आया।

छठे वर्ष उसने राजैश्वर्य प्रदर्शित करते हुए गांवों तथा नगरों के निवासियों पर अनेक अनुग्रह किया। सब प्रकार के लाखों कर माफ किये। सातवें वर्ष में वाजिरघर आठवें वर्ष गोरथगिरि पर विशाल सेना लेकर आक्रमण कर घेरा डाला।

उसके आतंक से यवनराज दिमिति मथुरा भागा। नौवें वर्ष में फल एवं पल्लवों से परिपूर्ण कल्पवृक्ष के समान अश्व गज, रथ, भवन तथा शालायें दान में दिया। इन सबको ग्रहण कराने के लिये ब्राह्मणों को जय परिहार (विजय प्राप्ति के उपलक्ष में कर मुक्त जागीरें) दिए।

अड़तीस लाख व्यय करके महाविजयप्रासाद बनवाया। दसवें वर्ष दण्ड संधि तथा सामनीति के ज्ञात ने (खारवेल ने) पृथ्वी विजय हेतु भारत को प्रस्थान किया, ग्यारहवें वर्ष में पराजितों से मणि और रत्न प्राप्त किया। एक पूर्व राजा द्वारा स्थापित पिथुण्ड नगर को ध्वस्त कर गधों का हल चलवा दिया, जनपद के कल्याण के लिये तेरह सौ वर्षों से स्थापित तमिलसंघ को छिन्न–भिन्न कर दिए।

बारहवें वर्ष उत्तरापथ के राजाओं को भयभीत किया। मगध के लोगों में विपुल भय उत्पन्न करके हाथियों तथा घोड़ों को गंगा का जल पिलाया, मगध नरेश बहसति मित्र से अपने चरणों की पूजा करवायी। नन्द राज द्वारा कलिंग से ले जायी गयी 'जिन' की प्रतिमा को वापस लाने के साथ–साथ अंग तथा मगध की सम्पदा भी ले आया।

शतविंशक (मुद्रायें) व्यय करके दृढ़ और सुन्दर तोरण द्वार और शिखर बनवाये। अद्‌भुत तथा आश्चर्यजनक हस्ति निवास का अपहरण किया। पाण्डय राजा से अश्व, रथ, रत्न माणिक्य तथा बहुमूल्य मणिमुक्ताओं का हार प्राप्त किया जो लाखों की संख्या में थे।

तेरहवें वर्ष विजय चक्र के प्रवर्त्तन के साथ आश्रयहीन धर्मोपदेशक अर्हतों के विश्राम के लिये खारवेल ने कुमारी पर्वत पर विश्रामस्थल के रूप में आरामदायक गुफाऐं उत्कीर्ण करवायीं तथा व्रत का अनुष्ठान पूर्ण कर चुके जैनियों को रेशमी वस्त्र प्रदान किये।

श्रमणों का सत्कार करने वाले श्री खारवेल ने सब दिशाओं से आने वाले ज्ञानियों, तपस्वियों, ऋषियों और संधियों का अर्हतों के विश्रामाश्रय के पास पर्वत पृष्ठ पर कई योजन से लाई गयी, भली भांति स्थापित की गयी शिलाओं से गर्भगृह में लाखों मुद्राएं खर्च करके वैदूर्य युक्त चार स्तम्भ स्थापित करवाये।

टिप्पणी

मुख्य कलाओं से युक्त चौंसठ प्रकार के वाद्यों से समन्वित शन्तिपूर्ण वाद्यध्वनि उत्पन्न कराई। क्षेमराज, वृद्धराज, भिक्षुराज, धर्मराज कलाओं को देखते, सुनते तथा अनुभव करते हुए विशेष गुणों में कुशल, सभी सम्प्रदाओं का उपासक, सभी देवमन्दिरों का उद्धारक, अपराजित राज्य और सेना से बलवान, सुप्रतिष्ठित राजचक्रवाला, राजमण्डल द्वारा सुरक्षित और अनुलंघित शासन वाला (वह राजा था)।

अपनी प्रगति जांचिए

3. हाथीगुंफा अभिलेख में किस राजवंश के राजा का वर्णन है?

(क) सातवाहन (ख) शक

(ग) चेदि (घ) इनमें से कोई नहीं

4. कौन सा राज्य चेदि वंश के शासन का महत्वपूर्ण भाग था?

(क) कर्नाटक (ख) पंजाब

(ग) असम (घ) उड़ीसा

3.4 शक

भारत पर अनेक विदेशी जातियों ने आक्रमण किया जिनमें से एक शक भी थे। शकों के लिए सीथियन शब्द का प्रयोग भी किया गया है। चीन में हूणों ने यूची कबीले को पराजित कर दिया तत्पश्चात इस कबीले ने शकों पर आक्रमण कर, शकों को वहां से भागने के

टिप्पणी

लिए विवश किया। शकों ने बैक्ट्रिया पर आक्रमण किया परंतु यूनानी अत्यधिक शक्तिशाली थे अत: शक काबुल में प्रवेश न कर सके। परिणामस्वरूप वह भारत में आ बसे। यहीं से वह विभिन्न भागों में विभक्त हो गए और इन्होंने नए-नए राजवंशों की स्थापना की; जैसे–(1) सिंध और पश्चिमी पंजाब का शक कुल (2) उत्तर-पश्चिम के क्षत्रप (3) मथुरा के क्षपत्र (4) महाराष्ट्र का क्षहरात कुल (5) उज्जैन के क्षत्रप।

सिंध व पश्चिमी पंजाब के क्षत्रप–'क्षत्रप' ईरानी शब्द है जिसका अर्थ 'प्रांत का शासक' होता है। शक शासकों में प्रथम विजेता माउस था। इसने महाराज की उपाधि धारण की। अनेक मुद्राओं में माउस के साथ ग्रीक देवताओं, बुद्ध एवं शिव की आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। माउस के पश्चात एजेस शासक बना। उसने पूर्वी पंजाब पर अधिकार किया था। एजेस के पश्चात शक एजिलिसेस तत्पश्चात ऐजेस द्वितीय शासक बना। इसके पश्चात शक प्रांतों पर गॉडो फर्नीज का अधिकार हो गया।

उत्तर पश्चिम के क्षत्रप–'क्षत्रप' राज्यों की रक्षा करने वाले को कहा जाता है। ये क्षत्रप स्वतंत्र राजा न थे वरन शक सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में प्रांतीय शासन चलाते थे। माउस ने शासन में सुविधा के लिए क्षत्रप नियुक्त किए। यह क्षत्रप व महाक्षत्रप होते थे। तक्षशिला ताम्रलेख में लियक कुसुलक और उसके पुत्र पतिक का नाम मिलता है।

मथुरा के क्षत्रप–इस कुल के प्रारंभिक सम्राट हगान और हगामस थे। डॉ. स्मिथ का मत है– राजुल उसका उत्तराधिकारी था। यह पहले क्षत्रप था अथवा महाक्षत्रप। राजुल के पश्चात सुदास (शोडास) सम्राट बना। इसके बाद का इतिहास ज्ञात नहीं है।

महाराष्ट्र के क्षत्रप–महाराष्ट्र में शकों का एक प्रसिद्ध राजवंश प्रतिष्ठित हुआ, जिसे क्षहरात वंश कहा गया। डॉ. त्रिपाठी का मत है कि छहर में रहने वाले होने के कारण इन्हें क्षहरात कहा गया। क्षहरात का प्रथम क्षत्रप भूमक था। इनकी मुद्रा पर बाण-चक्र वज्र तथा खरोष्ठी व ब्राह्मी लिपि मिलती है। इस शाखा का सर्वाधिक प्रसिद्ध सम्राट नहपान था। नहपान ने सातवाहनों पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी परंतु कुछ समय पश्चात शातकर्णी ने इसकी शक्ति समाप्त कर दी थी। इसके वंशजों के विषय में जानकारी प्राप्त नहीं होती।

उज्जैन के क्षत्रप–उज्जैन के क्षत्रपों ने सबसे अधिक समय तक शासन किया। इस वंश का संस्थापक यशोमतिक था। यद्यपि संस्थापक यशोमतिक था परंतु चष्टन ने वास्तविक रूप से इस वंश को प्रारंभ किया। इसने कुषाणों के समय सामन्त के रूप में शासन किया। डुब्रुए के अनुसार वह गौतमी पुत्र शातकर्णी का सामन्त था। चष्टन के पश्चात जयदामन क्षत्रप बना तत्पश्चात रूद्रदामन शासक बना। वह इस वंश का सबसे प्रतिभाशाली, साहसी व प्रतापी सम्राट था। उसने यौधेय, शातकर्णी को पराजित किया। उसने अपने साम्राज्य का अत्यधिक विकास किया। इसके अधीन गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंधु, उत्तरी कोंकण मांधता, पूर्वी व पश्चिमी मालवा, राजपूताना आदि थे। रूद्रादमन विद्वानों का आश्रयदाता था। परंतु रूद्रदामन के पश्चात इसमें उत्तराधिकारियों के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. किस जाति को एक अन्य नाम 'सीथियन' से भी जाना जाता है?

(क) शक (ख) सातवाहन

(ग) कुषाण (घ) चेदि

6. 'क्षत्रप' किस भाषा का शब्द है?

(क) यूनानी (ख) ईरानी

(ग) चीनी (घ) इनमें से कोई नहीं

3.5 कुषाण

कुषाणों के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। अधिकांश विद्वानों के अनुसार कुषाणों का संबंध चीन के उत्तर पश्चिम में रहने वाली यूची जाति से है। 65 ईसापूर्व यूची जाति अथवा बैयिरिपन जाति चीन के कानसू प्रदेश में रहती थी। ये लोग हांगनू जाति से परिचित होकर सुरदरिया घाटी पहुंचे। कुछ समय पश्चात् वुसुन जाति के लोगों ने भगा दिया तो इन्होंने वक्षु नदी तट पर आकर ताहिपा प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यहां यह जाति पांच भागों में बंट गयी। इनकी एक शाखा ही कुषाण है। पुरी तथा टेम्स का मानना है कि शक व कुषाण के नामों में अंतिम दो अक्षरों में समानता है। अत: शक कुषाण ही रहे होंगे। कैनेडी कुषाणों को तुर्क मानते हैं।

कनिष्क

कनिष्क कुषाण वंश का सर्वश्रेष्ठ, प्रभावशाली व प्रतिभाशाली शासक था। त्रिपाठी का मत है– ''चंद्रगुप्त मौर्य की सैनिक योग्यता तथा अशोक का धार्मिक उत्साह दोनों उसमें समान मात्रा में उपलब्ध थे।'' कनिष्क की राज्यारोहण की तिथि में मतभेद है परंतु अधिकांश

विद्वान 78 ईसवी मानते हैं। कनिष्क ने 78 ई. में शक संवत की स्थापना की थी।

कनिष्क की विजयें

कनिष्क अनेक समरों का विजेता था। जिनमें प्रमुख विजयें निम्नवत हैं-

टिप्पणी

पार्थिया से युद्ध–कनिष्क के राज्य की सीमाएं पार्थियन राज्य से मिली हुई थीं। चीनी साहित्यकार के अनुसार–नान-सी के राजा ने देवपुत्र कनिष्क पर आक्रमण कर दिया परन्तु इस युद्ध में उसे सफलता नहीं मिली। कनिष्क ने उसे परास्त कर दिया। विद्वानों ने नान-सी का समीकरण पार्थियन से किया है।

चीन से युद्ध–ह्वेनसांग का कथन है कि गांधार व पुरुषपुर के अलावा सुंगमित्र पर्वतों से पूर्व में भी कनिष्क का अधिकार था। चीनी नदी के पंजाब में रहने वाली जातियां इससे भयभीत हो गईं और उन्होंने अपने राजकुमारों को बंधक के रूप में कनिष्क के दरबार में भेजा। चीनी वृतान्तों में यूची राजा का उल्लेख हुआ है जिसमें चीनी हाल वंशी राजा के सेनापति पान-चाओ द्वारा खोतान, काशगर आदि की विजयों के बाद तथा कैस्पियन सागर अभियान के बाद चीनी सम्राट की वणवटी पर दावा सिद्ध करने के लिए चीनी राजकुमारी से विवाह का प्रस्ताव रखा। पान-चाओ ने अपमान समझकर राजदूत को बंदी बना लिया। यह सुनकर कनिष्क ने पान-चाओ पर आक्रमण कर दिया। शीत व पर्वतीय मार्ग की कठिनाई के कारण सेना का एक भाग नष्ट हो गया अतः खोतान में कनिष्क की सेना की हार हुई। कनिष्क ने स्वयं कहा था मैंने तीनों दिशाओं को अधीन कर लिया, केवल उत्तरी प्रदेश ही आत्मसमर्पण के लिए नहीं आया।

रोम, मध्य एशिया, बैक्ट्रिया से संबंध–रोम व पार्थिया के मध्य शत्रुता थी अतः कनिष्क ने पार्थिया से बदला लेने के लिए रोम से मित्रता की। ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि उसका साम्राज्य मध्य एशिया में यारकंद, खोतान काशगर तक था। बैक्ट्रिया पर भी कनिष्क का अधिकार था।

उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत–इस प्रदेश में स्थित पुरुषपुर (पेशावर) कनिष्क की राजधानी थी जहां उसने 400 फीट ऊंची मीनार बनवाई।

कश्मीर–चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन कश्मीर के कुण्डलवन में हुआ। यहां उसने कनिष्कपुर की स्थापना की थी। स्मिथ के अनुसार अपने राज्यकाल के आरंभिक वर्षों में कनिष्क ने कश्मीर में विजयनगर की स्थापना की।

बिहार–बिहार में कनिष्क की मुद्राएं मिली हैं। धर्मपिटक संप्रदाय निदान-सूत्र के अनुसार देवपुत्र (कनिष्क) ने होआ चू (पाटलिपुत्र) पर आक्रमण कर उसके राजा को परास्त किया और उससे एक लाख स्वर्णमुद्राएं मांगी थीं। राजा ने मुद्राओं के स्थान पर कनिष्क को बुद्ध का भिक्षा पात्र दिया था। इससे स्पष्ट होता है कि कनिष्क ने बिहार पर भी विजय प्राप्त की।

नेपाल–लिच्छिवियों द्वारा कनिष्क के संवत का प्रयोग मात्र से यह प्रमाणित होता है कि इस प्रदेश पर कनिष्क का अधिकार था।

टिप्पणी

पश्चिमी भारत–कनिष्क ने क्षहरात वंश व गुजरात काठियावाड़ तथा चष्टन वंश को अपनी अधीनता स्वीकार करवाई। इन दोनों वंशों के राजाओं की मुद्राओं व लेखों पर कुषाणों का उल्लेख नहीं है। अत: यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता है कि यहां पर कनिष्क का अधिकार था अथवा नहीं।

कनिष्क का साम्राज्य विस्तार–कनिष्क का साम्राज्य समस्त उत्तर पश्चिम भारत और संभवतया विंध्य पर्वत तक फैला हुआ था। राय चौधरी का मत है कि कनिष्क ने मध्य एशिया में भी भारतीय संस्कृति के लिए मार्ग खोल दिए।

कनिष्क की सांस्कृतिक उपलब्धियां

कनिष्क एक विजेता ही नहीं था वरन् विद्वानों का संरक्षक, कला का पारखी व धार्मिक व्यक्ति था। उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियां अग्रलिखित हैं–

साहित्य एवं विद्वानों का संरक्षक–सिल्वालेनी ने लिखा है–कनिष्क भारतीय इतिहास का महान विद्याप्रेमी सम्राट था। उसने अपनी राज्यसभा में विद्यानुयायियों को आश्रय देकर भारतीय विद्वानों के विकास में भारी योगदान दिया। कनिष्क के समय अश्वघोष का बुद्धचरित व सौन्दरनंद, शून्यवाद का जन्मदाता नागार्जुन, पार्श्व व वसुमित्र दरबार में शोभा पाते थे। आयुर्वेदाचार्य चरम मातृचेट अर्ध्यसतकम, सापेक्ष्यवाद (नागार्जुन) का प्रतिपादन व प्रजापारमिता सूत्र में माध्यमिका दर्शन का प्रतिपादन किया। राय चौधरी का मत है-''इस समय न केवल विशुद्ध साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुई थी अपितु दर्शनशास्त्र व चिकित्साविज्ञान पर भी ग्रंथ लिखे गए।''

धर्म के क्षेत्र में उन्नति–कनिष्क ने धर्म के क्षेत्र अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। वह बौद्ध धर्म का संरक्षक था। यद्यपि कनिष्क जन्म से विदेशी था परन्तु उसका हृदय भारतीय था। बी.जी. गोखले के अनुसार -''कनिष्क की ख्याति, उसकी शक्ति और रणकौशल में उसकी योग्यता के कारण उतनी नहीं है जितनी बौद्ध मत को प्रोत्साहित करने और संरक्षण देने के कारण है।''

कनिष्क ने न केवल बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्रदान कर कनिष्कपुर, पुरुषपुर, मथुरा, तक्षशिला में स्तूप व विहार बनवाए और बौद्ध भिक्षुओं को मध्य एशिया, चीन, तिब्बत, जापान भेजा। पुरुषपुर में 400 फीट ऊंची और 3 मंजिलों की मीनारों के समीप विशाल बौद्ध विहारों का निर्माण करवाया। कनिष्क ने चैत्य का भी निर्माण करवाकर प्रसिद्धि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त मथुरा तक्षशिला पेशावर नगरों में बुद्ध की प्रतिमा बनवाई।

चतुर्थ बौद्ध संगीति–कनिष्क ने कश्मीर के कुण्डलवन में चतुर्थ संगीति का आयोजन करवाया। इस संगीति की अध्यक्षता वसुमित्र ने की थी। इस संगीति में ही महायान का उदय हुआ। प्रो. घोष के अनुसार इस संगीति ने दो कार्य किए। एक तो नवीन विचारों व बौद्ध धर्म की कतिपय नवीन विचारधाराओं के विकास को प्रकाश में लाकर धर्मग्रंथों को नए ढंग से लिपिबद्ध किया तथा महायान शाखा को राजधर्म बनाकर प्रचार किया। कनिष्क एकधर्म सहिष्णु सम्राट था। इसने बौद्ध धर्म को संरक्षण तो दिया था परंतु अन्य धर्मों की उन्नति हेतु भी प्रयास किया था क्योंकि कनिष्क की मुद्राओं पर सूर्य, अग्नि चंद्रमा की प्रतिमाएं भी मिलती हैं।

टिप्पणी

कलाओं की उन्नति–कनिष्क एक कलाप्रिय सम्राट था। भरहुत व स्तूपों में बुद्ध को प्रतीकों द्वारा चित्रित किया है। क्रिसमस हम्फी ने लिखा है-''कला के ऊपर बड़ा गंभीर प्रभाव था क्योंकि पूजा की भावना ने उन उच्चतर भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की जिनमें समस्त महती कला के मूल पाए गए।

कनिष्क के काल में ही नवीन कलाओं का जन्म हुआ जिसे गांधार कला व मथुरा कला कहा जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. कुषाणों का मूल संबंध किस देश से है?

(क) इरान (ख) यूनान

(ग) चीन (घ) इनमें से कोई नहीं

8. कनिष्क ने पर्शिया से बदला लेने के लिए किस देश से मित्रता की?

(क) रोम (ख) चीन

(ग) ईरान (घ) इनमें से कोई नहीं

3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (घ)
5. (क)
6. (ख)
7. (ग)
8. (क)

3.7 सारांश

27 ईसा पूर्व में कण्व वंश का अंत कर सातवाहनों ने शासन किया परंतु सातवाहनों की जाति व मूल निवास स्थान के संबंध में मतभेद है। पुराणों में कण्व वंश का नाश करने वाला सिमुक आंध्र, आंध्र जातीय या आन्ध्र भृत्य कहा गया है। आंध्र दक्षिण की अनार्य जाति थी। जबकि अधिकांश विद्वान सातवाहनों को ब्राह्मण स्वीकारते हैं।

सातवाहन वंश का संस्थापक सिमुक था जिसे शिशुक, सिन्धुक, शिप्रक भी कहा जाता है। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान थी। इसने 23 वर्ष तक शासन किया। सिमुक के पश्चात कृष्ण गद्दी पर बैठा तत्पश्चात शातकर्णी गद्दी पर आसीन हुआ। यह अपने वंश का

टिप्पणी

सबसे प्रतापी सम्राट था। शातकर्णी को सिमुक वंश का धन (सिमुकसातवाहन वंश वध नस) कहा है। उसने महाराष्ट्र के महारथी की कन्या से विवाह कर अपने प्रभाव में वृद्धि की। नानाघाट अभिलेख में उसे अप्रतिहत चक्रदक्षिणापथ अर्थात संपूर्ण दक्षिण का अधिकारी कहा गया है। इसने दो बार अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान कराकर ब्राह्मण धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

गौतमी पुत्र शातकर्णी 106 ईसा पूर्व सम्राट बना। वह गौतमी बलश्री का पुत्र व अपने वंश का 23वां सम्राट था। वह सातवाहन वंश का सबसे योग्य व पराक्रमी सम्राट था। उसके लिए वर-वरण-विक्रम, चारू, विक्रम आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है। उसने अपने वंश की मान प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित किया। नासिक प्रशस्ति में लिखा है, ''शातकर्णी ने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की जिसकी विजय पताका अपराजित थी, जिसकी राजधानी शत्रुओं के आक्रमण से परे थी, जो शक्ति में राम, केशव, अर्जुन, भीमसेन के समान था तथा जो यश में नहुष, जनमेजय, सगर, ययाति से कम न था।

सम्भवतः कलिंग के चेदि राजवंश का संस्थापक महामेघवाहन नामक व्यक्ति था। अतः इस वंश का नाम महामेघवाहन वंश भी पड़ गया। इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा खारवेल हुआ। खारवेल प्राचीन भारतीय इतिहास के महानतम सम्राटों में से एक है।

राजा होने के पश्चात् प्रथम वर्ष उसने अपनी राजधानी कलिंग नगर में निर्माण कार्य करवाया। उसने तोरणों तथा प्राचीरों की मरम्मत करवाई जो तूफान में ध्वस्त हो गये थे। उसने शीतल जल से युक्त तड़ागों का भी निर्माण करवाया। इन कार्यों में उसने पांच लाख मुद्रायें व्यय कर दीं। इस प्रकार उसने अपनी प्रजा में व्यापक लोकप्रियता प्राप्त कर ली तथा राजा के रूप में उसकी स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गयी। तत्पश्चात् उसने दिग्विजय के निमित्त एक व्यापक योजना तैयार की।

अपने अभिषेक के आठवें वर्ष में खारवेल ने उत्तर भारत में सैनिक अभियान किया। उसकी सेना ने गोरथगिरि (बराबर की पहाड़ियों) को पार करते हुये तथा मार्ग में दुर्गों को ध्वस्त करते हुये घेरा डाला। उसकी सेना के डर से यवनराज दिमिति की सेना आतंकित हो गयी और वह मथुरा भागा।

इस यवन शासक की पहचान सुनिश्चित नहीं है। स्टेनकोनो नामक विद्वान् ने इसका समीकरण डेमेट्रियस प्रथम अथवा द्वितीय से स्थापित किया है। कुछ अन्य विद्वान् इसे कोई हिन्द यवन अथवा शक शासक मानने के पक्ष में हैं।

वस्तुतः वह हमारे समक्ष एक उल्का की भांति उपस्थित होता है। उसकी उपलब्धियां हमें उस विद्युत प्रकाश के समान चकाचौंध करती हैं जो क्षण मात्र के लिये चमक कर तिरोहित हो जाता है। संभव है हाथीगुंफा अभिलेख का विवरण अतिश्योक्तिपूर्ण हो, परन्तु फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह एक असाधारण योग्यता वाला सेनानायक था और उसके समय में कलिंग का राज्य अपने गौरव की पराकाष्ठा पर पहुंच गया जिसे वह उसकी मृत्यु के शताब्दियों बाद भी पुनः नहीं प्राप्त कर सका।

टिप्पणी

भारत पर अनेक विदेशी जातियों ने आक्रमण किया जिनमें से एक शक भी थे। शकों के लिए सीथियन शब्द का प्रयोग भी किया गया है। चीन में हूणों ने यूची कबीले को पराजित कर दिया तत्पश्चात इस कबीले ने शकों पर आक्रमण कर, शकों को वहां से भागने के लिए विवश किया। शकों ने बैक्ट्रिया पर आक्रमण किया परंतु यूनानी अत्यधिक शक्तिशाली थे अत: शक काबुल में प्रवेश न कर सके। परिणामस्वरूप वह भारत में आ बसे। यहीं से वह विभिन्न भागों में विभक्त हो गए और इन्होंने नए-नए राजवंशों की स्थापना की।

कुषाणों के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। अधिकांश विद्वानों के अनुसार कुषाणों का संबंध चीन के उत्तर पश्चिम में रहने वाली यूची जाति से है। 65 ईसापूर्व यूची जाति अथवा बैयिरिपन जाति चीन के कानसू प्रदेश में रहती थी। ये लोग हांगनू जाति से परिचित होकर सुरदरिया घाटी पहुंचे। कुछ समय पश्चात् वुसुन जाति के लोगों ने भगा दिया तो इन्होंने वक्षु नदी तट पर आकर ताहिपा प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यहां यह जाति पांच भागों में बंट गयी। इनकी एक शाखा ही कुषाण है।

कनिष्क कुषाण वंश का सर्वश्रेष्ठ, प्रभावशाली व प्रतिभाशाली शासक था। त्रिपाठी का मत है– ''चंद्रगुप्त मौर्य की सैनिक योग्यता तथा अशोक का धार्मिक उत्साह दोनों उसमें समान मात्रा में उपलब्ध थे।'' कनिष्क की राज्यारोहण की तिथि में मतभेद है परंतु अधिकांश विद्वान 78 ईसवी मानते हैं। कनिष्क ने 78 ई. में शक संवत की स्थापना की थी।

कनिष्क ने धर्म के क्षेत्र अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। वह बौद्ध धर्म का संरक्षक था। यद्यपि कनिष्क जन्म से विदेशी था परन्तु उसका हृदय भारतीय था। बी.जी. गोखले के अनुसार –''कनिष्क की ख्याति, उसकी शक्ति और रणकौशल में उसकी योग्यता के कारण उतनी नहीं है जितनी बौद्ध मत को प्रोत्साहित करने और संरक्षण देने के कारण है।''

कनिष्क ने न केवल बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्रदान कर कनिष्कपुर, पुरुषपुर, मथुरा, तक्षशिला में स्तूप व विहार बनवाए और बौद्ध भिक्षुओं को मध्य एशिया, चीन, तिब्बत, जापान भेजा। पुरुषपुर में 400 फीट ऊंची और 3 मंजिलों की मीनारों के समीप विशाल बौद्ध विहारों का निर्माण करवाया। कनिष्क ने चैत्य का भी निर्माण करवाकर प्रसिद्धि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त मथुरा तक्षशिला पेशावर नगरों में बुद्ध की प्रतिमा बनवाई।

3.8 मुख्य शब्दावली

- **अनार्य** : जो आर्य न हो (म्लेच्छ)।
- **यवनराज** : यूनानी राजा।
- **प्रासाद** : राजभवन, महल।
- **उल्का** : टूटता हुआ तारा।
- **प्राचीर** : दीवार।
- **चक्रवर्ती** : समुद्र पर्यंत पृथ्वी का स्वामी, सम्राट।
- **तिरोहित** : गायब।
- **अतिशयोक्ति** : बढ़ा–चढ़ा कर कही गई बात।
- **क्षत्रप** : राज्य का प्रमुख, राजा।
- **खोतान** : चीन का एक क्षेत्र।

टिप्पणी

3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. सातवाहन वंश के संस्थापक का नाम क्या था? उसने कितने वर्ष शासन किया?
2. चेदि वंश के शासन में कलिंग के महत्व का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. शकों के अधीन विभिन्न क्षेत्रों के नामों का उल्लेख कीजिए।
4. कनिष्क काल में कश्मीर के महत्व का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. गौतमी पुत्र शातकर्णी की सैनिक विजयों का वर्णन कीजिए।
2. चेदि सम्राट खारवेल के प्रारंभिक जीवन एवं उपलब्धियों की व्याख्या कीजिए।
3. शकों की विभिन्न धाराओं द्वारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित साम्राज्य के बारे में जानकारी दीजिए।
4. कनिष्क की सैनिक सांस्कृतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।
3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।
4. झा, डी. एन.ः प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.ः द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.ः इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.ः (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,ः द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.ः प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीताः ''प्राचीन भारत का इतिहास'' मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंदः ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूमः II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।

इकाई 4 गुप्त साम्राज्य

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 गुप्त राजवंश
4.3 गुप्तवंश का उदय और चंद्रगुप्त I
4.4 समुद्रगुप्त, काच और रामगुप्त
4.4.1 समुद्रगुप्त
4.4.2 काच
4.4.3 रामगुप्त (375 ई.–389 ई.)
4.5 चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त I और स्कंदगुप्त
4.6 अंतिम गुप्त शासकों का विवरण (467 ई.–550 ई.)
4.7 गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण
4.8 गुप्त साम्राज्य का प्रशासन
4.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.10 सारांश
4.11 मुख्य शब्दावली
4.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.13 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

गुप्त राजवंश प्राचीन भारत के प्रमुख राजवंशों में से एक था। मौर्य वंश के पतन के बाद दीर्घकाल में हर्ष तक भारत में राजनीतिक एकता स्थापित नहीं रही। कुषाण एवं सातवाहनों ने राजनीतिक एकता लाने का प्रयास किया। मौर्योत्तर काल के उपरान्त तीसरी शताब्दी ईस्वी में तीन राजवंशों का उदय हुआ जिसमें मध्य भारत में नाग शक्ति, दक्षिण में वाकाटक तथा पूर्व में गुप्त वंश प्रमुख हैं। मौर्य वंश के पतन के पश्चात नष्ट हुई राजनीतिक एकता को पुनः स्थापित करने का श्रेय गुप्त वंश को है।

गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी शताब्दी के चौथे दशक में तथा उत्थान चौथी शताब्दी की शुरुआत में हुआ। गुप्त वंश का प्रारम्भिक राज्य आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार में था।

इस इकाई में हम चौथी सदी की राजनीतिक पृष्ठभूमि, गुप्त शक्ति के उदय के कारण, गुप्त साम्राज्य के प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण, गुप्त शासकों के उत्तराधिकार का क्रम और सैनिक योग्यता, गुप्त प्रशासन, गुप्त काल – स्वर्ण काल के कारणों एवं इसके पतन का अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- तीसरी-चौथी सदी के प्रारंभ में भारत की राजनीतिक परिस्थितियों को जान सकेंगे;
- गुप्त साम्राज्य के उदय के कारणों को समझ पाएंगे;
- गुप्त साम्राज्य के प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण को जान पाएंगे;
- गुप्त साम्राज्य की उत्तम प्रशासन व्यवस्था को समझ पाएंगे;
- गुप्त काल-भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल, ऐसा मानने के कारणों का विवेचन कर पाएंगे;
- गुप्त शासकों के उत्तराधिकार के क्रम और सैनिक योग्यताओं के विषय में जान पाएंगे;
- गुप्त वंश के पतन के कारणों का विवेचन कर पाएंगे।

4.2 गुप्त राजवंश

भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से विख्यात गुप्त साम्राज्य का विशेष महत्व है। मौर्य युगीन राजनीतिक एकता को गुप्त शासकों ने स्थापित किया व संपूर्ण भारत पर एकछत्र शासन किया। राजनीतिक, धर्म, कला साहित्य सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति का श्रेय गुप्त काल को ही जाता है। भारतीय संस्कृति के पोषक, भारतीय राष्ट्रीयता के रक्षक तथा भारतीयता के उन्नायक गुप्त सम्राटों पर इतिहास को गर्व है।

गुप्त साम्राज्य 275 ईसवी के आसपास में सत्ता में आया था। गुप्त साम्राज्य की स्थापना 500 वर्षों तक प्रांतीय शक्तियों के वर्चस्व और मौर्य साम्राज्य के पतन के परिणामस्वरूप उत्पन्न अशांति की समाप्ति का प्रतीक है।

टिप्पणी

गुप्त वंश में अनेक प्रतापी राजा हुए– श्रीगुप्त, घटोत्कचगुप्त, चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, रामगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम (महेन्द्रादित्य) और स्कंदगुप्त। समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। दक्षिणापथ के शासक तथा पश्चिमोत्तर भारत की विदेशी शक्तियां उसकी अधीनता स्वीकार करती थीं। गुप्त सम्राज्य के वृहद् विस्तार के कारण समुद्रगुप्त को भारत का नेपोलियन कहा जाता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त थी। स्कंदगुप्त ने हूणों को करारी शिकस्त दी और हूणों ने अगले 50 वर्षों तक अपने को भारत से दूर रखा। अपने चरम पर गुप्त साम्राज्य का विस्तार पश्चिम में अरब सागर और हिन्दूकुश के पार वंक्षु नदी तक (लगभग सम्पूर्ण वर्तमान भारत) और इसके बाहर तक हो गया था।

इस काल में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, कला, साहित्य, तर्कशास्त्र, गणित, खगोल विज्ञान, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में व्यापक आविष्कार और खोज हुए थे जिन्होंने हिन्दू संस्कृति के तत्वों को प्रबुद्ध किया था। गुप्त काल को भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार, धार्मिक सहिष्णुता, आर्थिक समृद्धि तथा शासन व्यवस्था की स्थापना काल के रूप में जाना जाता है।

मूर्तिकला के क्षेत्र में देखें तो गुप्त काल में भरहुत, अमरावती, सांची तथा मथुरा की मूर्तियां कुषाण कालीन प्रतीकों तथा प्रारंभिक मध्यकालीन युग की नग्नता के मध्य अच्छे संश्लेषण तथा जीवतंता का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

Dasavatara Temple at Devgarh (Gupta Era)

स्थापत्य के क्षेत्र में देवगढ़ का दशावतार मंदिर, भूमरा का शिव मंदिर बोध गया और सांची के उत्कृष्ट स्तूपों का निर्माण हुआ।

चित्रकला के क्षेत्र में अजंता, एलोरा तथा बाघ की गुफाओं में की गई, चित्रकारी तथा फ्रेस्को चित्रकारी परिष्कृत कला के उदाहरण हैं।

टिप्पणी

साहित्य के क्षेत्र में एक ओर कालिदास ने मेधदूत, ऋतुसंहार तथा अभिज्ञान शांकुतलम् की रचना की तो दूसरी ओर नाटक तथा कविता लेखन में एक नये युग की शुरुआत हुई।

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में आर्यभट्ट ने जहां एक ओर पृथ्वी की त्रिज्या की गणना की और सूर्य–केंद्रित ब्रह्माण्ड का सिद्धांत दिया वहीं दूसरी ओर वराहमिहिर ने चन्द्र कैलेण्डर की शुरुआत की।

गुप्तकाल में विज्ञान प्रौद्योगिकी से लेकर साहित्य, स्थापत्य तथा मूर्तिकला के क्षेत्र में नये प्रतिमानों की स्थापना की गई जिससे यह काल भारतीय इतिहास में 'स्वर्ण युग' के रूप में जाना गया।

गुप्त काल का इतिहास जानने के साधन–गुप्त काल का इतिहास जानने के लिए हमारे समक्ष साहित्यिक व पुरातात्विक दोनों प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं जो निम्नांकित हैं–

Gupta Golden Age - Literature

- Fine writers added to the heritage of Indian literature.
- They collected and recorded fables and folk tales in Sanskrit.
- The greatest Gupta poet and playwright was Kalidasa, who wrote the play, *Shakuntala.*

Shakuntala **tells the story of a king who marries the orphan, Shakuntala. An evil spell is cast on the king and he forgets his bride. He finally recovers his memory after many plots developments and is reunited with her. At the end, the couple is blessed by the king's advisor.**

टिप्पणी

साहित्यिक साधन- इस काल का अथाह साहित्य उपलब्ध है जिससे हमें महत्वपूर्ण प्रमाण प्राप्त होते हैं जिनमें पुराण, धर्म शास्त्र, शूद्रक का मृच्छकटिकम्, वात्स्यायन का कामसूत्र, विशाखादत्त का देवीचंद्रगुप्तम्, मुद्राराक्षस, किशोरिका का कौमुदीमहोत्सव, कालिदास की रचनाएं आदि अनेकानेक ग्रंथ हैं जिनमें गुप्त शासन का इतिहास उल्लिखित है।

न केवल भारतीय साहित्य वरन विदेशी यात्रियों का विवरण भी प्राप्त है। इनमें फाह्यान, सुंगयुन, ह्वेनसांग, इत्सिंग, अलबरूनी प्रमुख हैं। साहित्यिक साक्ष्यों पर टिप्पणी करते हुए वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है- ''इतिहास के निर्माण की सामग्री इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध है कि उसका वैज्ञानिक आलोचनात्मक तथा निष्पक्ष विवेचन करके गुप्त वंश के इतिहास का सुस्पष्ट, विश्वसनीय व तर्कसम्मत निर्धारण किया जाना संभव हो पाया। समस्त ऐतिहासिक स्रोत एक-दूसरे के पूरक भी हैं। वे परस्पर विरोधी नहीं हैं।''

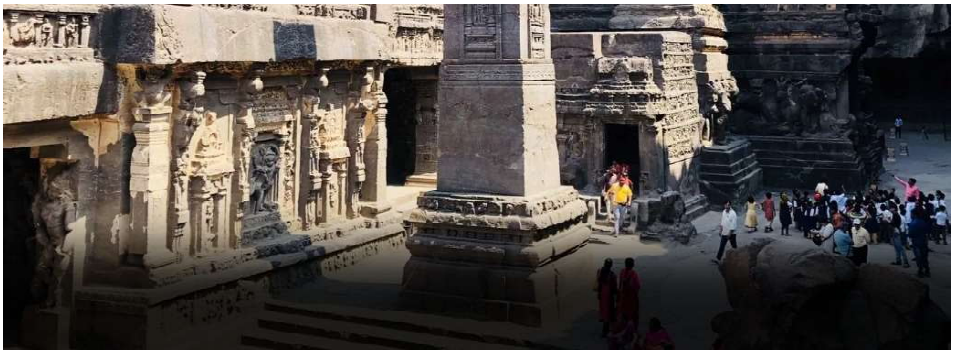

पुरातात्विक स्रोत–गुप्त साम्राज्य के पुरातात्विक स्रोत भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि ये संस्कृति के पोषक थे। बयाना में 2200 गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राएं प्राप्त हुई हैं जिससे शासकों के व्यक्तित्व, रहन-सहन, क्रिया-कलापों का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त अश्वमेध सिक्के, समुद्रगुप्त को वीणा बजाते हुए, चंद्रगुप्त आदि के सिक्कों से जानकारी प्राप्त होती है। इस समय की चांदी व तांबे की भी मुद्राएं प्राप्त हुई हैं परंतु इनकी संख्या बहुत कम है जिससे तत्कालीन उच्च आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। वैशाली से प्राप्त मोहरों से तत्कालीन प्रांतीय स्थानीय व्यवस्था के विषय में प्रकाश पड़ता है। इनके अतिरिक्त शिलालेख, स्तंभ लेख, ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कलाकृति से भी इस समय का आभास होता है। हरिषेण कृत प्रयागप्रशस्ति, ऐरण अभिलेख, महरौली, मथुरा, सांची शिलालेख आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। वासुदेव उपाध्याय का मत है, "गुप्तकालीन इतिहास का परिचय देने का प्रमुख श्रेय उत्कीर्ण लेखों को प्राप्त है। अभिलेखों का वर्णन सुस्पष्ट, विविध, तथ्यपूर्ण व संदेहरहित है।'' तत्कालीन धार्मिक व सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त मात्रा में स्मारक उपलब्ध हैं। जैसे-भूमरा का शिव मंदिर, तिगवा का विष्णु मंदिर, नचना का पार्वती मंदिर, भीतर गांव का लड़खान मंदिर आदि।

टिप्पणी

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तकाल के इतिहास को जानने के पर्याप्त स्रोत उपलब्ध हैं।

गुप्तों की जाति

मौर्यों के समान ही गुप्तों की जाति के संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। गुप्तों को शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य मानने वालों में प्रमुख तर्क निम्नलिखित हैं-

गुप्त शूद्र थे– गुप्तों को शूद्र मानने वाले डॉ. जायसवाल प्रमुख हैं, उनका कहना है–

1. कौमुदी महोत्सव नाटक में चंद्रसेन (चंद्रगुप्त) को कारस्कर बताकर ऐसी नीच जाति के पुरुष को राजा होने के अयोग्य बताया है।
2. इसी नाटक में चंद्रसेन (शूद्र) व लिच्छवियों (म्लेच्छ) में वैवाहिक संबंध बताया है।
3. प्रभावती गुप्त के लेख में एक धारण गोत्र है यह शूद्रों का गोत्र है अतः ये शूद्र थे।
4. मंजूश्री मूलकल्प में भी समुद्रगुप्त के पूर्वजों को मथुरा का जाट बताया है।

खंडन–इन तर्कों का खंडन करते हुए कहा गया है कि (1) इसका कोई प्रमाण नहीं कि चंद्रसेन ही चंद्रगुप्त था। (2) नाटक में कारस्कर के आधार पर शुद्र नहीं मान सकते। (3) लिच्छवि क्षत्रिय थे तथा धारण व धारणी गोत्र परस्पर समान नहीं हैं अतः गुप्त शुद्र नहीं थे।

गुप्त वैश्य थे–एलन अल्तेकर, आयकर गुप्तों को वैश्य स्वीकारते हैं। इनके अनुसार, जैसे ब्राह्मणों के नामांत शर्मा, क्षत्रियों के वर्मा, शुद्रों के दास, उसी प्रकार वैश्यों के नामांत गुप्त लगाते हैं।

परंतु गुप्त नामांत होने के कारण गुप्तों को वैश्य नहीं स्वीकारा जा सकता क्योंकि विष्णुगुप्त (चाणक्य) ब्राह्मण थे (2) यदि गुप्त वैश्य थे तो उन्होंने क्षत्रिय वर्ण का कर्म क्यों स्वीकारा।

टिप्पणी

गुप्त ब्राह्मण थे–डॉ. राय चौधरी, डॉ. गोयल, डॉ. उदयनारायण आदि इतिहासकार गुप्तों को ब्राह्मण मानते हैं। उनके तर्क इस प्रकार हैं–

1. चंद्रगुप्त द्वितीय का विवाह वाकाटक वंश की प्रभावती गुप्त से हुआ था। वाकाटक ब्राह्मण थे।
2. प्रभावती व वाकाटकों का गोत्र धारण था। स्कंदपुराणानुसार धारण गोत्र ब्राह्मणों का था अतः गुप्त ब्राह्मण थे।
3. बौद्ध लेखक परमार्थ के अनुसार, बालादित्य ने अपनी बहन का विवाह वसुराट नामक ब्राह्मण से किया था।

खंडन–परंतु उपर्युक्त तर्कों का खंडन करते हुए कहा गया है कि विवाह प्रतिलोम (अंतर्जातीय) विवाह भी हो सकते हैं। अनेक उदाहरण ऐसे भी हैं कि क्षत्रिय व वैश्यों ने अपने पुरोहितों का गोत्र धारण कर लिया था। प्रभावती ने भी संभवतया ऐसा ही किया हो।

गुप्त क्षत्रिय थे–डॉ. पान्थरी, डॉ. उपाध्याय, डॉ. ओझा इस मत को मानते हैं कि गुप्त क्षत्रिय थे।

1. सुंदरवर्मन क्षत्रिय ने चंडसेन को गोद लिया था। अतः वह क्षत्रिय था क्योंकि हिंदू धर्मशास्त्रानुसार सजातीय बालक ही गोद लिया जा सकता है।
2. महाशिव गुप्त ने सिरपुर की प्रशस्ति में स्वयं को चंद्रवंशी क्षत्रिय कहा है।
3. दीर्घनिकाय व अन्य ग्रंथों में समुद्रगुप्त को लिच्छिदौहित्त कहा है। लिच्छवि क्षत्रिय थे।
4. तिब्बती इतिहासकार के अनुसार-गुप्त सिंह वंश के थे सिंह उनके पौरुष व बाहुबल का द्योतक था जो क्षत्रियों का प्रमुख गुण है।

खंडन–

1. चंद्रसेन ही चंद्रगुप्त था इसके प्रमाण नहीं हैं।
2. आर्य मंजू श्री मूलकल्प कल्पनाओं पर आधारित है।
3. परवर्ती व पूर्ववर्ती गुप्तों में कोई संबंध था अथवा नहीं इसके प्रमाण नहीं हैं।

निष्कर्ष–यद्यपि यह प्रश्न अत्यंत विवादास्पद है परंतु डॉ. राजबलि पांडेय ने संतुलित मत स्थापित किया है–इसमें कोई संदेह नहीं कि गुप्त प्रारंभ में वैश्य रहे और बाद में वर्ण बदलकर क्षत्रिय हो गए हों। गुप्तों का वैवाहिक संबंध लिच्छवि, नागों, कदंबों व ब्राह्मणों से था इससे प्रकट होता है कि अपने शासन काल में गुप्त क्षत्रिय ही माने जाते थे।

यह मत मूलतः अनुमान पर आधारित है। 'पहले वैश्य बाद में क्षत्रिय थे' प्रश्न यह उठता है कि आखिर इसकी आवश्यकता क्यों हुई?

गुप्तों का आदि स्थान या मूल निवास स्थान–जाति के समान ही गुप्तों के आदिस्थान के बारे में भी विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वान कौमुदी महोत्सव के आधार पर

टिप्पणी

गुप्तों का मूल निवास स्थान कौशाम्बी मानते हैं परंतु यह नाटक काल्पनिकता पर आधारित है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये बंगाल के मूल निवासी हैं। इनका आधार इत्सिंग का वर्णन है। उसके अनुसार चेली केती (चंद्रगुप्त) ने मि-लि-क्या-सि-क्या-पो-लो (मृगाशिखावन) में चीनी भिक्षुओं के लिए एक मंदिर का निर्माण करवाया, यह नालंदा से 40 योजन पर था, डॉ. गांगुली ने यह स्थान नालंदा बताया है। परंतु मृगस्थापन की ऐतिहासिकता को स्वीकार करना कठिन है। पुराणों में गुप्तों के राज्य विस्तार में बंगाल का नाम नहीं है। कुछ इतिहासकार गुप्तों को पूर्वी उत्तरप्रदेश अथवा पश्चिमी मगध का स्वीकार करते हैं क्योंकि पुराणों में भी इसका वर्णन है। गुप्त लोग उत्तरप्रदेश से मगध में राज्य करने लगे। पहले वे स्थानीय सामंत रहे होंगे। बाद में लिच्छिवियों के कारण इनकी शक्ति बढ़ी जिससे चंद्रगुप्त प्रथम ने स्वतंत्र होकर महाराजाधिराज की पदवी धारण की। अतः पूर्वी उत्तरप्रदेश ही अधिक प्रमाणित होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. अजंता, एलोरा तथा बाघ गुफाओं की चित्रकारी का निर्माण किस वंश के शासन के दौरान हुआ?

   (क) गुप्त (ख) मौर्य

   (ग) कुषाण (घ) इनमें से कोई नहीं

2. गुप्त काल में पृथ्वी की त्रिज्या की गणना किसने की थी?

   (क) वराहमिहिर (ख) आर्यभट्ट

   (ग) कालिदास (घ) इनमें से कोई नहीं

4.3 गुप्तवंश का उदय और चंद्रगुप्त I

पुराणों में गुप्त वंश के संस्थापक को 'गुप्त' कहा गया है। गुप्त अभिलेखों में गुप्त वंश के संस्थापक का नाम 'श्रीगुप्त' वर्णित है। परंतु गुप्त संस्थापक श्रीगुप्त था अथवा गुप्त यह प्रश्न विवादास्पद है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इस वंश का संस्थापक गुप्त था तथा श्री सम्मानार्थ जोड़ा गया है। इसके पश्चात घटोत्कच का वर्णन है जिसके विषय में अधिक जानकारी नहीं है । संभवतया इसका कार्यकाल 300 ई. से 320 ई. रहा होगा।

श्रीगुप्त

श्रीगुप्त गुप्तवंश का प्रथम शासक और गुप्त वंश की स्थापना करने वाला शासक था। पूना से प्राप्त ताम्रपत्र में श्रीगुप्त को 'आदिराज' नाम से संबोधित किया गया है।

घटोत्कचगुप्त

श्रीगुप्त के बाद उसका पुत्र घटोत्कचगुप्त सिंहासन पर आसीन हुआ। कुछ अभिलेखों में घटोत्कच को गुप्तवंश का प्रथम राजा बताया गया है।

चंद्रगुप्त प्रथम (319-324 ई.)

टिप्पणी

घटोत्कच की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र चंद्रगुप्त प्रथम सम्राट बना। यह प्रथम स्वतंत्र शासक था क्योंकि इसके पूर्व सामंत शासक थे। इसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। यह अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक विस्तारवादी व महत्वपूर्ण शासक था। महरौली के चंद्र का समीकरण चंद्रगुप्त प्रथम से भी करते हैं परंतु दुर्भाग्यवश उसके विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। चंद्रगुप्त के काल की प्रमुख घटनाएं निम्नांकित हैं–

- **वैवाहिक संबंध**–चंद्रगुप्त के काल की मुख्य घटना लिच्छिवियों से वैवाहिक संबंध स्थापित करना है। तत्कालीन समय में लिच्छिवी अत्यंत शक्तिशाली थे। डॉ. स्मिथ का मानना है– लिच्छिवियों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करके उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया तथा अवध और मगध से लेकर गंगा के तटीय भू-भाग में प्रयाग तक सीमा विस्तार किया। चंद्रगुप्त ने लिच्छिवी राजकुमारी कुमारदेवी से विवाह स्थापित किया। इस विवाह के अनेक साक्ष्य प्राप्त हैं। इस विवाह से गुप्तों की शक्ति व वैभव में असीमित वृद्धि तो हुई ही, साथ ही कुमारदेवी पैतृक आधार पर लिच्छवि राज्य की स्वामिनी बन गई जिससे संपूर्ण लिच्छिवी शासन चंद्रगुप्त के अधिकार क्षेत्र में आ गया।
- **चंद्रगुप्त का राज्यविस्तार**–चंद्रगुप्त को लिच्छिवी से विवाह होने के कारण वैशाली तो प्राप्त हुआ ही इससे उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। महरौली स्तंभ से ज्ञात होता है कि चंद्र ने सिंध पार करके बैक्ट्रिया से घोर संग्राम किया व विजय प्राप्त की। इसकी सीमाएं एक ओर बंगाल को छू रही थीं तो दूसरी ओर मध्य भारत व पंजाब को छूती थीं।
- **गुप्त संवत**–चंद्रगुप्त द्वारा नवीन संवत की स्थापना की गई जिसे गुप्त संवत कहा गया। यह प्रश्न विवादास्पद है परंतु ऐसा माना जाता है कि चंद्रगुप्त ने अपने राज्यारोहण का सूत्रपात एक संवत का प्रवर्तन करके किया। जिसका प्रथम वर्ष 319-20 ई. था।

अपनी प्रगति जांचिए

3. गुप्त वंश के संस्थापक शासक का नाम क्या है?

(क) चंद्रगुप्त (ख) रामगुप्त

(ग) श्रीगुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

4. किस गुप्त शासक ने लिच्छिवियों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए?

(क) चंद्रगुप्त प्रथम (ख) घटोत्कचगुप्त

(ग) श्रीगुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

4.4 समुद्रगुप्त, काच और रामगुप्त

टिप्पणी

गुप्त साम्राज्य में समुद्रगुप्त, काच एवं चंद्रगुप्त का अपना विशिष्ट स्थान है। इनको पृथक-पृथक इस प्रकार विवेचित किया जा सकता है।

4.4.1 समुद्रगुप्त

चंद्रगुप्त प्रथम के पश्चात उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने साम्राज्य की स्थापना की और शताब्दियों के लिए गुप्त वंश की नींव सुदृढ़ कर दी। उसकी अभूतपूर्व प्रतिभा के कारण चंद्रगुप्त ने अपने जीवनकाल में ही समुद्रगुप्त को राजा बना दिया। वह एक योग्य सम्राट, कुशल सेनापति एवं महान व्यक्तित्व का धनी था। वह एक दिग्विजयी सम्राट था इसी कारण उसकी तुलना नेपोलियन से की जाती है। मुखर्जी के अनुसार-अशोक की ख्याति शांति व अहिंसा के कारण है तो समुद्रगुप्त की ख्याति उसकी दिग्विजयों के कारण है।

- **समुद्रगुप्त की दिग्विजय**–समुद्रगुप्त ने भारत में राजनीतिक एकता स्थापित कर समस्त भारत को एक छत्र के नीचे संगठित कर दिया। वह वीर योद्धा था। उसने न केवल उत्तर भारत वरन दक्षिण समेत विदेशों में भी अपनी विजय पताका फहराई। मुखर्जी के अनुसार, ''सौ युद्धों के विजेता समुद्रगुप्त ने अपनी लगातार विजय यात्रा से संपूर्ण भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।'' उसकी दिग्विजय निम्नवत् हैं–

आर्यावर्त का प्रथम अभियान–विंध्य से हिमालय के बीच की भूमि का नाम आर्यावर्त था। प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त पर दो बार विजय अभियान किया। प्रथम अभियान में उसने निम्न राजाओं पर विजय प्राप्त की–

1. **अच्युत**–प्रथम आर्यावर्त में पराजित राजा अच्युत था। यह अहिछत्र राजा था। उसका राज्य बरेली के आधुनिक रामनगर में था।
2. **नागसेन**–ग्वालियर में स्थित नारवाड़ से प्राप्त नागवंशी मुद्राओं से यह ज्ञात होता है कि यह नागवंश का नरेश था तथा इसकी राजधानी पद्मावती थी।
3. **ग**–प्रयाग प्रशस्ति में नागसेन के आगे का शब्द नष्ट हो गया है। परंतु 'ग' का शब्द पठनीय है। सम्भव है यह गणपतिनाग शासक होगा।

कोतकुलज–यह कोतवंश नरेश था। मजूमदार के अनुसार, समुद्रगुप्त ने इस कोत को पराजित किया था।

परंतु प्रथम आर्यावर्त अभियान पर अनेक विद्वानों ने अपने मत दिए हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि प्रथम आर्यावर्त युद्ध समुद्रगुप्त का विजय अभियान न होकर सुरक्षात्मक युद्ध था।

आर्यावर्त का द्वितीय अभियान–आर्यावर्त ने द्वितीय अभियान में 9 राजाओं को पराजित किया था ये हैं–

1. **रुद्रदेव**–जायसवाल ने रुद्रदेव वाकाटक नरेश रुद्रसेन प्रथम को माना है, यह कौशाम्बी का सम्राट था।

टिप्पणी

2. **मतिल**–बुलंदशहर में एक मुद्रा मिली है जिस पर मतिल व नाग बना हुआ है। सम्भवतया यह नागवंशीय सम्राट था।
3. **नागदत्त**–यह मथुरा का राजा था तथा नागवंशीय था।
4. **चंद्रवर्मा**–इसके क्षेत्र के बारे में विवाद है।
5. **गणपतिनाग**–यह नागवंशीय शासक विदिशा का सम्राट था।
6. **नागसेन**–यह मथुरा का सम्राट था।
7. **अच्युत**–यह अहिच्छत्र का राजा था।
8. **बलवर्मा**–यह कामरूप सम्राट भास्करवर्मा का पूर्वज था।
9. **नंदि**–पुराणों में उल्लिखित है कि शिशुनंद शिवनंदि मध्य भारत में नागवंशीय शासक था।

प्रयाग प्रशस्ति में उद्धृत है कि समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत के समस्त राजवंशों को उखाड़ फेंका। इन सभी राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया।

आटविक राज्यों पर विजय–प्रयाग प्रशस्ति में कहा गया है कि वन के समस्त राजाओं को अपना दास बना लिया। उत्तर भारत में विजय के पश्चात जब वह दक्षिण विजय करने के लिए अग्रसर हुआ तो मार्ग में पड़ने वाले आटविक नरेशों को परास्त कर अपना दास बना लिया। पलीट का मत है– आटविक नरेश आधुनिक गाजीपुर से जबलपुर तक प्रसारित थे।

दक्षिण अभियान–दक्षिण की विजय समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के प्रथम अभियान के बाद की थी। दक्षिण के 11 या 12 राजाओं को परास्त किया तत्पश्चात उनके राज्य उन्हीं को वापस कर उन्हें साम्राज्य का स्वामीभक्त बना लिया। इससे एक ओर तो राजा स्वतंत्र थे तथा दूसरी ओर वे समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकारते थे। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है– उसकी विजय की 3 विशेषताएं थीं–(1) शत्रु को बंदी बनाना (2) उन्हें मुक्त करना (3) विजेता की संरक्षता स्वीकार कर लेने पर उसे उसके राज्य का पुनः शासक बना देना। ये राजा निम्न हैं-

1. **कौशल का महेंद्र**–यहां का राजा महेंद्र था। इसमें वर्तमान रायपुर संभलपुर, विलासपुर के जिले सम्मिलित थे।
2. **महानकांतर के व्याघ्रराज**–यहां का राजा व्याघ्रराज था तथा यह प्रदेश उड़ीसा का वन क्षेत्र था।
3. **कोरल के मंटराज**–यह उड़ीसा तथा तमिलनाडू के मध्य का क्षेत्र था तथा यहां का राजा महेंद्रगिरी था।
4. **कोट्टर का स्वामीदत्त**–कोट्टर से कोयंबटूर की एकात्मकता स्थापित की है।
5. **एरण्डपल्ल का दमन**–एरण्डपल्ल खानदेश का एरण्डोल माना जाता है। उड़ीसा तट पर चिनकोकोले के समीप एरण्डपल्ल से भी इसका समीकरण स्थापित किया जाता है।

टिप्पणी

6. **कांची का विष्णुगोप**–यह पल्लवों की राजधानी है। मद्रास के निकट आधुनिक कांचीवरम ही कांची है।
7. **अवमुक्त के नीलराज** -कांची व वेंगी के राज्यों के पड़ोस में एक छोटा-सा राज्य था। जहां का राजा नीलराज पल्लव संघ का सदस्य था।
8. **वेंगी के हस्तिवर्मन**–यह सम्भवतया एल्लोर में पेडुवेंगी के निकट था। इसके राजा शालंकायन वंशीय थे।
9. **पालक्क के उग्रसेन**–यह गोदावरी नदी के तट पर पालकोल्लू नामक स्थान पर था।
10. **कुस्थनपुर के धनंजय**–अरकार जिले में स्थित कुहलुर ही कुस्थलपुर है।
11. **देवराष्ट्र के कुबेर**–यह आंध्र प्रदेश में स्थित येल्लमंचिलि था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि दक्षिण शासकों ने समुद्रगुप्त के विरुद्ध संगठित होकर एक संघ का निर्माण किया और उन्होंने कोलेख नाम से विख्यात सरोवर के निकट समुद्रगुप्त को आगे बढ़ने से रोका। इस संघ पर समुद्रगुप्त ने विजय प्राप्त की।

सीमावर्ती राज्यों द्वारा अधीनता–प्रयाग प्रशस्ति से स्पष्ट होता है कि समुद्रगुप्त के विजय अभियान को देखकर सीमावर्ती राज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। ये राज्य हैं–

पूर्वी सीमांत प्रदेश–इनकी संख्या पांच थी। संभवतया ये छोट-छोटे राज्य रहे होंगे। ये पांच प्रदेश हैं–(1) समतट (2) डवाक (3) कापरूप (4) नेपाल (5) कर्त्तृपुर।

पश्चिमी सीमांत प्रदेश–पश्चिमी सीमा पर 9 गणराज्य थे जिन्होंने अधीनता स्वीकार की थी। ये निम्नांकित हैं–(1) मालव (2) अर्जुनायन (3) यौधेय (4) मद्रक (5) आभीर (6) प्रार्जुन (7) सनकानिक (8) काक (9) खरपरिक।

सीमावर्ती राज्यों के प्रति नीति–प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित है, समुद्रगुप्त ने इन राज्यों के प्रति तीन प्रकार की नीति अपनाई-सर्वकर आज्ञाकरण प्रणामागमन।

सर्वकरदान- इन राज्यों ने समुद्रगुप्त को सभी प्रकार के कर देना स्वीकार किया।

आज्ञाकरण- ये राज्य समुद्रगुप्त की आज्ञा का पालन करते थे।

प्रणामागमन- व्यक्तिगत रूप से आकर राजा का अभिवादन करते थे।

विदेशी राज्य–प्रयाग प्रशस्ति में विदेशी राज्यों का भी उल्लेख किया गया है- जिसका दैवपुत्र शाही शाहनुशाही, शक मुरुंड, सैंहल आदि सारे द्वीपों के निवासी आत्मनिवेदन किए हुए थे। अपनी कन्याएं भेंट में देते थे। इस प्रकार की सेवाओं से जिसने अपने बाहुबल से सारी पृथ्वी को बांध दिया था, जिसका पृथ्वी पर कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं था।

दैवपुत्र शाही शाहनुशाही–स्मिथ, पलीट, एलन इन्हें 3 भागों में बांटते हैं–दैवुपुत्र, शाही, शाहनुशाही। दैवपुत्र कुषाणों की उपाधि थी। इसका अभिप्राय है कि इनका कुषाणों से संबंध था।

शक मुरुंड–मुरुंड शक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ स्वामी होता है। मुरुंड अफगानिस्तान में शासन करते थे।

सैंहल–सैंहल द्वीप का अर्थ लंका से है। समुद्रगुप्त के लंका से भी संबंध थे।

टिप्पणी

अन्य द्वीपवासी–प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार सैंहल के अतिरिक्त दक्षिण में विंध्य के कुछ द्वीपों में, समूहों में रहने वाले भारतीयों से समुद्रगुप्त का संबंध था।

समुद्रगुप्त का राज्य विस्तार–समुद्रगुप्त का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विंध्य के भू-भाग, पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। गुजरात, सिंध, पश्चिमी राजपूताना, पश्चिमी पंजाब व कश्मीर के सीमांत प्रदेशों पर उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव था तथा सैंहलद्वीप एवं अन्यान्य द्वीपों के साथ मैत्री संबंध थे। डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार- समुद्रगुप्त ने देशवर्धन की नीति को ग्रहण नहीं किया। उसकी दिग्विजय का मुख्य ध्येय अपनी विजय पताका फहराना था। इस कारण समुद्रगुप्त ने अधिक देशों को अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया।

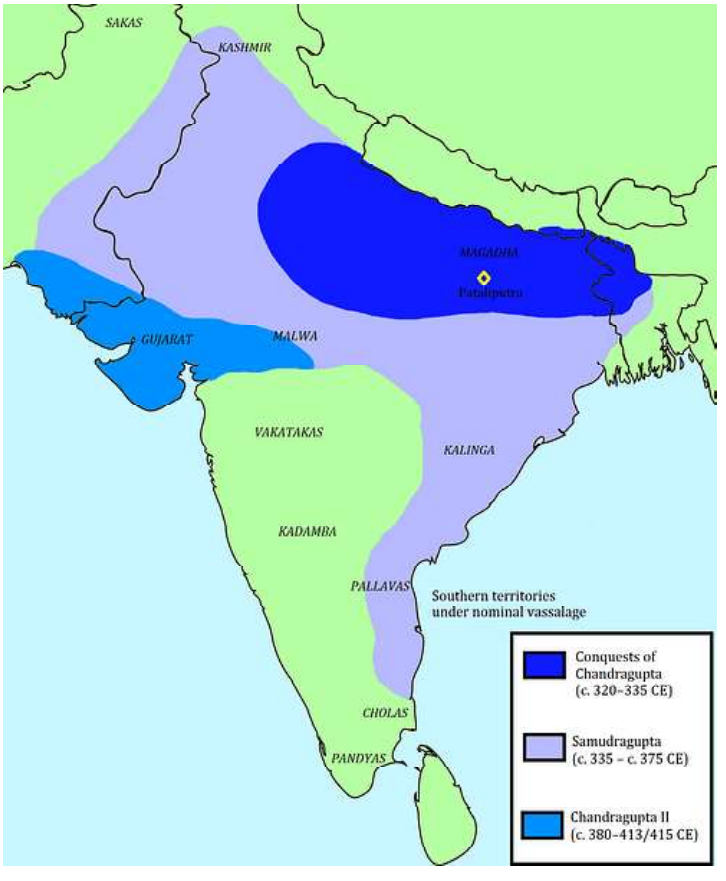

अश्वमेध यज्ञ–प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को गोशत सहस्त्र प्रदायिन कहा है तो गुप्त अभिलेखों में उसे चिरोत्सन्नाश्वमेध हर्न्तु (चिरकाल से न किए गए अश्वमेध यज्ञ को करने वाला कहा है) इससे ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। समुद्रगुप्त की मुद्राओं पर भी अश्वमेघ पराक्रम की उपाधि मिलती है।

समुद्रगुप्त का मूल्यांकन–भारतीय इतिहास को रंगने वाले सहस्त्रों राजाओं के मध्य समुद्रगुप्त का नाम अपनी प्रतिभा के लिए व दिग्विजयों के लिए स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

वह असाधारण योद्धा, सहस्त्रों समर विजेता एवं अजातशत्रु था। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, समुद्रगुप्त पराक्रमी राजा, सूरमा, कुशल राजनीतिज्ञ, योद्धा, प्रसिद्ध संगीतज्ञ व मर्मज्ञ सहृदय कविराज था।

टिप्पणी

यद्यपि समुद्रगुप्त को अपने पिता से बहुत ही सीमित साम्राज्य प्राप्त हुआ था परंतु उसने अपनी प्रतिभा व पराक्रम के बल पर अपनी साम्राज्य सीमाओं को भारत के बाहर तक फैलाया था। वह प्रथम भारतीय सम्राट माना जाता है जिसने अपनी वीरता के बल पर दक्षिण व विदेशी शासन को नतमस्तक किया है। विविध समरों में उतरने में दक्ष अपने भुजबल का पराक्रम ही जिसका कारण एकमात्र साथी था, जो अपने पराक्रम के लिए विख्यात था उसका शरीर सैकड़ों घावों से सुशोभित और अतिशय सुंदर था।

4.4.2 काच

काच गुप्तवंश का शासक था, जिसका नाम कुछ स्वर्णमुद्रओं पर खुदा मिलता है। इन मुद्राओं पर सामने बाएं हाथ में चक्रधवज लिए खड़े राजा की आकृति मिलती है। उसके बाएं हाथ के नीचे गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में राजा का नाम "काच" लिखा है। मुद्रा पर वर्तुलाकार ब्राह्मी लेख "काचो गामवजित्य दिवं कर्मभिरुत्तमैः जयति" मिलता है, जिसका अर्थ है "पृथ्वी को जीतकर काच पुण्यकर्मों द्वारा स्वर्ग की विजय करता है।" सिक्के के पीछे लक्ष्मी की आकृति तथा "सर्व्वराजोच्छेत्ता" (सब राजाओं को नष्ट करनेवाला) ब्राह्मी लेख है।

ये सिक्के गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के सिक्कों से बहुत मिलते हैं। "सर्व्वराजोच्छेत्ता" विरुद गुप्तवंश के अभिलेखों में समुद्रगुप्त के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः कुछ विद्वान् समुद्रगुप्त का ही दूसरा नाम "काच" मानकर उक्त सिक्कों को उसी का घोषित करते हैं। परंतु इसे सही नहीं कहा जा सकता। समुद्रगुप्त के सिक्कों पर उसका नाम "समुद्र" मिलता है न कि काच। दूसरे, चक्रधवज चिह्न काच के अतिरिक्त समुद्रगुप्त या अन्य किसी गुप्त शासक के सिक्कों पर नहीं मिलता।

हाल में रामगुप्त नामक शासक की कुछ ताम्रमुद्राओं के मिलने से तथा उसका नाम साहित्य एवं अन्य प्रमाणों से ज्ञात होने के कारण कुछ लोग इसी रामगुप्त को काच समझते हैं। परंतु यह भी युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। काच तथा रामगुप्त के सिक्के एक दूसरे से नितांत भिन्न हैं। प्रतीत होता है कि गुप्त शासक चंद्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के बाद काच नाम के किसी शक्तिशाली व्यक्ति ने पाटिलिपुत्र की गुप्तवंशी गद्दी पर अधिकार कर लिया और उसी ने काचांकित मुद्राएं प्रचलित कीं।

4.4.3 रामगुप्त (375–389 ईसा)

यह प्रश्न विवादास्पद है कि समुद्रगुप्त के पश्चात उसका उत्तराधिकारी रामगुप्त था अथवा चंद्रगुप्त द्वितीय। कुछ इतिहासकारों का मत है कि समुद्रगुप्त की मृत्यु के उपरांत उसका बड़ा पुत्र रामगुप्त गद्दी पर बैठा, परंतु वह अयोग्य एवं कायर सम्राट था। उसने शकों से भयभीत होकर अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को देने का निर्णय किया परंतु उसके भाई चंद्रगुप्त द्वितीय ने शकों को परास्त कर न केवल ध्रुवस्वामिनी को बचाया वरन रामगुप्त

की हत्या कर स्वयं सम्राट बन गया। परंतु इस मत के विपक्ष में विद्वानों ने तर्क देते हुए कहा है, यह मात्र काल्पनिक घटना है। इतिहास कुछ भी रहा हो परंतु यह सत्य है कि रामगुप्त गुप्तवंशीय था।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. किस गुप्त शासक को भारत का नेपोलियन कहा जाता है?

(क) रामगुप्त (ख) समुद्रगुप्त

(ग) चंद्रगुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

6. किस गुप्त शासक के बारे में एक मत प्रचलित है कि वह अयोग्य एवं कायर था?

(क) काच (ख) घटोत्कचगुप्त

(ग) रामगुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

4.5 चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त I और स्कंदगुप्त

समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात रामगुप्त गद्दी पर बैठा। वह समुद्रगुप्त के विशाल साम्राज्य को न संभाल सका, अतः चंद्रगुप्त द्वितीय 380 ई. में गद्दी पर आसीन हुआ। यह अपने पिता के समान ही वीर, पराक्रमी, अजातशत्रु एवं कुशल सम्राट सिद्ध हुआ। चंद्रगुप्त की मुद्राओं में उसे देवश्री विक्रमांक, विक्रमादित्य, सिंह, विक्रम, अजि विक्रम, सिंह चंद्र, अप्रतिरथ आदि विरुदों से अलंकृत किया गया।

यद्यपि चंद्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि में मतवैभिन्नता है परंतु 380 ई. से 412 ई. तक चंद्रगुप्त का शासनकाल माना जाता है।

वैवाहिक संबंध–चंद्रगुप्त ने विशाल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण के लिए युद्ध एवं वैवाहिक संबंधों दोनों को उपयुक्त समझा। रायचौधरी के अनुसार– गुप्तों के वैवाहिक संबंध उनकी बाह्य नीति में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य द्वारा निम्न राजवंशों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए गए–

नागवंश से वैवाहिक संबंध–चंद्रगुप्त द्वितीय ने नागवंश की राजकुमारी कुबेरनागा से विवाह किया। तत्कालीन समय में नाग अत्यंत शक्तिशाली थे तथा इनका प्रभुत्व उत्तर भारत के कई क्षेत्रों पर था। डॉ. मजूमदार का मत है– नागों से संबंध स्थापित करने से इसने अपनी नवस्थापित सार्वभौमिक सत्ता को सुदृढ़ करने में सहायता प्राप्त की।

वाकाटकों से वैवाहिक संबंध–वाकाटक दक्षिण भारत की प्रमुख शक्ति थे अतः चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह रुद्रसेन द्वितीय वाकाटक नरेश से किया। इस विवाह के महत्व पर स्मिथ लिखते हैं - वाकाटक महाराज का अधिकार एक ऐसी भौगोलिक स्थिति पर था जहां से वह गुजरात और सौराष्ट्र के शक क्षत्रपों के विरुद्ध उसके उत्तरी आक्रांताओं को सहायता या बाधा पहुंचा सकता था। यह वैवाहिक संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

टिप्पणी

कदंब वंश से वैवाहिक संबंध–तालगुंड के स्तंभ लेख से ज्ञात होता है कि काकुत्स्थ वर्मा नामक कुंतल राजा की राजकन्या का गुप्तवंश में विवाह हुआ था।

चंद्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजय–चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने पिता के समान ही विजय प्राप्त की तथा अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इसकी दिग्विजएं निम्नलिखित हैं–

शक विजय–चंद्रगुप्त द्वितीय की सबसे महत्वपूर्ण विजय शक विजय थी। शकों का राज्य गुजरात, मालवा व सौराष्ट्र में था। शक महाक्षत्रप रुद्रसिंह तृतीय को पराजित कर चंद्रगुप्त ने शकारि की उपाधि प्राप्त की। उदयगिरि गुहालेख में चंद्रगुप्त द्वितीय के युद्ध सचिव ने लिखा है-संपूर्ण विश्व की विजय कामना रखने वाले अपने स्वामी (चंद्रगुप्त द्वितीय) के साथ वह (शाव) यहां पूर्वी (मालवा) आया। इस विजय से चंद्रगुप्त ने न केवल विदेशियों को भारत से खदेड़ा वरन अपनी राज्य सीमा का विस्तार कर पश्चिमी तटवर्ती पत्तनों पर पाश्चात्य व्यापार का एकाधिकार सुनिश्चित कर लिया।

गणराज्यों पर विजय–मद्रगण से लेकर दक्षिण में खरपटिकगण आदि छोटे-छोटे राज्य थे, जिन पर विजय प्राप्त की तथा अपने राज्य में मिलाकर इनके अस्तित्व को समाप्त कर दिया।

वाहिल्कों पर विजय–महरौली लौह स्तंभ से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त ने सिंधु के पांच मुखों को परास्त कर वाल्हिकों पर विजय प्राप्त की थी।

पूर्वी प्रदेशों पर विजय–रामगुप्त की योग्यता के कारण बंगाल और अन्य पूर्वी प्रदेशों के शासकों ने एक संघ बना लिया। चंद्रगुप्त ने इस संघों पर विजय प्राप्त की।

अश्वमेध यज्ञ–चंद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया था। इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं-वाराणसी में पत्थर का घोड़ा मिला है जिस पर चंद्रगु: (चंद्रगुप्त) उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त पूना दानपत्र में चंद्रगुप्त द्वारा (अनेक गौ हिरण्य कोटि सहस्त्र पद:) अनेक गौ और सहस्त्रों मुद्राएं दान करने का भी उल्लेख है जिससे प्रतीत होता है कि चंद्रगुप्त ने अपनी विजयों के पश्चात अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया होगा।

साम्राज्य विस्तार–चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का साम्राज्य समुद्रगुप्त से अधिक विस्तृत था। उसका साम्राज्य हिमालय से दक्षिण में नर्मदा नदी तक, पूर्व में बंगााल से लेकर पश्चिम में अरब तक फैला हुआ था। इस विस्तृत साम्राज्य में प्रसिद्ध व्यापारिक नगर और बंदरगाह शामिल थे। साम्राज्य के विस्तार के कारण उसने उज्जैन को दूसरी राजधानी बनाया।

चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का मूल्यांकन–चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य भारत का महानतम सम्राट था। उसने प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह शासन का हो, साम्राज्य विस्तार का, कला पक्ष का हो या आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र का, प्रत्येक में वह शिखर पर था। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार-चंद्रगुप्त ने तलवार की तीक्ष्णता को परखने के लिए उसने दुष्ट तथा अधर्मी शकों को परास्त करके अपने साम्राज्य का प्रचुर विस्तार किया तथा अपने पिता से भी अविजित प्रदेशों को जीतकर अपनी श्रीवृद्धि की। शकों का सत्यानाश करके उसने हिंदू सभ्यता और संस्कृति का पुनरुद्धार किया।

चंद्रगुप्त के कार्यकाल को गुप्तकाल का स्वर्ण युग माना जाता है। मजूमदार का मत है- चंद्रगुप्त द्वितीय ने, राजनीतिक महानता और सांस्कृतिक पुनर्जीवन के नवीन युग को प्रौढ़ता पर पहुंचाया।

टिप्पणी

डॉ. स्मिथ भी मानते हैं कि भारत का शासन संचालन चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल की अपेक्षा कभी भी श्रेष्ठ नहीं रहा।

कुमारगुप्त प्रथम (414 ई.–455 ई.)

चंद्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु के पश्चात कुमारगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। महरौली शिलालेख में कुमारगुप्त को चारों समुद्रों की चंचल लहरों से घिरी हुई पृथ्वी का शासक कहा गया है। कुमारगुप्त ने अपने पराक्रम से अपने पैतृक साम्राज्य को सुरक्षित रखा। **बिलसद अभिलेख** से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त के साम्राज्य में चातुर्दिक सुख और शांति का वातावरण था।

घटनाएं–कुमारगुप्त ने लगभग 40 वर्ष शांति पूर्वक शासन किया। इसके जीवन की प्रमुख घटनाएं निम्नवत हैं-

पुष्यमित्रों से युद्ध– कुमारगुप्त के शासन के अंतिम समय साम्राज्य में अशांति उत्पन्न हो गई थी। पुष्यमित्रों ने अपनी शक्ति संपत्ति अधिक बढ़ा ली थी, तथा गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण करने लगे थे। कुमारगुप्त वृद्ध हो चुका था। अत: उसने अपने पुत्र स्कंदगुप्त को युद्ध भूमि में भेजा। आक्रमण इतना भयंकर था कि गुप्तों की राज्यलक्ष्मी विचलित हो गई। स्कंदगुप्त को एक रात भूमिशैया पर व्यतीत करनी पड़ी। अंत में उसने पुष्यमित्रों को जीता तथा उसने राज्य रूपी पीठ पर अपना बायां पैर रखा। कुछ इतिहासकार पुष्यमित्रों को हूण मानते हैं।

दक्षिण अभियान–यद्यपि गुप्त व वाकाटकों के संबंध मैत्रीपूर्ण थे परंतु कुमारगुप्त के वाकाटक सम्राट प्रवर सेन द्वितीय व नरेंद्रसेन से संबंध अमैत्रीपूर्ण हो गए थे। राय चौधरी ने व्याघ्र बल पराक्रम मुद्राओं के आधार पर मत व्यक्त किया है कि उसने दक्षिण भारत की ओर अभियान किया और व्याघ्र प्रधान वन के क्षेत्रों को अपने अधीन किया। एलन महोदय का मत है कि कुमारगुप्त ने त्रैकूटकों को पराजित करके उनसे दक्षिण गुजरात छीन लिया।

अश्वमेध यज्ञ–मुद्राओं से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया था। एक मुद्रा पर सुसज्जित घोड़ा दिखाया गया है तथा दूसरी ओर अश्वमेध महेंद्र अंकित है।

साम्राज्य विस्तार–कुमारगुप्त को अपने पिता से विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ था। अत: उसने अत्यधिक युद्ध नहीं लड़े क्योंकि न तो वह अत्यधिक पराक्रमी था और न ही युद्ध करने की आवश्यकता ही थी। गुप्त अभिलेखों में उसे गुप्त रूपी आकाश का चंद्रमा कहा है। **वत्सभट्टि** उसके राज्य की सीमाओं के विषय में लिखता है कि उसके राज्य के चातुर्दिक समुद्र कमरबंद है तथा कैलाश एवं सुमेरू उसके ऊंचे कंधे हैं। उसका राज्य हिमालय से मालवा और गुजरात कठियावाड़ से बंगाल तक फैला हुआ था।

टिप्पणी

मूल्यांकन–यद्यपि कुमारगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त की भांति वीर योद्धा न था और न ही चंद्रगुप्त द्वितीय की भांति निर्भीक नेता था परंतु फिर भी कुमारगुप्त का शासन सुख-समृद्धि के लिए विख्यात है। डॉ. मजूमदार के अनुसार- कुमारगुप्त का दीर्घ शासन काल सब कुछ मिलाकर शांतिपूर्ण और समृद्ध था और साम्राज्य ने उसके पिता तथा पितामह की सैन्य विजयों के लाभों का पूर्णरूप से उपभोग किया। मजूमदार, गुप्तकाल का चरमोत्कर्ष कुमार गुप्त के शासनकाल को मानते हैं।

स्कंदगुप्त (455 ई.–467 ई.)

कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात स्कंदगुप्त गद्दी पर बैठा। उसका शासन मुसीबतों व झंझावतों से भरा हुआ था। उसे विरासत में विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ था। मजूमदार के अनुसार- वह एक महान विजेता, राष्ट्र संहारक, गुप्त प्रतिष्ठा का संरक्षक, और सहृदयी शासक था। यदि समुद्रगुप्त सर्वराजोच्छेता और चंद्रगुप्त विक्रमादित्य शकारि था, तो स्कंदगुप्त हूण विजेता था। वह किसी भी दृष्टि में अन्य महान गुप्त सम्राटों से कम न था। स्कंदगुप्त ने अपनी प्रतिभा का प्रमाण अपने पिता के समक्ष ही दे दिया था जब उसने पुष्यमित्रों को पराजित किया था। परंतु उसे अपने शासन में उससे भी भयंकर युद्ध का सामना करना पड़ा

1. **हूणों पर विजय**–पुष्यमित्रों पर विजय के पश्चात स्कंदगुप्त का सबसे भयंकर युद्ध हूणों से हुआ। हूण अत्यंत बर्बर जाति थी। इन्होंने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली थी कि यूरोप और एशिया दोनों महाद्वीपों में इनका आतंक था। भीतरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि जिस समय हूणों का स्कंदगुप्त से युद्ध हुआ उस समय स्कंदगुप्त की भुजाओं के प्रताप से संपूर्ण पृथ्वी कांपने लगी और एक भयंकर बवंडर (आवर्त) उठ खड़ा हुआ। चांद्रव्याकरण में भी अजयत गुप्तों हूणान अर्थात गुप्तों ने हूणों को जीता उल्लिखित था। हूणों को किस स्थान और कहां पराजित किया यह कहना कठिन है परंतु इस विजय से उसका यश चारों दिशाओं में फैल गया। आर. एन. दांडेकर के अनुसार– स्कंदगुप्त सबसे ऊंची प्रशंसा का अधिकारी है जो निस्संदेह हूणों को पराजित करने वाला यूरोप व एशिया का प्रथम वीर था। स्कंदगुप्त ने हूणों द्वारा देश की बर्बादी को अगले 50 वर्षों तक के लिए रोक कर भारत की महती सेवा की।

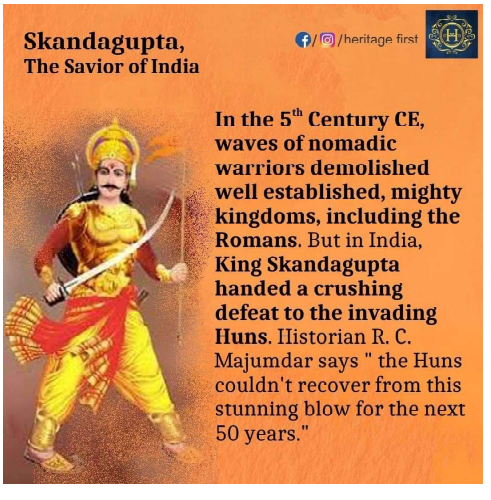

नागों से युद्ध–जूनागढ़ अभिलेख में स्कंदगुप्त द्वारा भुजंगों के मानमर्दन का उल्लेख है। पलीट का मानना है कि उसने भुजंग रूपी नाग (नागवंश) पर विजय प्राप्त की होगी।

टिप्पणी

गोविंद गुप्त का विद्रोह–गोविंद गुप्त चंद्रगुप्त द्वितीय का पुत्र था तथा वैशाली का राज्यपाल था। इतिहासकारों का मानना है कि इसने पश्चिमी मालवा में कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरांत ही विद्रोह कर दिया परंतु स्कंदगुप्त ने विद्रोह को सफलतापूर्वक कुचल दिया।

साम्राज्य विस्तार–उसका साम्राज्य हिमालय से लेकर नर्मदा तक तथा सौराष्ट्र से बंगाल तक विस्तृत था। एक अभिलेख में कहा गया है कि सैकड़ों राजाओं के सिर दरबार में नमस्कार करते समय उसके चरणों में नत हुए। वह सैकड़ों सेनापतियों का सम्राट था। वह इंद्र के समकक्ष और अपने साम्राज्य में शांति का संस्थापक था। जूनागढ़ अभिलेख में वर्णित है कि स्कंदगुप्त ने चतु:समुद्रों से घिरी संपूर्ण पृथ्वी पर अपना अधिकार कर लिया था। दांडेकर महोदय ने प्रशंसा करते हुए कहा है- स्कंदगुप्त ने अपने पितामह की भांति विक्रमादित्य की जो उपाधि धारण की उसका औचित्य उसके इस शौर्यपूर्ण कार्यों से पूरी तरह समझ में आता है।

मूल्यांकन–स्कंदगुप्त अंतिम शक्तिशाली व प्रभावशाली सम्राट था। उसने सदैव अपने विशाल साम्राज्य की अक्षुण्णता के लिए कार्य किया। डॉ. उपाध्याय का मत है- स्कंदगुप्त वीर रस का मूर्तिवान उदाहरण था। वीरता उसकी नस-नस में कूट-कूट कर भरी थी। इसकी वीर रसमयी मूर्ति प्रबल शत्रुओं के हृदय में भी भय का संचार कर देती थी। इन्हीं आलौकिक गुणों पर मुग्ध होकर राज्यलक्ष्मी ने इसका वरण किया।

अपनी प्रगति जांचिए

7. अपनी स्थिति सुदृढ़ करने हेतु, किस गुप्त शासक ने, अन्य राजवंशों से, सबसे अधिक वैवाहिक संबंध स्थापित किए?

   (क) चंद्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) (ख) समुद्रगुप्त

   (ग) स्कंदगुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

8. किस गुप्त शासक ने हूणों को बुरी तरह से पराजित किया था?

   (क) समुद्रगुप्त (ख) स्कंदगुप्त

   (ग) कुमारगुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

4.6 अंतिम गुप्त शासकों का विवरण (467 ई.–550 ई.)

स्कंदगुप्त के पश्चात कोई भी गुप्त सम्राट इस योग्य न था जो इतने विस्तृत साम्राज्य को संभाल पाता। पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, भानुगुप्त आदि कई शासक हुए परंतु इनमें से कोई भी योग्य न था। अंतत: 550 ईसा में इस महान साम्राज्य का अंत हो गया और भारत एक बार पुन: विशृंखलित हो गया।

स्कंदगुप्त के बाद के शासकों का क्रम निम्नानुसार था। हालांकि कालक्रम में अनियमितता है-

टिप्पणी

पुरुगुप्त (467–468 ईस्वी)

स्कन्दगुप्त का कोई पुत्र नहीं था। अतः उसकी मृत्यु के बाद उसका सौतेला भाई पुरुगुप्त सिंहासन पर बैठा।

पुरुगुप्त वृद्धावस्था में शासक बना था, इसलिए उसका शासनकाल अल्पकालीन रहा। उसके सिक्कों से पता चलता है कि उसने 'श्री विक्रम' एवं 'प्रकाशदित्य' की उपाधि धारण की थी। डॉ. राजबली पाण्डेय का मानना है कि श्री विक्रम से इस बात का संकेत मिलता है कि शायद उसकी हूणों से मुठभेड़ हुई थी। उसके साम्राज्य विस्तार और कार्यकारिणी के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। मन्दसौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके शासनकाल में उसका चाचा गोविन्दगुप्त मालवा में स्वतंत्र हो गया था।

नरसिंहगुप्त बालादित्य (468–472 ईस्वी)

पुरुगुप्त के बाद उसका पुत्र नरसिंहगुप्त गद्दी पर बैठा। उसके सिक्कों से पता चलता है कि उसने बालादित्य की उपाधि धारण की थी। उसके साम्राज्य विस्तार और कार्यकलापों के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वह गुप्तवंश का पहला राजा था, जिसने बौद्ध धर्म को ग्रहण किया।

कुमारगुप्त द्वितीय (472 ईस्वी–475 ईस्वी)

नरसिंहगुप्त की मृत्यु के पश्चात् कुमारगुप्त द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसके सिक्कों से पता चलता है कि उसने 'कर्मादित्य' की उपाधि धारण की थी। मन्दसौर लेख से पता चलता है कि मालवा पर उसका अधिकार था। कुमारगुप्त द्वितीय वैष्णव धर्म का अनुयायी था। इसलिए भितरी मुद्रा लेख में उसके नाम के साथ परम भागवत् की उपाधि प्रयुक्त हुई है। उसके शासनकाल में रेशम, जुलाहों की एक श्रेणी ने दशपुर के उस सूर्य मंदिर का जीर्णोद्धार कराया, जिसका निर्माण कुमारगुप्त प्रथम ने करवाया था।

बुद्धगुप्त (477 ईस्वी से 495 ईस्वी)

कुमारगुप्त द्वितीय के पश्चात् बुद्धगुप्त 477 ईस्वी में गद्दी पर बैठा। सारनाथ के लेख से इस बात की पुष्टि होती है। नालन्दा से प्राप्त राजमुद्रा से पता चलता है कि बुद्धगुप्त भी पुरुगुप्त का पुत्र था। अभिलेखों से पता चलता है कि उसका साम्राज्य बंगाल से मध्य भारत तक विस्तृत था। वह लड़खड़ाते हुए गुप्त साम्राज्य को पुनः एकता के सूत्र में आबद्ध व संगठित करने में यथेष्ट सफल रहा। संभवतया उसने 'प्रकाशदित्य' की उपाधि भी धारण की थी। बुद्धगुप्त ने 477 ई से 495 ईस्वी तक शासन किया।

भानुगुप्त (508–530 ई.)

बुद्धगुप्त के पश्चात् भानुगुप्त साम्राज्य का स्वामी बना। सम्भवतः वह बुद्धगुप्त का पुत्र था। एरण अभिलेख (मध्य प्रदेश के सागर जिले में) से विदित होता है। 500 ई व 510 ई. के बीच हूण नेता तोरमाण ने भारत पर आक्रमण किया और उसके पूर्वी मालवा के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में भानुगुप्त के सेनापति गोपराज ने लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की थी। यह अभिलेख सती प्रथा का पहला प्रमाण भी देता है जिसमें

गोपराज की पत्नी सती हुई थी। ह्वेनसांग ने लिखा है कि भानुगुप्त हूण नेता मिहिरकुल (तोरमाण का पुत्र एवं उतराधिकारी) को वार्षिक कर देता था। मंजू श्री मूलकल्प के अनुसार हूणों ने मालवा पर विजय प्राप्त करने के पश्चात मगर तक के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

टिप्पणी

मिहिरकुल (513–528)

512–13 ई. में तोरमाण परलोक सिधार गया। इसके पश्चात उसका पुत्र मिहिरकुल शासक बना। मिहिरकुल के ग्वालियर अभिलेख से पता चलता है कि 513 ई. से 528 ई. के बीच उसने मध्य भारत पर अधिकार कर लिया था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि मिहिरकुल के अत्याचारों से तंग होकर भानुगुप्त ने विद्रोह कर दिया। इस पर मिहिरकुल ने भानुगुप्त पर आक्रमण कर दिया। भानुगुप्त के सैनिकों ने मिहिरकुल को बंदी बना लिया तथा उसे भानुगुप्त के समक्ष उपस्थित किया गया। भानुगुप्त मिहिरकुल को मरवाना चाहता था, किन्तु अपनी माता के कहने पर उसने उसको मुक्त कर दिया। उसके पश्चात मिहिरकुल ने काश्मीर में शरण ली। वहां के हूण राजा ने उसका स्वागत किया। कुछ वर्षो पश्चात मिहिरकुल ने कश्मीर के शासक का वध कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। राजतरंगिणी के लेखक कल्हण ने भी मिहिरकुल को काश्मीर का राजा बताया है।

भानुगुप्त ने मिहिरकुल को पराजित कर दिया। परिणामस्वरूप मध्य भारत, वज्र अथवा मालवा तथा मगध से हूणों की सत्ता समाप्त हो गई, किन्तु वह गुप्त राजशक्ति को पुनः संगठित करने तथा गुप्त साम्राज्य को विघटित होने से नही बचा सका। भानुगुप्त की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र वज्र अथवा गोपचन्द्र शासक बना। वज्र का समीकरण कुमारगुप्त तृतीय से भी किया जाता है।

विष्णुगुप्त

कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विष्णुगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने 550 ई. तक शासन किया। इसके समय में गुप्त साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। तथा गुप्तों की सत्ता पूर्णतया समाप्त हो गई और यहां नवीन शक्तियों का उदय हो गया। इसके बाद सन् 606 में हर्ष का शासन आने तक अराजकता छाई रही।

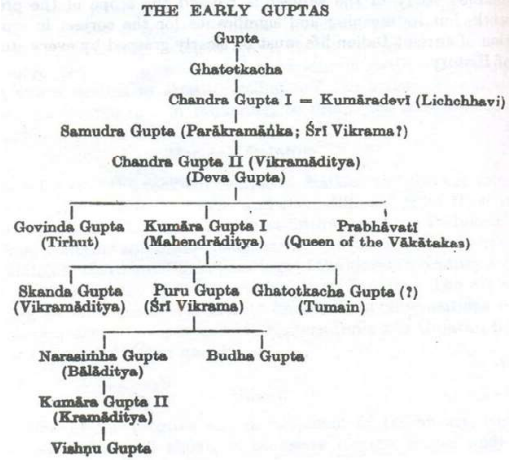

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

9. गुप्त वंश के अंतिम प्रमुख शासक का नाम क्या है?

(क) पुरुगुप्त (ख) बुद्धगुप्त

(ग) स्कंदगुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

10. गुप्त वंश के अंतिम शासक का नाम क्या है?

(क) विष्णुगुप्त (ख) भानुगुप्त

(ग) कुमारगुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

4.7 गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण

भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग के नाम से विख्यात गुप्त काल का लगभग 550 ई. में पतन हो गया। इस वंश के पतन के लिए अनेक कारण जिम्मेदार थे। उत्तराधिकारी इतने योग्य व पराक्रमी न थे जो साम्राज्य को संभाल पाते। ह्वेनसांग ने लिखा है कि अंतिम गुप्त शासक बालादित्य ने कहा था कि "मैंने सुना है कि चोर आ रहे हैं। मैं कीचड़ में छिप जाऊं इतने कायर सम्राट किस प्रकार साम्राज्य की रक्षा कर सकते हैं।" मजूमदार के अनुसार, "केंद्रीय शक्ति की दुर्बलता एवं शक्ति क्षीणता शत्रुओं पर अभिव्यक्त हो गई और विपक्षियों ने इसका लाभ उठाया।"

गुप्त साम्राज्य के अंतिम महान शासक स्कंदगुप्त की 467 ईस्वी में मृत्यु हो जाने के बाद गुप्त साम्राज्य का पतन तेजी से हुआ। गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण निम्नलिखित हैं-

1. अयोग्य तथा निर्बल उत्तराधिकारी
2. शासन व्यवस्था का संघात्मक स्वरूप
3. उच्च पदों का आनुवांशिक होना
4. प्रांतीय शासकों के विशेषाधिकार
5. बाह्य आक्रमण
6. बौद्ध धर्म का प्रभाव

1. अयोग्य तथा निर्बल उत्तराधिकारी– समुद्रगुप्त व चंद्रगुप्त ने गुप्त साम्राज्य का विस्तार संपूर्ण भारत व सीमावर्ती क्षेत्रों में कर दिया था परंतु उसके उत्तराधिकारी इतने विशाल साम्राज्य को न संभाल सके जिससे गुप्तवंश का पतन हो गया।

2. शासन व्यवस्था का संघात्मक स्वरूप– साम्राज्य में अनेक सामंती इकाईयां थी। गुप्तकाल के सामंतों में मौखरि, उत्तरगुप्त, परिव्राजक, सनकानीक, वर्मन, मैत्रक आदि के नाम अल्लेखनीय हैं। इन वंशों के शासक महाराज की उपाधि ग्रहण करते थे। स्थानीय राजाओं तथा गणराज्यों को स्वतंत्रता दी गयी थी। गुप्त शासक अनेक छोटे राजाओं का राजा होता था। सामंत एवं प्रांतीय शासक अपने-अपने क्षेत्रों में पर्याप्त स्वतंत्रता का अनुभव

करते थे। प्रशासन की यह सामंती व्यवस्था कालांतर में साम्राज्य की स्थिरता के लिये घातक साबित हुई। जब तक केन्द्रीय शासक शक्तिशाली रहे तब तक वे दबे रहे। परंतु केन्द्रीय शक्ति के निर्बल होने पर अधीन राजाओं ने स्वतंत्रता घोषित कर दी, जिसके फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य का पतन हुआ।

टिप्पणी

3. शासन व्यवस्था का दोषपूर्ण होना– गुप्तों की प्रशासनिक व्यवस्था में अनेक दोष विद्यमान थे। जैसे प्रांतीय शासकों व सामंतों को विशेषाधिकार, राज्य कर्मचारियों के पद का अनुवांशिक होना, उत्तराधिकार का नियम न होना, उदार दंडनीति आदि। डॉ. रतिभानू सिंह नाहर का विचार है कि आंतरिक दृष्टि से गुप्त शासकों ने अपने पूर्वजों की कठोर दंड नीति की परंपरा का परित्याग कर दिया और अत्यंत उदार दंड व्वस्था का सहारा लिया। उनकी यही उदारता उनके साम्राज्य के लिए अहितकर साबित हुई।

4. सामंतों की महत्वाकांक्षा– गुप्त युग में सामंतवाद का उदय हुआ जो कालांतर में गुप्तों के पतन का कारण बना। सामंतों ने शनै-शनैः अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया था। डॉ. मजूमदार का विचार है कि गुप्त साम्राज्य पर भयंकर प्रहार हूणों ने नहीं बल्कि यशोवर्मन जैसे महत्वकांक्षी सरदारों ने किया। प्रो. रा के अनुसार, "प्रांतपतियों की कुलहित संरक्षण की भावना एवं विरोधी कृतियां गुप्त साम्राज्य के ढांचे के लिए ध्वंसात्मक सिद्ध हुई।"

5. बाह्य आक्रमण–गुप्तों के पतन का एक प्रमुख कारण वैदेशिक आक्रमण भी था। स्कंदगुप्त ने तो हूणों को पराजित कर दिया परंतु परवर्ती गुप्त ऐसा न कर सके और हूणों ने गुप्तों पर लगातार आक्रमण जारी रखे। प्रो. राय का विचार है–गुप्तों को निर्बल बनाने में सबसे बड़ा हाथ हूणों का ही था। इन लोगों ने रोम साम्राज्य के समान गुप्त साम्राज्य को भी गहरा धक्का पहुंचाया।

गुप्त शासकों का हूण संकट की ओर दृष्टिकोण बहुत बुद्धिमतापूर्ण नहीं रहा। स्कंदगुप्त ने हूणों को परास्त किया, लेकिन सिंधु घाटी को जीतकर उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने का प्रयास नहीं किया। उसने केवल हूण संकट को कुछ समय के लिये टाल दिया। बार-बार हूणों का आक्रमण होने के बावजूद भी गुप्त शासकों ने हूणों को रोकने की कोई ठोस व्यवस्था नहीं की। अतः गुप्त साम्राज्य में हूणों की घुसपैठ शुरू हो गयी। एरण अभिलेख से पता चलता है कि हूण नरेश तोरमाण ने 500 ईस्वी के बाद इस प्रदेश को जीतकर अधिकार में कर लिया था। और तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल के काल में हूणों की शक्ति और अधिक बढ़ी। उसने नरसिंहगुप्त-बालादित्य पर आक्रमण किया। मिहिरकुल हार गया, उसे बंदी बना लिया गया, लेकन नरसिंहगुप्त-बालादित्य की माता के कहने पर नरसिंहगुप्त ने उसे छोड़ दिया, जो उसकी मूर्खता थी।

6. युद्धों का आधिक्य व आर्थिक दुर्बलता– गुप्तों ने अत्यधिक युद्ध लड़े थे जिसमें बहुत धन खर्च हुआ जिससे साम्राज्य में आर्थिक दुर्बलता आई। गुप्तकाल का पतन अनायास नहीं हुआ था वरन अनेकानेक कारण थे जिनसे गुप्त साम्राज्य पतन के गर्त में चला गया।

7. बौद्ध धर्म का प्रभाव– प्रारंभिक गुप्त सम्राट वैष्णव धार्मानुयायी थे। वे चक्रवर्ती सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा रखते थे। समुद्रगुप्त का आदर्श धरणिबंधा तथा उसके पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय का आदर्श कृत्स्नपृथ्वीजय था। परंतु कुमारगुप्त प्रथम के समय से

टिप्पणी

गुप्त परिवार पर बौद्ध धर्म की छाप पड़ने लगी। इस धर्म का परिणाम यह निकला कि अंतिम काल के गुप्त शासक पृथ्वी विजय के स्थान पर पुण्यार्जन की चिंता में लग गये। उन्होंने अपने राज्य को चैत्यों और विहारों को सजाने में लगा दिया। इससे उनकी युद्धप्रियता खत्म हो गयी। छठी शताब्दी में हूण आक्रमण तथा आंतरिक कलह ने गुप्त साम्राज्य की स्थिति को अत्यंत कमजोर बना दिया। बुधागुप्त और नरसिंहगुप्त जैसे राजा बौद्धधर्म के प्रभाव में डूब गये।

इस समय भारत में अनेक नयी-नयी शक्तियों का उदय हो रहा था। थानेश्वर में वर्द्धन, कन्नौज में मौखरि, कामरूप में वर्मन तथा मालवा में औलिकरवंशी यशोधर्मन का उदय हुआ। इनमें यशोवर्मन गुप्त साम्राज्य के लिये अत्यंत घातक सिद्ध हुआ। उसने गुप्त साम्राज्य का अधिकांश भाग छीन लिया।

गुप्त साम्राज्य का पतन प्राचीन भारतीय इतिहास की एक प्रमुख घटना थी। इसके साथ ही भारत का इतिहास विभाजन एवं विकेन्द्रीकरण की दिशा में उन्मुख हुआ।

अपनी प्रगति जांचिए

11. गुप्त वंश का अंत कब हुआ?

(क) 425 ई. (ख) 500 ई.

(ग) 550 ई. (घ) इनमें से कोई नहीं

12. किस आक्रांता के बारंबार हमलों से गुप्त वंश कमजोर होता गया?

(क) शक (ख) पार्थियन

(ग) हूण (घ) इनमें से कोई नहीं

4.8 गुप्त साम्राज्य का प्रशासन

भारतीय इतिहास के 'स्वर्णयुग' के नाम से विख्यात गुप्तकाल अत्यंत महत्वपूर्ण काल है। यह सुख-समृद्धि एवं संपन्नता की दृष्टि से अभूतपूर्व युग था। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में गुप्तकाल प्राचीन भारत के इतिहास का मध्ययुग है। पूर्व का समस्त इतिहास इसमें समाप्त होता है तथा भविष्य का संपूर्ण इतिहास इसी से उदित होता है। यह वह काल है जब देश की प्रतिभा का प्रत्येक दिशा में विकास हुआ।

गुप्तकालीन शासन व्यवस्था–डॉ. सैलटोरा के अनुसार, ''गुप्त शासान प्रणाली विगत ऐतिहासिक परंपरा पर आधारित थी तथा तत्कालीन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने के लिए कतिपय नवीन संशोधन कर दिए गए।'' गुप्तों की शासन प्रणाली में मौर्यों, सातवाहनों, सीथियनों तथा कुषाणों के प्रशासन की विधियों का समावेश था। चीनी वृतांत के अनुसार, ''गुप्तों की शासन प्रणाली उदार और लोकरंजक होने के कारण सर्वथा प्रशंसनीय थी तथा राजाओं की शक्ति अपरिमित होने पर भी वे अनियंत्रित अथवा निरंकुश नहीं हो सकते थे।'' निसंदेह गुप्तों की शासन व्यवस्था उच्च कोटि की थी। फाह्यान

लिखता है-''प्रजा सुखी व समृद्ध है। लोगों को अपने घरों में छोटी-छोटी बातों का न तो ब्यौरा देना पड़ता है और न ही किन्हीं न्यायाधीशों या शासकों के यहां हाजिरी।''

टिप्पणी

शासन प्रणाली के प्रमुख आधार स्तंभ–शासन के मुख्यत: दो आधार थे जो अग्रलिखित हैं-

राजतंत्रात्मक–गुप्त शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। सम्राट सर्वोच्च शक्ति था। वह ही कार्यपालिका, व्यवस्थापिका व न्यायापालिका का उद्‌गम स्रोत था। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को एक ऐसा सम्राट बताया है जो देवता रूप में पृथ्वी पर निवास करता था।

सामंतवादी पद्धति–गुप्त साम्राज्य अत्यंत विशाल था तथा सत्ता के विकेंद्रीयकरण के बिना शासन का संचालन अत्यंत दुष्कर था। अतएव सामंतवादी पद्धति प्रचलित की गई।

केंद्रीय शाासन

सम्राट–राजतंत्रात्मक शासन होने के कारण केंद्रीय शासन की धुरी राजा था। सेना, शासन, न्याय व अन्य सभी क्षेत्रों का सर्वोच्च अधिकारी राजा ही था। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार, ''राजा का कर्तव्य है कि वह जनता को उत्तम शासन प्रदान करे, इसे भुलाया नहीं गया था। आदर्श शासक वही है जो अंतरात्मा से जनता को सुख-सुविधा प्रदान करने के लिए दृढ़ संकल्प हो।'' कर्मचारियों की नियुक्ति व पदच्युति भी राजा के द्वारा ही होती थी। अल्तेकर के अनुसार, ''देवत्व होने के कारण राजा को निरंकुश होने का अधिकार प्राप्त होता था ऐसी कोई धारणा नहीं थी। अपने में देवत्व होते हुए भी राजा के लिए युद्ध सेवा करना और योग्य शिक्षा आवश्यक थी।'' राजा महाराजाधिराज, परमेश्वर परमदैवत, राजाधिराज आदि उपाधि धारण करते थे।

मंत्रिपरिषद–राजा को प्रशासनिक कार्यों में सहायता करने व सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद होती थी। कौटिल्य के शासन आधार को ही मान्यता थी कि राजसत्ता का उपभोग सहयोग तथा पारस्परिक सद्‌भावना के आधार पर किया जाना चाहिए। अत: राजा के लिए यह आवश्यक है कि वह सहयोग तथा सत्यपरामर्श प्राप्त करने के लिए मंत्रिपरिषद की नियुक्ति करे। मंत्रियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती थी परंतु बाद में ये पद वंशानुगत हो गए थे। प्रमुख मंत्री महादंडनायक, महाप्रतिहार, महासंधिविग्रहक भंडागारिधिकृत, महापक्षपटलिक, दंडपाशिक आदि थे। राजा इन मंत्रियों से सलाह तो लेता था परंतु इनकी सलाह मानने के लिए बाध्य न था।

प्रांतीय शासन–गुप्त साम्राज्य अत्यंत विस्तृत था। अत: इतने विशाल साम्राज्य पर सीधे केंद्र से शासन करना संभव न था। अत: शासन को प्रांतों में विभक्त किया गया। प्रांतों को भुक्ति, प्रदेश व भोग कहा जाता था। तत्कालीन परिस्थितियों में ऐसा किया जाना शासकीय प्रखरता व बुद्धिमत्ता का परिचायक था। प्रांतीय शासकों की नियुक्ति राजा द्वारा होती थी। इन्हें उपरिक महाराज कहा जाता था। यह राजकुल से संबंधित व्यक्ति होता था। इनका कार्य साम्राज्य प्रांत में शांति और व्यवस्था बनाए रखना, सार्वजनिक हित के कार्य करना, सम्राट की आज्ञा पालन करना था।

टिप्पणी

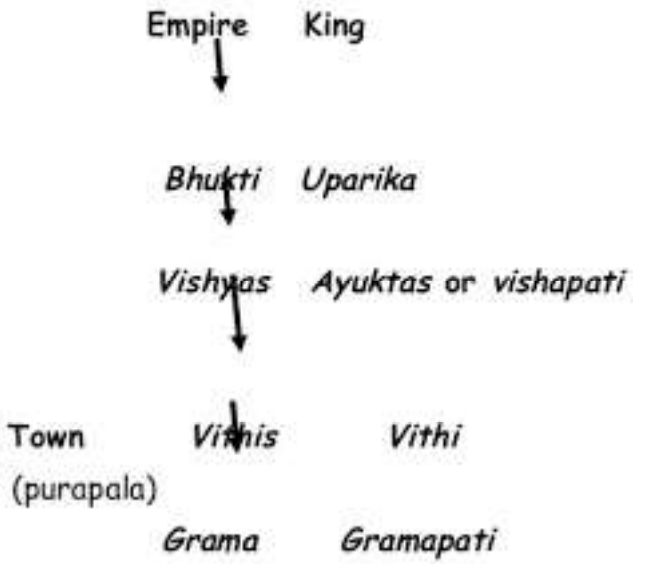

विषय (जिले) का शासन–प्रांत (भुक्ति) अनेक विषय (जिलों) में विभक्त था। विषय का प्रधान अधिकारी विषयपति कहलाता था। इनकी नियुक्ति राजा या उपरिक महाराज द्वारा की जाती थी। प्रांत के अन्य अधिकारी -सार्थवाह, प्रथमकुलिक, प्रथम कायस्थ, पुस्तपाल आदि थे।

स्थानीय (नगर) प्रशासन–एक विषय (जिले) के अन्तर्गत अनेक नगर होते थे। इसका प्रमुख नगरपति होता था। इसकी नियुक्ति विषयपति द्वारा की जाती थी। नगर में एक परिषद होती थी जिसका कार्य कर संग्रह करना, जनता के स्वास्थ्य का ध्यान रखना, नगर शासन चलाना आदि था। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''इस प्रकार यह अनुमान युक्तिसंगत ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में नगर म्युनिसिपैलिटी का प्रबंध भी सुंदर व सुचारू रूप से चलता था।''

ग्राम प्रशासन–यह शासन की सबसे छोटी ईकाई थी। गांव का क्षेत्रफल निश्चित होता था। गांव का प्रमुख अधिकारी ग्रामपति या महत्तर होता था। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''ग्राम पंचायत एक छोटी प्रजातंत्र थी। इसमें प्रजा साधारण अधिकारी का कार्य करती थी। अधिक कार्य होने पर पंचायतों में उपसमितियों का निर्माण कर दिया जाता था। सिंचाई, मंदिर, कृषि आदि की व्यवस्था के लिए अलग-अलग समितियां होती थीं।

न्याय व्यवस्था–न्याय व्यवस्था उत्तम थी। नारद स्मृति से ज्ञात होता है कि 4 प्रकार के न्यायालय थे–(1) राजकीय (2) पूग (3) श्रेणी (4) कुल। फाह्यान के अनुसार, "गुप्तकालीन दंड कठोर नहीं था। अंग-भंग या मृत्युदंड नहीं दिया जाता था।" परंतु विशाखदत्त के अनुसार दंड व्यवस्था अत्यंत कठोर थी। अत: राजा का निर्णय अंतिम होता था।

सैन्य संगठन–विस्तृत साम्राज्य की सुरक्षा के लिए विशाल व सुदृढ़ सेना आवश्यक थी। गुप्त सम्राटों के शासन का आधार उनकी सैन्य शक्ति ही थी। सेना के 4 प्रमुख अंग थे–पदाति, रथरोही, अश्वरोही, गजसेना। पदाति सेना के छोटे समूह को

चमूय कहते थे। सेना का सबसे बड़ा अधिकारी महासेनापति या महाबलाधिकृत था। प्रो. कुमार स्वामी के अनुसार, ''सेना का सर्वोच्च अधिकारी सेनापति होता था। उसके नीचे क्रमशः महादंडनायक, रणभंडागारिक, मंदश्वपति होते थे। सेना में सेवा के संबंध में किसी जाति विशेष से पक्षपात नहीं किया जाता था। सेना पर राजा का अधिकार होता था। प्रांतों में कुछ सेनाएं होती थीं तथा आवश्यकता पड़ने पर वह राजा की सहायता करती थीं।'' अस्त्र-शस्त्र रखने के लिए शस्त्रागार होते थे।

टिप्पणी

राजस्व व्यवस्था–आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर ही था। उपज का जो हिस्सा राजा को दिया जाता था वह भाग कहलाता था। राज्य की आय मुख्यतः 5 कर थे–(1) नियंत्रित कर–भूमिकर (2) सामयिक कर (3) अर्थ दंड (4) राज्य संपत्ति से आय (5) अधीन सामंतों से आय। रघुवंश से ज्ञात होता है कि गुप्त सम्राटों का कर संग्रह का आदर्श प्रजाहित था। कृषि कर में उपज का 1/6 भाग लिया जाता था। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''गुप्तों का राज्य एक आदर्श हिंदू राज्य था। उन्होंने प्राचीन प्रणाली का अनुसरण किया। उसके समय में राज्यकर किसी प्रकार का दंड नहीं था।''

निष्कर्ष–गुप्त शासन प्रणाली अत्यंत श्रेष्ठ व उच्च कोटि की थी। केंद्र व प्रांत में इसका संगठन सुंदर था। गुप्त शासकों ने न केवल अपने साम्राज्य का विस्तार किया वरन विजयी क्षेत्रों में इतना संतुलित व प्रशंसनीय प्रशासन किया जिसका उदाहरण मिलना कठिन है। इनकी शासन प्रणाली अनुकरणीय थी।

परंतु गुप्त शासन में कुछ दोष भी थे। सर्वप्रमुख सामंतवादी प्रणाली थी। सामंत स्वेच्छाचारी हो गए थे। इसके अतिरिक्त प्रांतपतियों को अत्याधिक अधिकार प्रदान किए गए जो कालांतर में घातक सिद्ध हुए। परंतु हम गुप्तकालीन प्रशासन पर गर्व कर सकते हैं जो तत्कालीन तथा बाद के राज्यों के लिए आदर्श बना।

गुप्तकाल स्वर्ण युग

गुप्तकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है क्योंकि स्वर्णयुग में देश की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियां सर्वोत्कृष्ट रहती हैं। ललित कलाओं, साहित्य के विभिन्न अंगों का और सांस्कृतिक जीवन चरम विकास पर होता है देश धनधान्य से संपन्न व यश गौरव व प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है ऐसी सभी विशेषताएं गुप्तयुग में थीं। गुप्तयुग को स्वर्णयुग कहने के अनेकानेक कारण थे-

योग्य व प्रतिभा संपन्न सम्राटों का युग–गुप्तयुग में अनेक सम्राट बहुमुखी प्रतिभा संमन्न थे जो सैनिक व सामरिक दृष्टि से अत्यंत पराक्रमी व महान विजेता थे। प्रशासन की दृष्टि से वे निपुण व कला पारखी थे। इस युग में बाह्य सुरक्षा व आंतरिक शक्ति, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य स्कंदगुप्त जैसे महान सम्राट थे।

राजनीतिक एकता की स्थापना - मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया परंतु गुप्त शासकों ने संपूर्ण भारत को एक छत्र के नीचे संगठित किया तथा विदेशियों से भारत की रक्षा की। आनंद कुमार के अनुसार लगभग वह संपूर्ण जिसका संबंध एशिया की सामान्य आध्यात्मिक चेतना से है जिसके द्वारा उसकी विभिन्नताओं को फिर से मिलाया जा सकता है।

टिप्पणी

आर्थिक समृद्धि का युग–आंतरिक शांति सुव्यवस्था, सुरक्षा, सफल प्रशासन से देश के व्यापार को प्रोत्साहन मिला फलतः व्यापार वाणिज्य की खूब उन्नति हुई। स्मिथ के अनुसार-"इस आर्थिक समृद्धि का कारण देशी व विदेशी व्यापार को इस वंश द्वारा प्रदत्त प्रश्रय ही है।"

धार्मिक सहिष्णुता का युग–यद्यपि गुप्त सम्राट वैष्णव धर्मावलम्बी थे परंतु उनमें उच्चकोटि की धार्मिक सहिष्णुता थी। वे ब्राह्मण, जैन बौद्ध, सभी धर्मों का आदर करते थे। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार वस्तुतः गुप्तयुग सब धर्मों के पनपने का युग था। इस युग में सांप्रदायिक मतभेद न था। हिंदू मंदिर के पास बौद्धों का महाविहार था तथा बुद्ध प्रतिमा के पास जैन मूर्तियां थीं।

सांस्कृतिक एकता–गुप्तकाल में सांस्कृतिक एकता विद्यमान थी। इस युग को भारतीय संस्कृति ने आत्मसात कर लिया। नीलकंठ शास्त्री के मतानुसार- गुप्तकालीन संस्कृति का सबसे प्रधान रूप इसका मिश्रण का युग था। वह मूलतः विभिन्न संस्कृति तमिल और आर्य के मिश्रण का प्रभाव था। आर्य संस्कृति के पुररुद्धार का युग था और इसका मूलमंत्र 'कृणवंतो विश्वमार्यम्' था।

श्रेष्ठ शासन व्यवस्था–गुप्तकाल की शासन व्यवस्था अत्यंत उच्चकोटि की थी। प्रजा संपन्न व सुखी थी। फाह्यान ने लिखा है- प्रजा प्रभूत तथा सुखी थी। सारे देश में न कोई अधिवासी जीव हिंसा करता था न मद्य पीता था और न लहसुन प्याज खाता था।

साहित्य के चरमोत्कर्ष का युग–इस युग में साहित्य में बहुत उन्नति हुई। गुप्त सम्राटों के राज्याश्रय में वैभव और शांति व लेखक नाटककार, दार्शनिक आदि हुए । इसमें

भास, कालिदास, भारति, शूद्रक विशाखदत्त, वसुबन्धु दण्डिन हरिषेण वराहमिहिर आदि थे। गुप्त युग में अद्वितीय साहित्यिक अभिवृद्धि और चरम उन्नति के कारण गुप्तकाल की तुलना पश्चिम के एलिजाबेथ और पेरिक्लीज के युग से की गई है। कालिदास की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

टिप्पणी

कला का विकास व वैज्ञानिक प्रगति–गुप्तकाल में कला का सर्वांगीण विकास हुआ। इस काल की कला मात्र राजमहलों तक सीमित नहीं थी वरन लौकिक जीवन से भी इसका घनिष्ठ संबंध था। स्मिथ के अनुसार- गुप्तकाल की असाधारण कला में शिल्पकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला तीनों सम्बद्ध कलाओं ने सर्वश्रेष्ठता प्राप्त की। अपनी कलागत उन्नति के कारण यह गुप्तकाल के नाम से प्रसिद्ध है। मजूमदार ने भी लिखा है- यह युग कला के पुनर्जीवन का नहीं बल्कि चरमोत्कर्ष तथा प्रस्फुटन का काल था।

वैज्ञानिक क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। आर्यभट्ट ने सर्वप्रथम प्रमाणित किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। दशमलव प्रणाली के आविष्कार, ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर व बाणभट्ट औषद्याचार्य वैद्य इसी युग के थे।

भारतीय संस्कृति के प्रसार का युग–इस युग में भारतीय संस्कृति भौगोलिक सीमाओं में संकुचित न रही वरन इसने भारतीय सीमाओं को पार कर विदेशों की ओर चरण बढ़ाए। गुप्त शासकों ने बृहत्तर भारत की स्थापना की। डॉ. स्मिथ का मत है- असाधारण बौद्धिक परिपूर्णता ने गुप्तकाल को पर्याप्त सीमा तक विदेशों के साथ वैचारिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान की क्षमता प्रदान की।

निष्कर्ष–गुप्तकाल में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में प्रगति हुई। जिससे इस युग को स्वर्णयुग कहना पूर्णत: उपयुक्त है। श्री अरविन्द के अनुसार-गुप्तकाल विश्व के इतिहास में अनुपम और अद्वितीय है। इस चरमोत्कर्ष पराकाष्ठा का सानी विश्व में कोई अन्य काल नहीं हो सका। यह भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ काल था। डॉ. मजूमदार के अनुसार गुप्तकाल में भारतीय बौद्धिकता, कला, विज्ञान व साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में उच्चतम शिखर पर पहुंच गई तथा भारतीय सभ्यता व संस्कृति का अपूर्व उद्‌भव हुआ, जिसका अनुगामी युगों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

अपनी प्रगति जांचिए

13. किस वंश की शासन प्रणाली में मौर्यों, सातवाहनों, सीथियनों तथा कुषाणों के प्रशासन की विधियों का समावेश था?

(क) गुप्त (ख) शक

(ग) हूण (घ) इनमें से कोई नहीं

14. भारतीय इतिहास में किस राजवंश के शासन को स्वर्णकाल कहा जाता है?

(क) मौर्य (ख) गुप्त

(ग) वर्धन (घ) इनमें से कोई नहीं

टिप्पणी

4.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)
6. (ग)
7. (क)
8. (ख)
9. (ग)
10. (क)
11. (ख)
12. (ग)
13. (क)
14. (ख)

4.10 सारांश

भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से विख्यात गुप्त साम्राज्य का विशेष महत्व है। मौर्य युगीन राजनीतिक एकता को गुप्त शासकों ने स्थापित किया व संपूर्ण भारत पर एकछत्र शासन किया। राजनीतिक, धर्म, कला साहित्य सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति का श्रेय गुप्त काल को ही जाता है। भारतीय संस्कृति के पोषक, भारतीय राष्ट्रीयता के रक्षक तथा भारतीयता के उन्नायक गुप्त सम्राटों पर इतिहास को गर्व है।

इस काल में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, कला, साहित्य, तर्कशास्त्र, गणित, खगोल विज्ञान, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में व्यापक आविष्कार और खोज हुए थे जिन्होंने हिन्दू संस्कृति के तत्वों को प्रबुद्ध किया था। गुप्त काल को भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार, धार्मिक सहिष्णुता, आर्थिक समृद्धि तथा शासन व्यवस्था की स्थापना काल के रूप में जाना जाता है।

स्थापत्य के क्षेत्र में देवगढ़ का दशावतार मंदिर, भूमरा का शिव मंदिर बोध गया और सांची के उत्कृष्ट स्तूपों का निर्माण हुआ।

चित्रकला के क्षेत्र में अजंता, एलोरा तथा बाघ की गुफाओं में की गई चित्रकारी तथा फ्रेस्को चित्रकारी परिष्कृत कला के उदाहरण हैं।

साहित्य के क्षेत्र में एक ओर कालिदास ने मेधदूत, ऋतुसंहार तथा अभिज्ञान शांकुतलम् की रचना की तो दूसरी ओर नाटक तथा कविता लेखन में एक नये युग की शुरुआत हुई।

टिप्पणी

यद्यपि यह प्रश्न अत्यंत विवादास्पद है परंतु डॉ. राजबलि पांडेय ने संतुलित मत स्थापित किया है–इसमें कोई संदेह नहीं कि गुप्त प्रारंभ में वैश्य रहे और बाद में वर्ण बदलकर क्षत्रिय हो गए हों। गुप्तों का वैवाहिक संबंध लिच्छवि, नागों, कदंबों व ब्राह्मणों से था इससे प्रकट होता है कि अपने शासन काल में गुप्त क्षत्रिय ही माने जाते थे।

पुराणों में गुप्त वंश के संस्थापक को 'गुप्त' कहा गया है। गुप्त अभिलेखों में गुप्त वंश के संस्थापक का नाम 'श्रीगुप्त' वर्णित है। परंतु गुप्त संस्थापक श्रीगुप्त था अथवा गुप्त यह प्रश्न विवादास्पद है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इस वंश का संस्थापक गुप्त था तथा श्री सम्मानार्थ जोड़ा गया है। इसके पश्चात घटोत्कच का वर्णन है जिसके विषय में अधिक जानकारी नहीं है । संभवतया इसका कार्यकाल 300 ई. से 320 ई. रहा होगा।

चंद्रगुप्त प्रथम के पश्चात उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने साम्राज्य की स्थापना की और शताब्दियों के लिए गुप्त वंश की नींव सुदृढ़ कर दी। उसकी अभूतपूर्व प्रतिभा के कारण चंद्रगुप्त ने अपने जीवनकाल में ही समुद्रगुप्त को राजा बना दिया। वह एक योग्य सम्राट, कुशल सेनापति एवं महान व्यक्तित्व का धनी था। वह एक दिग्विजयी सम्राट था इसी कारण उसकी तुलना नेपोलियन से की जाती है। मुखर्जी के अनुसार-अशोक की ख्याति शांति व अहिंसा के कारण है तो समुद्रगुप्त की ख्याति उसकी दिग्विजयों के कारण है।

समुद्रगुप्त का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विंध्य के भू-भाग, पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। गुजरात, सिंध, पश्चिमी राजपूताना, पश्चिमी पंजाब व कश्मीर के सीमांत प्रदेशों पर उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव था तथा सैंहलद्वीप एवं अन्यान्य द्वीपों के साथ मैत्री संबंध थे। डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार- समुद्रगुप्त ने देशवर्धन की नीति को ग्रहण नहीं किया। उसकी दिग्विजय का मुख्य ध्येय अपनी विजय पताका फहराना था। इस कारण समुद्रगुप्त ने अधिक देशों को अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया।

यद्यपि समुद्रगुप्त को अपने पिता से बहुत ही सीमित साम्राज्य प्राप्त हुआ था परंतु उसने अपनी प्रतिभा व पराक्रम के बल पर अपनी साम्राज्य सीमाओं को भारत के बाहर तक फैलाया था। वह प्रथम भारतीय सम्राट माना जाता है जिसने अपनी वीरता के बल पर दक्षिण व विदेशी शासन को नतमस्तक किया है। विविध समरों में उतरने में दक्ष अपने भुजबल का पराक्रम ही जिसका एकमात्र साथी था, जो अपने पराक्रम के लिए विख्यात था उसका शरीर सैकड़ों घावों से सुशोभित और अतिशय सुंदर था।

हाल में रामगुप्त नामक शासक की कुछ ताम्रमुद्राओं के मिलने से तथा उसका नाम साहित्य एवं अन्य प्रमाणों से ज्ञात होने के कारण कुछ लोग इसी रामगुप्त को काच समझते हैं। परंतु यह भी युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। काच तथा रामगुप्त के सिक्के एक दूसरे से नितांत भिन्न हैं। प्रतीत होता है कि गुप्त शासक चंद्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के बाद काच नाम के किसी शक्तिशाली व्यक्ति ने पाटिलिपुत्र की गुप्तवंशी गद्दी पर अधिकार कर लिया और उसी ने काचांकित मुद्राएं प्रचलित कीं।

चंद्रगुप्त ने विशाल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण के लिए युद्ध एवं वैवाहिक संबंधों दोनों को उपयुक्त समझा। रायचौधरी के अनुसार– गुप्तों के वैवाहिक संबंध उनकी बाह्य नीति में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

टिप्पणी

चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य भारत का महानतम सम्राट था। उसने प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह शासन का हो, साम्राज्य विस्तार का, कला पक्ष का हो या आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र का, प्रत्येक में वह शिखर पर था। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार-चंद्रगुप्त ने तलवार की तीक्ष्णता को परखने के लिए उसने दुष्ट तथा अधर्मी शकों को परास्त करके अपने साम्राज्य का प्रचुर विस्तार किया तथा अपने पिता से भी अविजित प्रदेशों को जीतकर अपनी श्रीवृद्धि की। शकों का सत्यानाश करके उसने हिंदू सभ्यता और संस्कृति का पुनरुद्धार किया।

चंद्रगुप्त के कार्यकाल को गुप्तकाल का स्वर्ण युग माना जाता है। मजूमदार का मत है- चंद्रगुप्त द्वितीय ने, राजनीतिक महानता और सांस्कृतिक पुनर्जीवन के नवीन युग को प्रौढ़ता पर पहुंचाया।

डॉ. स्मिथ भी मानते हैं कि भारत का शासन संचालन चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल की अपेक्षा कभी भी श्रेष्ठ नहीं रहा।

यद्यपि कुमारगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त की भांति वीर योद्धा न था और न ही चंद्रगुप्त द्वितीय की भांति निर्भीक नेता था परंतु फिर भी कुमारगुप्त का शासन सुख-समृद्धि के लिए विख्यात है। डॉ. मजूमदार के अनुसार- कुमारगुप्त का दीर्घ शासन काल सब कुछ मिलाकर शांतिपूर्ण और समृद्ध था और साम्राज्य ने उसके पिता तथा पितामह की सैन्य विजयों के लाभों का पूर्णरूप से उपभोग किया। मजूमदार, गुप्तकाल का चरमोत्कर्ष कुमार गुप्त के शासनकाल को मानते हैं।

पुष्यमित्रों पर विजय के पश्चात स्कंदगुप्त का सबसे भयंकर युद्ध हूणों से हुआ। हूण अत्यंत बर्बर जाति थी। इन्होंने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली थी कि यूरोप और एशिया दोनों महाद्वीपों में इनका आतंक था। भीतरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि जिस समय हूणों का स्कंदगुप्त से युद्ध हुआ उस समय स्कंदगुप्त की भुजाओं के प्रताप से संपूर्ण पृथ्वी कांपने लगी और एक भयंकर बवंडर (आवर्त) उठ खड़ा हुआ। चांद्रव्याकरण में भी अजयत गुप्तों हूणान अर्थात गुप्तों ने हूणों को जीता उल्लिखित था। हूणों को किस स्थान और कहां पराजित किया यह कहना कठिन है परंतु इस विजय से उसका यश चारों दिशाओं में फैल गया। आर. एन. दांडेकर के अनुसार– स्कंदगुप्त सबसे ऊंची प्रशंसा का अधिकारी है जो निस्संदेह हूणों को पराजित करने वाला यूरोप व एशिया का प्रथम वीर था। स्कंदगुप्त ने हूणों द्वारा देश की बर्बादी को अगले 50 वर्षों तक के लिए रोक कर भारत की महती सेवा की।

कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विष्णुगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने 550 ई. तक शासन किया। इसके समय में गुप्त साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। तथा गुप्तों की सत्ता पूर्णतया समाप्त हो गई और यहां नवीन शक्तियों का उदय हो गया। इसके बाद सन् 606 में हर्ष का शासन आने तक अराजकता छाई रही।

कुमारगुप्त प्रथम के समय से गुप्त परिवार पर बौद्ध धर्म की छाप पड़ने लगी। इस धर्म का परिणाम यह निकला कि अंतिम काल के गुप्त शासक पृथ्वी विजय के स्थान पर पुण्यार्जन की चिंता में लग गये। उन्होंने अपने राज्य को चैत्यों और विहारों को सजाने

में लगा दिया। इससे उनकी युद्धप्रियता खत्म हो गयी। 6वीं शता. में हूण आक्रमण तथा आंतरिक कलह ने गुप्त साम्राज्य की स्थिति को अत्यंत कमजोर बना दिया। बुधागुप्त और नरसिंहगुप्त जैसे राजा बौद्धधर्म के प्रभाव में डूब गये।

टिप्पणी

इस समय भारत में अनेक नयी-नयी शक्तियों का उदय हो रहा था। थानेश्वर में वर्द्धन, कन्नौज में मौखरि, कामरूप में वर्मन तथा मालवा में औलिकरवंशी यशोधर्मन का उदय हुआ। इनमें यशोवर्मन गुप्त साम्राज्य के लिये अत्यंत घातक सिद्ध हुआ। उसने गुप्त साम्राज्य का अधिकांश भाग छीन लिया।

गुप्त साम्राज्य का पतन प्राचीन भारतीय इतिहास की एक प्रमुख घटना थी। इसके साथ ही भारत का इतिहास विभाजन एवं विकेन्द्रीकरण की दिशा में उन्मुख हुआ।

डॉ. सैलटोरा के अनुसार, ''गुप्त शासान प्रणाली विगत ऐतिहासिक परंपरा पर आधारित थी तथा तत्कालीन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने के लिए कतिपय नवीन संशोधन कर दिए गए।'' गुप्तों की शासन प्रणाली में मौर्यों, सातवाहनों, सीथियनों तथा कुषाणों के प्रशासन की विधियों का समावेश था। चीनी वृतांत के अनुसार, ''गुप्तों की शासन प्रणाली उदार और लोकरंजक होने के कारण सर्वथा प्रशंसनीय थी तथा राजाओं की शक्ति अपरिमित होने पर भी वे अनियंत्रित अथवा निरंकुश नहीं हो सकते थे।'' निसंदेह गुप्तों की शासन व्यवस्था उच्च कोटि की थी। फाह्यान लिखता है-''प्रजा सुखी व समृद्ध है। लोगों को अपने घरों में छोटी-छोटी बातों का न तो ब्यौरा देना पड़ता है और न ही किन्हीं न्यायाधीशों या शासकों के यहां हाजिरी।''

विस्तृत साम्राज्य की सुरक्षा के लिए विशाल व सुदृढ़ सेना आवश्यक थी। गुप्त सम्राटों के शासन का आधार उनकी सैन्य शक्ति ही थी। सेना के 4 प्रमुख अंग थे–पदाति, रथरोही, अश्वरोही, गजसेना। पदाति सेना के छोटे समूह को चमूय कहते थे। सेना का सबसे बड़ा अधिकारी महासेनापति या महाबलाधिकृत था। प्रो. कुमार स्वामी के अनुसार, ''सेना का सर्वोच्च अधिकारी सेनापति होता था। उसके नीचे क्रमशः महादंडनायक, रणभंडागारिक, मंदश्वपति होते थे। सेना में सेवा के संबंध में किसी जाति विशेष से पक्षपात नहीं किया जाता था। सेना पर राजा का अधिकार होता था। प्रांतों में कुछ सेनाएं होती थीं तथा आवश्यकता पड़ने पर वह राजा की सहायता करती थीं।'' अस्त्र-शस्त्र रखने के लिए शस्त्रागार होते थे।

आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर ही था। उपज का जो हिस्सा राजा को दिया जाता था वह भाग कहलाता था। राज्य की आय मुख्यतः 5 कर थे–(1) नियंत्रित कर–भूमिकर (2) सामयिक कर (3) अर्थ दंड (4) राज्य संपत्ति से आय (5) अधीन सामंतों से आय। रघुवंश से ज्ञात होता है कि गुप्त सम्राटों का कर संग्रह का आदर्श प्रजाहित था। कृषि कर में उपज का 1/6 भाग लिया जाता था। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''गुप्तों का राज्य एक आदर्श हिंदू राज्य था। उन्होंने प्राचीन प्रणाली का अनुसरण किया। उसके समय में राज्यकर किसी प्रकार का दंड नहीं था।''

गुप्तकाल में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में प्रगति हुई। जिससे इस युग को स्वर्णयुग कहना पूर्णतः उपयुक्त है। श्री अरविन्द के अनुसार-गुप्तकाल विश्व के इतिहास में अनुपम और अद्वितीय है। इस चरमोत्कर्ष पराकाष्ठा का सानी विश्व

टिप्पणी

में कोई अन्य काल नहीं हो सका। यह भारतीय इतिहास का सर्वश्रेष्ठ काल था। डॉ. मजूमदार के अनुसार गुप्तकाल में भारतीय बौद्धिकता, कला, विज्ञान व साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में उच्चतम शिखर पर पहुंच गया तथा भारतीय सभ्यता व संस्कृति का अपूर्व हुआ, जिसका अनुगामी युगों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

4.11 मुख्य शब्दावली

- **एकछत्र** : एक राजा का प्रभुत्व।
- **उत्थान** : बल वैभव की वृद्धि।
- **ब्रह्मांड** : संपूर्ण विश्व।
- **स्तंभ** : खंभा।
- **उत्कीर्ण** : उकेरा हुआ।
- **स्थापत्य** : वास्तुकला।
- **दिग्विजय** : हर दिशा में विजय।
- **आर्यावर्त** : उत्तरी भारत।
- **बंदरगाह** : समुद्री जहाजों के रुकने की जगह।
- **चातुर्दिक** : चारों दिशाएं।
- **व्याघ्र** : बाघ।
- **सामंतवाद** : भूमि पर बड़े–बड़े जमींदारों का अधिकार होना।

4.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. गुप्त राजवंश के आरंभ व अंत का काल बताइए।
2. समय की गणना हेतु 'गुप्त संवत' का प्रारंभ किस गुप्त शासक ने किया?
3. गुप्त वंश के दिग्विजयी सम्राट के बारे में कुछ पंक्तियां लिखिए।
4. चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की शकों पर विजय की जानकारी दीजिए।
5. इतिहासकार किस गुप्त शासक के शासनकाल को गुप्तकाल का चरमोत्कर्ष मानते हैं?
6. किस गुप्त शासक ने अपने पितामह की भांति विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. गुप्त राजवंश के इतिहास को जानने में सहायक साधनों का विश्लेषण कीजिए।
2. समुद्रगुप्त के साम्राज्य विस्तार अभियानों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

3. चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य द्वारा अपनी सीमाओं के विस्तार हेतु अपनाई गई नीतियों की विवेचना कीजिए।
4. कुमारगुप्त एवं पुष्यमित्रों के बीच हुए युद्ध का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
5. स्कंदगुप्त की हूणों पर विजय के बारे में एक लेख लिखिए।
6. गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
7. 'गुप्त प्रशासन जनता एवं राष्ट्र हितों हेतु उत्तम था' कथन का विवेचन कीजिए।
8. 'भारतीय इतिहास का स्वर्ण काल, गुप्त काल है' – सिद्ध कीजिए।

टिप्पणी

4.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।
3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।
4. झा, डी. एन.: प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.: द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.: इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.: (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,: द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.: प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीताः ''प्राचीन भारत का इतिहास'' मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंदः ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूमः II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।

इकाई 5 गुप्त और पुष्यभूति के समकालीन

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 गुप्त और पुष्यभूति के समकालीन
5.3 वाकाटक
5.4 हूण और दशपुरा के औलिकर
  5.4.1 हूण
  5.4.2 दशपुरा के औलिकर
5.5 मौखरी वंश, उत्तर गुप्त वंश एवं वल्लभी के मैत्रक
  5.5.1 मौखरी वंश
  5.5.2 उत्तर गुप्त वंश
  5.5.3 वल्लभी के मैत्रक
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

छठी सदी ई. पश्चात में गुप्त साम्राज्य के विघटन ने क्रमशः बहुत से छोटे राज्यों के विकास के मार्ग को प्रशस्त किया। कुछ निश्चित क्षेत्रों में नये छोटे राज्यों का उदय हुआ तो कुछ राज्यों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया जिन्होंने गुप्त शासकों के सामंतीय आधिपत्य को स्वीकार किया था, जैसे कि यशोवर्मन और मौखरी, हूण तथा बाद में मगध के उत्तर गुप्त शासक अब नवीन राजनीतिक शक्तियां थीं। इनके अतिरिक्त पुष्यभूति, गौड़ों, वर्मनों का काफी महत्व हो गया। तत्पश्चात प्रतिहार, पाल, राष्ट्रकूट और चोल वंश का भी आगमन हुआ।

इस इकाई में हम गुप्त और पुष्यभूति के समकालीन प्रमुख राजवंशों (वाकाटक, हूण, औलिकर, मौखरी, उत्तर गुप्त और मैत्रक) वंशों का अध्ययन करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- गुप्त और पुष्यभूति के शासन के दौरान और उनके बाद की परिस्थितियों के बारे में जान पाएंगे;
- इनके समकालीन राजवंशों की स्थिति समझ पाएंगे;
- वाकाटक वंश और इनके राज्य विस्तार को जान पाएंगे;

- हूण और दशपुरा के औलिकरों के महत्व व उपलब्धियों को समझ पाएंगे;
- मौखरी वंश, उत्तर गुप्त वंश तथा वल्लभी के मैत्रकों के भारतीय इतिहास में योगदान को जान पाएंगे।

टिप्पणी

5.2 गुप्त और पुष्यभूति के समकालीन

इतिहास की प्रवृति उत्थान और पतन की रही है। यही प्रवृति गुप्त वंश की भी दिखाई देती है। छठी शताब्दी यानी 550 ई.पू. तक गुप्त साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया था। गुप्त साम्राज्य के प्रमुख वंशज स्कंदगुप्त का शासन हूणों के साथ युद्ध करते हुए बीत गया और यहीं से गुप्त शासन के अंत की शुरुआत मानी जा सकती है। हालांकि स्कंदगुप्त के बाद उसके उत्तराधिकारियों ने 550 ई. पश्चात तक शासन किया था

गुप्तोत्तर काल

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत की राजनीति और भौगोलिक सीमाओं के टुकड़े होने शुरू हो गए थे। इस समय गुप्त शासन में एकजुट हुई राजनीतिक शक्ति के प्रतीक विभिन्न सामंतों और शासकों ने स्वयं को स्वयंभू शासक घोषित करके अपनी स्व्घोषित स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। इसके साथ ही गुप्त वंश से जुड़े कुछ राजनीतिक अधिकारियों ने अवसर का लाभ उठाते हुए अपने–अपने वंश की स्थापना करने का प्रयास किया जिन्हें गुप्तोत्तर शासकों के नाम से जाना जाता है।

इसके अतिरिक्त गुप्त शासन के पतन के दौरान और बाद प्रमुख रूप से भारत में जिन राजनैतिक शक्तियों का उदय दिखाई देता है उनमें हूण, मौखरी, मैत्रक, वाकाटक (आंध्र प्रदेश एवं मध्य भारत), दशपुरा के औलिकर (संपूर्ण उत्तर भारत) पुष्यभूति और गौड़ प्रमुख शक्तियों के रूप में दिखाई देती हैं।

यहां हम पहले इन वंशों के संक्षिप्त परिचय के बाद प्रमुख राजवंशों का विस्तार से अध्ययन कर इनके बारे में अपने ज्ञान का विस्तार करेंगे।

वाकाटक

इस वंश ने दक्षिण–मध्य भारत पर 250 ई. से 500 ई. तक शासन किया। ये गुप्त वंश के समकालीन थे। ये सातवाहन वंश के उत्तराधिकारी थे।

उत्तर गुप्त वंश

गुप्त वंश की पताका गिरने के बाद मगध और मालवा क्षेत्रों में उत्तर गुप्त वंश ने लगभग दो शताब्दियों तक शासन किया था। इस वंश क्रम में कृष्णगुप्त के बाद हर्षगुप्त, जीवितगुप्त, कुमारगुप्त, दामोदरगुप्त, महासनगुप्त, माधवगुप्त, आदित्यसेन आदि विभिन्न शासकों का उल्लेख मिलता है।

मैत्रक

गुप्तकाल के एक सैनिक अधिकारी भट्टार्क और उसके उत्तराधिकारियों ने सौराष्ट्र में अपना शासन स्थापित कर लिया। बौद्ध धर्म के अनुयायी मैत्रक वंश के शासक शिक्षा और वाणिज्य के विस्तार में सफल हुए थे। यह वंश अरब शासकों को भारत से दूर रखने में सफल हुआ था।

टिप्पणी

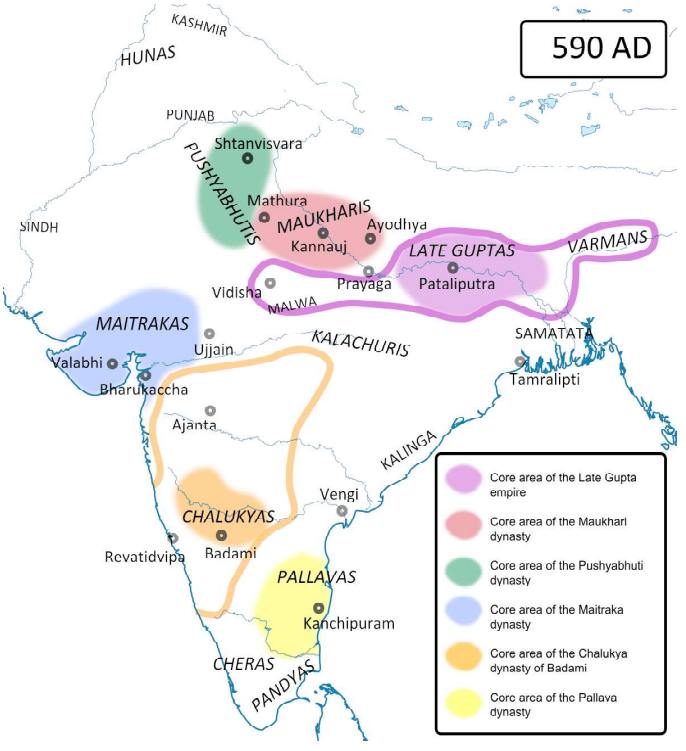

हूण

कुमारगुप्त के शासनकाल में सबसे पहले मध्य एशिया से हूण प्रजाति का आगमन हुआ था। गुप्त साम्राज्य के कुमारगुप्त और स्कंदगुप्त ने हूणों को भारत सीमा से बाहर रखा था। लेकिन इस वंश के समाप्त होते ही तीस वर्ष के अंदर हूणों ने भारत को जीत कर कुछ समय के लिए शासन कर लिया। उत्तर भारत में सफलतापूर्वक शासन करते हुए 530 ई.पू. के लगभग अंतिम हूण शासक मिहिरकुल, यशोवर्मन द्वारा पराजित हो गया।

मौखरी

गुप्त साम्राज्य के एक सामंत हरिवर्मा ने मौखरी वंश की नींव रखते हुए कन्नौज को अपना केंद्र बनाते हुए अच्छी तरह से शासन किया था। इस वंश का अंतिम शासक ग्रहवर्मा अंतिम शासक सिद्ध हुआ क्योंकि इसकी मृत्यु के बाद मौखरि वंश समाप्त हो गया था।

पुष्यभूति

दिल्ली के उत्तरी भाग में पुष्यभूति नाम के सामंत ने अपना साम्राज्य स्थापित किया था। पुष्यभूति वंश का शासक हर्षवर्धन एक प्रमुख शासक के रूप में सामने आया था। इसने बहुत कुशलता से अपने समकालीन सामंतों पर विजय प्राप्त करते हुए समूचे उत्तर भारत को अपने अधीन कर लिया था।

गौड़

हर्षवर्धन के समकालीन गौड़ शासकों ने बंगाल पर थोड़े समय ही शासन किया था। हर्षवर्धन ने अपने भाई की हत्या का बदला लेने के लिए इस वंश के अंतिम शासक शशांक की हत्या की थी।

टिप्पणी

हर्षवर्धन

हर्षवर्धन के बारे में विभिन्न प्रलेखों जैसे बाणभट्ट के हर्षचरित, ह्वेनसांग संस्मरण और विभिन्न प्रलेखों और सिक्कों के माध्यम से पता चलता है।

हर्षवर्धन के पिता प्रभाकरवर्मन पुष्यभूति वंश के पहले शासक थे। हर्ष को शासक बनने का मौका 606 ई. में मिला जब उसके भाई राज्यवर्धन जो थानेश्वर (हरियाणा) के शासक थे और उनकी गौड़ शासक शशांक ने हत्या कर दी थी। हर्ष ने इस घटना का बदला लेते हुए अपनी बहन जो मौखरि शासक ग्रहवर्मा की पत्नी थी और मालवा के राजा देवगुप्त द्वारा अपने पति की हत्या के बाद विंध्य के जंगलों में जीवनयापन कर रही थी, को बाहर लाकर कन्नौज का शासन सौंप दिया था। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से हर्ष ने कन्नौज पर शासन किया था।

इसके अलावा हर्ष ने पंजाब, बंगाल, मिथिला और उड़ीसा जैसे उत्तरी भारत के क्षेत्र भी अपनी राज्यसीमा में मिला लिए थे। हर्ष ने कुशलतापूर्वक लगभग पूरे उत्तर भारत पर शासन करते हुए अपने राज्य में शिक्षा, धर्म, व्यापार और सैन्य शक्ति को मजबूत कर लिया था। एक विद्वान और साहित्यकार होने के कारण हर्ष के राज्य में बाणभट्ट और मयूर राजकीय सम्मान प्राप्त कवि थे। कहते हैं हर्ष ने न केवल भारत बल्कि नेपाल और कश्मीर तक शासन किया था।

अपनी प्रगति जांचिए

1. उत्तर गुप्त वंश का शासन किस वंश के पतन के बाद आरंभ हुआ?
   (क) गुप्त (ख) मौर्य
   (ग) वर्धन (घ) इनमें से कोई नहीं
2. हर्षवर्धन के राज्य की स्थापना उसके किस पूर्ववर्ती शासक ने की थी?
   (क) चंद्रगुप्त (ख) पुष्यभूति
   (ग) शशांक (घ) इनमें से कोई नहीं

5.3 वाकाटक

वाकाटक दक्षिण भारत की प्रमुख शक्ति थे। सातवाहनों के विनाशोपरांत तृतीय शताब्दी ई. के मध्य भाग में वाकाटक राजवंश का प्रादुर्भाव हुआ। इसकी स्थापना विंध्यशक्ति द्वारा की गई थी। गुप्त वंश का उत्तरी भारत में वर्चस्व था तो वाकाटकों को दक्षिण भारत में शासन करने वाले राजवंशों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। वायु व ब्राह्मण पुराण के अनुसार, "कोलिकिलों के 96 वर्ष तक शासन कर लेने के अनंतर विंध्य शक्ति का उदय हुआ था।"

कुछ विद्वान कोलिकिलों शब्द के आधार पर वाकाटकों को विदेशी मानते हैं परंतु यह असंगत व अतार्किक हैं। पुराणों में विंध्यशक्ति और कोलिकिल शक्तियों को एक-दूसरे से सर्वथा पृथक माना गया है।

टिप्पणी

वाकाटकों के मूल निवास स्थान में भी मत विभिन्नता है। कुछ इतिहासकार इसे पन्ना राज्य में बहने वाली किल-किल नदी का तटवर्ती प्रदेश मानते हैं, जबकि डॉ. जायसवाल के अनुसार, वाकाटकों का आदि स्थान ओरछा राज्य में वर्तमान बागाट नामक ग्राम रहा होगा जिसका प्राचीन नाम संभवतः वकाट होगा जिस पर इस राज्य का नाम वाकाटक पड़ा। स्मिथ व कुछ अन्य विद्वानों ने इनका मूल निवास स्थान उत्तरी भारत माना है क्योंकि इनकी भाषा संस्कृत थी। परंतु डॉ. मिराशी इन तथ्यों का खंडन करते हुए कहते हैं कि वाकाटकों का संबंध दक्षिण से ही था। उनकी उपाधियां उन्हें दक्षिण का ही सिद्ध करती हैं। इनका संबंध विदिशा से होगा।

वाकाटक वंश के संस्थापक–वाकाटक वंश का प्रथम स्वतंत्र सम्राट विंध्यशक्ति था। इसने 255 ई. से 275 ई. तक शासन किया। इसने विदिशा व उसके सीमावर्ती क्षेत्रों पर शासन किया।

प्रवरसेन प्रथम (275-335 ई.)–विंध्यशक्ति की मृत्यु के पश्चात उसका पराक्रमी पुत्र प्रवरसेन राजा बना। उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं को नर्मदा तक विस्तृत कर 'सम्राट' की उपाधि धारण की। उसने 4 अश्वमेध यज्ञ किए जो उसकी शक्ति के परिचायक हैं। डॉ. अल्तेकर का मत है कि उसके द्वारा अश्वमेध यज्ञों का किया जाना संभवतः उसके द्वारा चार युद्धों में सफलता इसका कारण था। उसके साम्राज्य में मालवा, बरार, मध्य प्रदेश, उत्तरी महाराष्ट्र, हैदराबाद, काठियावाड़ व दक्षिण कौशल के कुछ प्रदेश सम्मिलित हैं। डॉ. जायसवाल के अनुसार, प्रवरसेन वास्तव में समुचित भारत का सर्वोच्च अधिपति था।

रुद्रसेन प्रथम (335-360 ई.)–प्रवरसेन के शासनकाल में उसके 4 पुत्र प्रांतों के गवर्नर थे। प्रवरसेन की मृत्यु के पश्चात चारों ने अलग-अलग राज्य स्थापित कर लिए। वाकाटक वंशावली में रुद्रसेन प्रथम को ही उसका उत्तराधिकारी स्वीकार किया गया है। अल्तेकर का मत है कि रुद्रसेन ने वंश के क्षीण गौरव तथा प्रभुत्व को बहुत हद तक पुनः प्रतिष्ठित किया।

पृथ्वीसेन (360-385 ई.)–रुद्रसेन प्रथम का उत्तराधिकारी पृथ्वीसेन न तो कुशल योद्धा था और न ही बहुत कुशल प्रबंधक। उसने 25 वर्ष तक शासन किया।

रुद्रसेन द्वितीय (385-390 ई.)–रुद्रसेन द्वितीय अपने श्वसुर-चंद्रगुप्त द्वितीय के प्रभाव में था, परंतु 5 वर्ष तक शासन के पश्चात अल्पायु में ही उसकी मृत्यु हो गई तत्पश्चात प्रभावती गुप्त ने संरक्षिका के रूप में 410 ई. तक शासन किया।

प्रवरसेन द्वितीय–प्रवरसेन द्वितीय 410 ई. में सम्राट बना था। एक साहित्यिक परंपरा के अनुसार उसने अपने शासनकाल के प्रारंभिक वर्ष यौवन की रंगरलियों में गुजारे परंतु बाद में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की मृत्यु हुई तो उसने अपने नाना के शासन का संपूर्ण भार ग्रहण किया। इसने वाकाटक राजधानी नंदिवर्धन के स्थान पर प्रवरपुर की स्थापना की। इसकी मृत्यु 440 ई. में हुई।

टिप्पणी

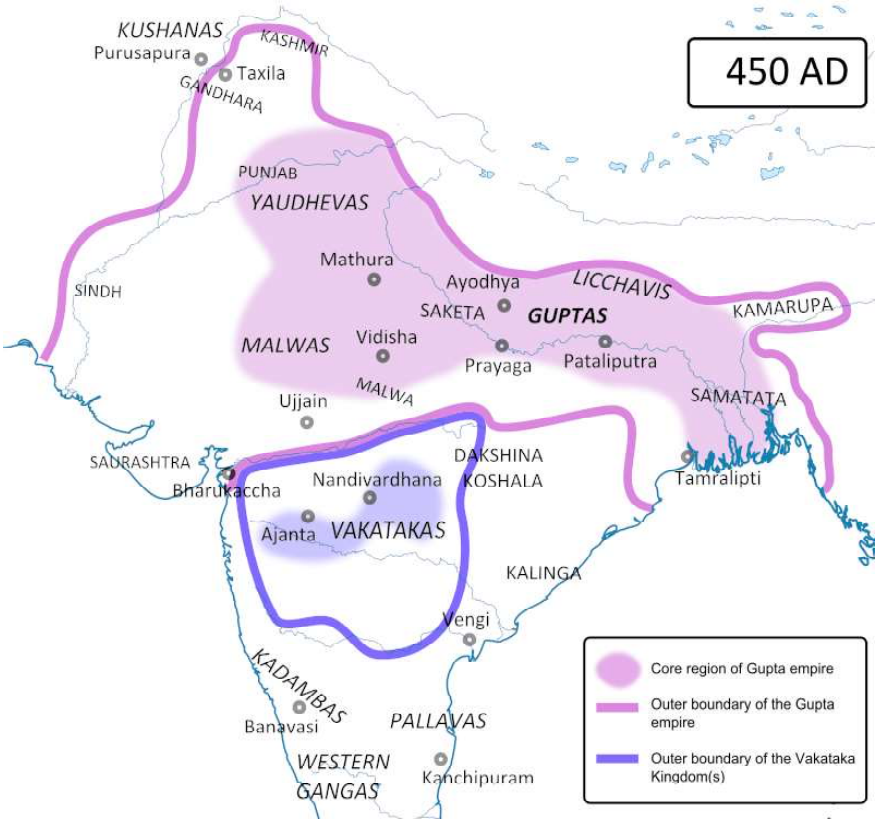

नरेंद्रसेन (440-460 ईसा)–प्रवरसेन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र नरेंद्रसेन राजा बना। वाकाटक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि नरेंद्रसेन ने अपने वंश की कीर्ति को पुन:स्थापित किया। ऐसा माना जाता है कि उसके समय नलराजा भवदत्तवर्मा ने आक्रमण किया था तथा विजय प्राप्त की। भवदत्त वर्मा की मृत्यु के पश्चात नरेंद्रसेन ने अपने खोए हुए प्रदेशों को पुन: प्राप्त किया।

पृथ्वीसेन–पृथ्वीसेन को भी अत्यधिक संघर्ष करना पड़ा। बालाघाट ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसे दो बार अपने वंश की कीर्ति की रक्षा करनी पड़ी थी। परंतु उसने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की इसका उल्लेख नहीं है। उसने संभवत: नल व त्रैकूटक वंश से युद्ध किया होगा।

पृथ्वीसेन के पश्चात वाकाटक वंश का नेतृत्व बाशिम शाखा के हरिसेन ने किया। हरिसेन का कोई पुत्र न था। अत: इसकी मृत्यु के पश्चात वाकाटक वंश का पतन हो गया।

वाकाटक वंश का महत्व–वाकाटक वंश भारतीय इतिहास में अपना विशेष स्थान रखता है। वाकाटकों ने अपने प्रयासों से कुषाण सत्ता को भारतीय सीमा के बाहर धकेल कर आर्यवर्त को अपने शासन का केंद्र बनाया। इन्होंने सार्वभौमिकता की कल्पना को साकार किया। वेदों की भाषा संस्कृत को अपनी राष्ट्र भाषा बनाया तथा पुरातन भारतीय संस्कृति को पुन: प्रतिष्ठित करने का भरसक प्रयत्न किया। कला के क्षेत्र में भी वाकाटकों ने अत्यधिक उन्नति की। अजंता की 16, 17, 19 नंबर की गुफाएं वाकाटक युग की

ही हैं। तिगवा व नचना के मंदिर भी जीवंत कला के अनुपम नमूने हैं। डॉ. त्रिपाठी का मत है कि "गुप्तों के समकालीन वाकाटक वंश भी बहुत शक्तिशाली था।" जे. डुब्रील के अनुसार, "दक्षिण के उन समस्त राजवंशों में जिन्होंने तीसरी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी ई. तक राज्य किया, सबसे अधिक गौरवपूर्ण तथा सम्मानीय स्थान का पात्र सबसे आगे एवं संपूर्ण दक्षिणापथ में श्रेष्ठ सभ्यता वाला निस्संदेह वाकाटक का यशस्वी राजवंश था।"

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. वाकाटक वंश के संस्थापक का नाम क्या था?

(क) रूद्रसेन (ख) प्रवरसेन

(ग) विंध्यशक्ति (घ) इनमें से कोई नहीं

4. वाकाटक वंश का अंतिम शासक कौन था?

(क) हरिसेन (ख) नरेंद्रसेन

(ग) प्रवरसेन द्वितीय (घ) इनमें से कोई नहीं

5.4 हूण और दशपुरा के औलिकर

इस अध्याय में हम हूण तथा दशपुरा के औलिकर के बारे में अध्ययन करेंगे।

5.4.1 हूण

हूण का परिचय–हूण शब्द की उत्पत्ति हून-यू-या हियून-यू शब्द से हुई है। हूण जाति खानाबदोश व असभ्य लोगों का समूह थी। कुछ विद्वान चीन की हूंग-नू जाति से हूणों की उत्पत्ति स्वीकारते हैं तथा कुछ इन्हें एप्थालाइट जाति का मानते हैं। ये बर्बर व निर्दयी थे तथा मध्य एशिया के निवासी थे। बाद में यह जाति दो भागों में विभाजित हो गई। एक धारा वोल्गा की ओर व दूसरी आक्सस की ओर उन्मुख हुई। यूरोप की तरफ जाने वाले काले हूण तथा फारस पर प्रभुत्व करने वाले श्वेत हूण कहलाए। फारस में शासन करने वालों ने बल्ख को अपनी राजधानी बनाया।

हूणों का भारत पर आक्रमण–इस क्रूर भयंकर व बर्बर जाति ने भारत पर टिड्डी दल की भांति आक्रमण किया। गुप्त शासकों की कमजोरी का लाभ उठाकर इन्होंने तीन बार आक्रमण किए।

प्रथम आक्रमण–प्रथम आक्रमण कुमारगुप्त के समय हुआ था जिसमें स्कंदगुप्त ने हूणों का सामना किया। चांद्र व्याकरण में अजयतगुप्त को हूणान कहा गया है। इसमें स्कंदगुप्त ने हूणों को पराजित कर दिया। पराजित हूणों ने भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर शरण ली।

टिप्पणी

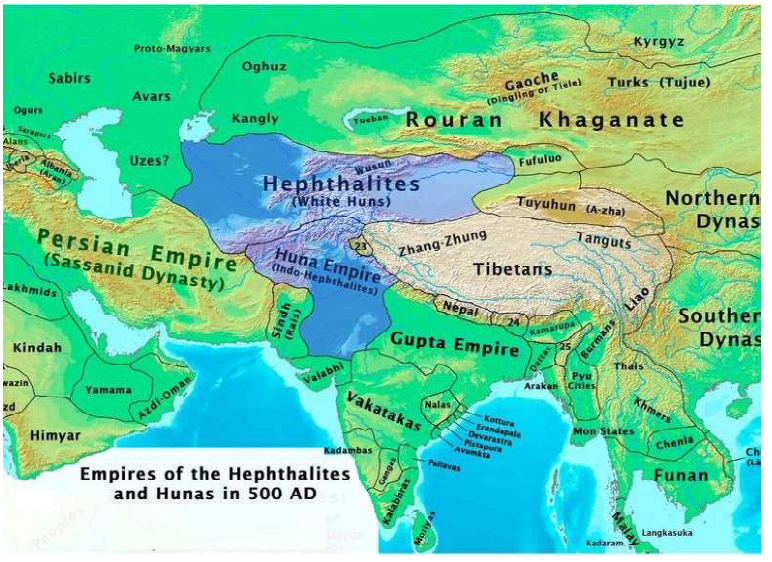

तोरमाण का आक्रमण–स्कंदगुप्त की मृत्यु के पश्चात तोरमाण के नेतृत्व में हूणों ने आक्रमण किया। बुद्धगुप्त के पश्चात एरण पर हूणों का अधिकार हो गया तथा वहां के सामंत घेन्य विष्णु ने तोरमाण की आधीनता स्वीकार कर ली। तोरमाण प्रथम हूण सम्राट था जिसने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया। विद्वानों के अनुसार, "वस्तुतः तोरमाण प्रथम हूण था जिसने भारत की मुख्य भूमि पर अपना गहरा प्रभाव स्थापित किया। इसने अनेक सिक्के भी ढलवाए। ग्वालियर लेख से ज्ञात होता है कि वह अनेक गुणों से संपन्न था। उसने सत्य, शौर्य तथा न्याय आदि से पृथ्वी पर शासन किया।" इसकी मृत्यु 511 ई. में हुई थी।

मिहिरकुल का आक्रमण–मिहिरकुल तोरमाण का पुत्र था। अतः तोरमाण की मृत्यु के पश्चात वह गद्दी पर आसीन हुआ। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि मगध सम्राट नरसिंह गुप्त ने मिहिरकुल को कर देना बंद कर दिया। मिहिरकुल के आक्रमण को सुनकर वह एक द्वीप में जा छिपा। ह्वेनसांग ने लिखा है– कुछ शताब्दी पूर्व मो-हि-कु-लो (मिहिरकुल) नामक राजा जिसकी राजधानी यह नगर (शाकल) थी भारतीयों पर शासन करता था। सब पड़ोसी राज्य उसके अधीन थे। उसने अपने संपूर्ण राज्य में बौद्ध संघ के पूर्ण विनाश की आज्ञा दी थी। एक लोककथा के अनुसार मिहिरकुल ने लंका विजय की थी। मिहिरकुल बालादित्य से पराजित हुआ और मिहिरकुल की पराजय के साथ ही हूणों का प्रभाव भी समाप्त हो गया।

हूण आक्रमण का प्रभाव–हूण आक्रमण के प्रमुख प्रभाव निम्न वर्णित हैं–

राजनीतिक प्रभाव–हूणों के आक्रमण से भारतीय राजनीति पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। गुप्तों की पतन प्रक्रिया तीव्रतम हुई जिससे राजनीतिक एकता समाप्त हुई साथ ही इन आक्रमणों की नृशंसता ने कतिपय नरेशों को कलुषित राजनीति का पाठ पढ़ाया।

सांस्कृतिक प्रभाव–हूणों ने भारत की संस्कृति के प्रतीक मंदिर व अनेक कलाकृतियों को नष्ट कर दिया जिससे भारतीय धरोहरों को हानि पहुंची।

नैतिक प्रभाव–भारतीयों के नैतिक चरित्र पर प्रभाव पड़ा। हवेल का मानना है, "भारत में हूण रक्त के मिश्रण ने भारतीय तथा आर्य नैतिकता के उच्च आदर्श को

निम्नस्तर पर ला खड़ा किया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज में अनेक प्रकार के निरर्थक अंधविश्वास उत्पन्न हो गए जिनकी कल्पना आर्यावर्त के महान दार्शनिकों व गुरुओं ने भी नहीं की थी।"

टिप्पणी

सामाजिक प्रभाव–हूणों के आक्रमणों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। वैवाहिक संबंध स्थापित किए गए जिससे आर्यों के रक्त की पवित्रता समाप्त हो गई। इन संबंधों से अनेक उपजातियां बनीं जिससे जातिगत जटिलताएं व संकीर्णताएं बढ़ीं। डॉ. स्मिथ के अनुसार जिन 36 राजपूत जातियों का उल्लेख किया जाता है उनमें से यथार्थ में एक को हूण नाम दिया जाता है।

बौद्ध धर्म पर कुठाराघात–मिहिरकुल बौद्ध विरोधी था इसी कारण उसने अनेक मठों, विहारों, चैत्यों और पांडुलिपियों को नष्ट करा दिया। ह्वेनसांग लिखता है–"मिहिरकुल घोर बौद्ध विरोधी था। उसने 5 द्वीपों के बौद्ध भिक्षुओं को समाप्त करने तथा कुछ भी शेष न छोड़ने का आदेश दिया।"

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि हूणों के आक्रमण के अत्यंत महत्वपूर्ण व घातक परिणाम हुए। इसने हमारी संस्कृति को अत्यधिक क्षति पहुंचाई।

5.4.2 दशपुरा के औलिकर

औलिकर

गुप्त साम्राज्य सामंती व्यवस्था पर आधारित था, और जैसे–जैसे केन्द्रीय शक्ति कमजोर होती गयी वैसे–वैसे सहयोगी सामंत लोग शक्तिशाली होते गये। गुप्त शासकों के समय मन्दसौर एक महत्त्वपूर्ण उपशासित प्रान्त था। यह औलिकर वंश के शासकों की राजधानी थी। गुप्त काल में यहां का शक्तिशाली सामंत शासक बन गया। यह औलिकर वंश का था। मन्दसौर अभिलेख इसके अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इस अभिलेख के अनुसार हूणों से भारत को मुक्त करने का श्रेय भी औलिकर शासक यशोधर्मन को दिया जाता है।

औलिकर वंश

यशोधर्मन का उत्थान एवं पतन 528 से 543 ईस्वी के बीच हुआ था। मंदसौर प्रशस्ति में उसे जनेन्द्र कहा गया है। उसका पूरा नाम जनेन्द्र यशोधर्मन था और वह औलिकर वंश से संबंधित था।

टिप्पणी

मालवा का राजा यशोधर्मन

गुप्त शासकों की शक्ति को हूणों के ही समान गहरा आघात पहुंचाने वाली शक्ति यशोधर्मन थी, जो 530 ईस्वी में मध्य भारत के राजनीतिक गगनमंडल में उल्का की भांति चमक उठा। मालवा के इस पराक्रमी नरेश की उत्त्पत्ति एवं प्रारंभिक जीवन के विषय में ज्यादा जानकारी प्राप्त नहीं है। मंदसौर के पास रिष्ठलपुर नामक स्थान से प्राप्त एक लेख में यशोधर्मन के पिता का नाम प्रकाशधर्मन मिलता है। उन्हें अधिराज कहा गया है, जिसने तोरमाण को पराजित किया था। उसकी तिथि 515 ईस्वी है।

यशोधर्मन की सैनिक उपलब्धियों का विवरण हमें मंदसौर के दो अभिलेखों से प्राप्त होता है। इसमें एक की तिथि मालव संवत् 589 अर्थात् 532 ईस्वी है, तथा यह उसकी विजयों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है पूर्व के कई अत्यंत शक्तिशाली राजाओं तथा उत्तर के अनेक राजाओं को हराकर उसने राजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की।

विंध्य तथा पारियात्र की मध्यवर्ती एवं अरब सागर तक फैली हुई भूमि में अभयदत्त उसके वायसराय के रूप में शासन करता था। इस संक्षिप्त विवरण की विस्तृत व्याख्या दूसरे लेख में हुई है, जो एक प्रशस्ति के रूप में है। इसके अनुसार उसने उन प्रदेशों पर भी विजय प्राप्त की जिन पर गुप्त राजाओं तक का शासन स्थापित नहीं हो पाया था और जहां हूणों की आज्ञा प्रवेश नहीं कर पाई थी।

पूर्व में लौहित्य (ब्रह्मपुत्र नदी) से लेकर पश्चिम में समुद्र तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में महेन्द्रपर्वत तक के प्रदेशों को उसने जीता। इसी अभिलेख में हूण नरेश मिहिरकुल को पराजित किये जाने का वर्णन भी काव्यात्मक ढंग से किया गया है।

मंदसौर प्रशस्ति यशोधर्मन का चित्रण उत्तर भारत के चक्रवर्ती शासक के रूप में करती है। मिहिरकुल की पराजय यशोधर्मन की उपलब्धियों में से एक थी।

यशोधर्मन की उत्पत्ति और प्रारंभिक इतिहास के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। उसके एक अभिलेख में उसे 'औलिकर वंश' का कहा गया है। इस वंश के लोग पांचवीं शताब्दी के मध्य में गुप्त साम्राज्य के सामंत के रूप में मालवा पर शासन कर रहे थे। किन्तु उसके बाद लगभग सौ वर्षो के लिये इस वंश की कोई सूचना नहीं मिलती। गुप्तों की शक्ति क्षीण हो चली थी। वाकाटकों और हूणों के आक्रमण के कारण मालवा की राजनीतिक दशा अस्थिर थी। ऐसे में यशोधर्मन जैसे महत्वाकांक्षी और योग्य व्यक्ति के लिये अपना प्रभाव बढ़ाना सरल था।

यशोधर्मन के विषय में हमारा ज्ञान मंदसौर से प्राप्त उसके दो अभिलेखों तक ही सीमित है। एक अभिलेख में कहा गया है कि उसका प्रभुत्व लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) से महेंद्र पर्वत (गंजाम जिला) तक और हिमालय से पश्चिमी सागर तक फैला था। यह विवरण परंपरागत दिग्विजय का है। इन प्रशस्तियों में अतिशयोक्ति का अंश अवश्य होगा किंतु इस प्रकार के दावे नितांत निराधार नहीं कहे जा सकते। अभिलेख में यह भी कहा गया है कि उसका अधिकार उन प्रदेशों पर भी था जो गुप्त राजाओं और हूणों के भी अधिकार में नहीं थे। उसके प्रांतपाल अभयदत्त के अधिकार में विंध्य और पारियात्र के बीच का प्रदेश था जो अरब सागर

तक फैला था। इस विस्तृत साम्राज्य की विजय के संबंध में उसने किन किन राजवंशों को पराजित किया, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। अभिलेख में उसके द्वारा पराजित शत्रुओं में केवल मिहिरकुल का ही नाम दिया गया है।

टिप्पणी

गुप्त नरेश बालादित्य ने भी मिहिरकुल को पराजित किया था। इस घटना के साथ यशोधर्मन के कृत्यों को कालक्रम में रखना कठिन है। यशोधर्मन और बालादित्य की विजय एक ही घटना है, अथवा यशोधर्मन ने बालादित्य के सामंत के रूप में ही मिहिरकुल को पराजित कर बाद में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की, या मिहिरकुल दो स्थानों पर पराजित हुआ– पश्चिम में यशोधर्मन और पूर्व में बालादित्य के द्वारा या वह पहले यशोर्धमन् और उसके बाद बालादित्य के हाथों पराजित हुआ आदि संभावनाओं में से किसी एक को निश्चयात्मक बतलाना संभव नहीं। युवान् च्वाङ् के अनुसार बालादित्य के हाथों पराजित होने पर भी मिहिरकुल ने अपना सिर झुकाना स्वीकार नहीं किया और कश्मीर में जाकर अपना अधिकार स्थापित किया। यदि इससे मंदसोर अभिलेख में मिहिरकुल के वर्णन की समानता देखी जाय तो कहा जा सकता है कि मिहिकुल की द्वितीय पराजय यशोधर्मन के ही हाथों हुई थी। शक्तिशाली हूणों और गुप्तों को पराजित करना यशोधर्मन की प्रमुख उपलब्धियां थी। उसका उत्कर्ष काल 528 ई0 के बाद था। किंतु उसकी विजय स्थायी नहीं रह सकीं। 543 ई0 में हमें यशोधर्मन के प्रभुत्व का कोई प्रभाव शेष नहीं मिलता। फिर भी उसका यह महत्व अवश्य था कि उसने अपने उदाहरण से अन्य सामंतों को उत्साहित किया जिनकी बढ़ती शक्ति और तज्जनित संघर्ष के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया।

यशोधर्मन का दूसरा नाम विष्णुवर्धन था। उसने राजाधिराजपरमेश्वर और सम्राट की उपाधि धारण की थी। वह शिव का भक्त था। अभिलेख में उसके अच्छे शासन और उसके सदगुणों के कई उल्लेख हैं। उसकी तुलना मनु, भरत, अलर्क और मांधाता से की गई है। अपने जीवन काल में ही उसे विशेष गौरव प्राप्त हुआ था।

अपनी प्रगति जांचिए

5. कौन सी आक्रांता जाति खानाबदोश व असभ्य लोगों का समूह थी?

(क) यवन (ख) हूण

(ग) पार्थियन (घ) इनमें से कोई नहीं

6. निम्न में से किस शासक ने भारत को हूणों से मुक्त कराया?

(क) हरिवर्मा (ख) विंध्यशक्ति

(ग) जनेन्द्र यशोधर्मन (घ) इनमें से कोई नहीं

5.5 मौखरी वंश, उत्तर गुप्त वंश एवं वल्लभी के मैत्रक

इस इकाई में हम मौखरी वंश, उत्तर गुप्त वंश तथा वल्लभी के मैत्रकों के बारे में अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

5.5.1 मौखरी वंश

महान गुप्त साम्राज्य के विखंडित होने के बाद उत्तर भारत की राजनीति में एक प्रबल शक्ति के रूप में मौखरियों का आविर्भाव हुआ। मौखरियों व उत्तर गुप्त सम्राटों के मध्य निरंतर संघर्ष चलता रहता था। महान गुप्तों के अवसान के पश्चात पाटलिपुत्र का भारत की राजधानी होने का गौरव समाप्त हो चुका था और गंगा-यमुना के दोआब में मौखरी शक्ति के उदय के साथ कन्नौज ने छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत की राजनीतिक शक्ति का केंद्र होने का गौरव प्राप्त कर लिया। मौखरी एक प्राचीनतम राजवंश था।

यशोधर्मन की मृत्यु के बाद आर्यावर्त का आधिपत्य मौखरियों के हाथों में चला गया। मौखरियों का आदि स्थान मगध माना जाता है। बाद में कन्नौज इनके राजनीतिक जीवन का प्रधान केन्द्र बन गया। बराबर एवं नागार्जुनी पहाड़ियों के गुहालेखों से हमें इस वंश के तीन नाम मिलते हैं—यज्ञवर्मा, शार्दूलवर्मा एवं अनन्तवर्मा। ये गुप्त सम्राटों के सामंत और सहायक राजा थे। इस वंश के अन्य राजाओं में हरिवर्मा, आदित्यवर्मा और ईश्वर वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। मौखरियों ने 554—605 ई. तक शासन किया।

मौखरियों की जाति व मूल पुरुष—मौखरियों की जाति को लेकर विवाद है। हड़हा अभिलेख के अनुसार मौखरी अश्वपति के उन 100 पुत्रों की संतान में से थे जो उनसे वैवस्तव ने प्राप्त किए थे। परंतु रायचौधरी ने वैवस्तव को यम व अन्य विद्वानों ने वैवस्तव को मनु स्वीकार किया है। हर्षचरित में भी मौखरियों के लिए 'मुखर' व 'मौखर' नामों का उल्लेख किया गया है तथा मुखर या मौखरी को आदि पुरुष स्वीकार किया है। हर्षचरित में मौखरियों को चंद्रवंशी क्षत्रिय व हड़हा अभिलेख में उच्च क्षत्रिय कुल इंगित किया गया है।

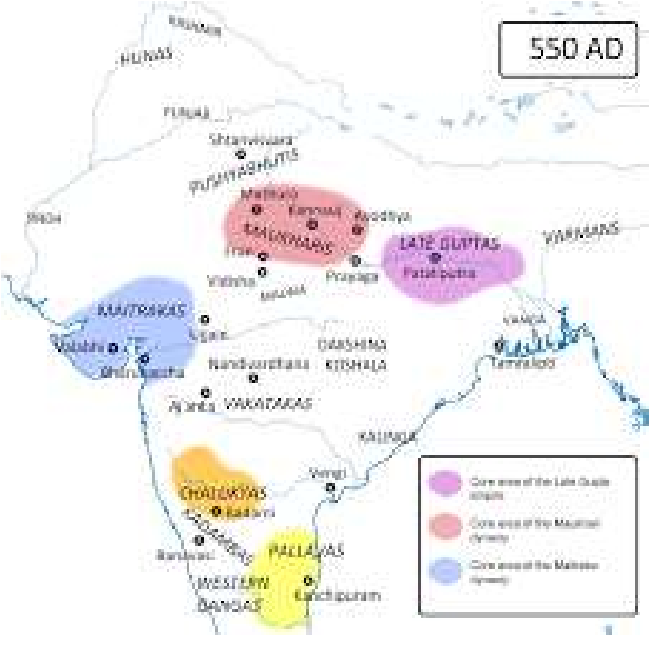

मौखरियों की शाखाएं—कन्नौज के महान मौखरियों के अलावा मौखरी की एक शाखा राजपूताना में थी। इस शाखा के 3 अभिलेख कोटा राज्य के बाढ़व नामक स्थान पर मिले हैं। ये तीनों अभिलेख तीसरी शताब्दी के हैं।

टिप्पणी

मौखरी कुल की एक अन्य शाखा गया अथवा दक्षिण बिहार में शासन करती थी। इस शाखा के राजा अनंतवर्मा के अभिलेख बराबर और नागार्जुनगिरी की गुफाओं में मिले हैं जिन्हें 5वीं शताब्दी ईसवी का माना जाता है।

कन्नौज का मौखरी वंश–मौखरियों की प्रमुख शाखा कन्नौज की थी। हड़हा अभिलेख के अनुसार मौखरी वंश का संस्थापक महाराज हरिवर्मन था। मौखरी राजा सर्ववर्मन की असीरगढ़ मुद्रा में मौखरी वंश की तालिका इस प्रकार दी गई है–

1. महाराजा हरिवर्मन पत्नी – भट्टालिका देवी जयस्वामिनी
2. महाराज आदित्यवर्मन पत्नी – भट्टालिका देवी हर्षगुप्ता
3. महाराज ईश्वरवर्मन पत्नी – भट्टालिका देवी उपगुप्ता
4. महाराजाधिराज ईशानवर्मन पत्नी – भट्टालिका महादेवी लक्ष्मीवती
5. महाराजाधिराज सर्ववर्मन

हरिवर्मन–असीरगढ़ व हड़हा अभिलेख में महाराज हरिवर्मन को एक यशस्वी राजा व भगवान विष्णु की तरह प्रजा के दु:खों को हरने वाला कहा गया है। अभिलेख में वर्णन इस प्रकार है– "जिसकी कीर्ति चारों समुद्रों तक पहुंच गई और जिसने अपने पराक्रम तथा स्नेह से अन्य शासकों को अपने अधीन कर लिया।"

आदित्यवर्मन–हरिवर्मन का पुत्र आदित्यवर्मन भी ब्राह्मण धर्म व संस्कृति का रक्षक था। हड़हा अभिलेख में कहा गया है कि आदित्यवर्मन ने वैदिक परंपरा तथा वर्णाश्रम व्यवस्था का संचालन किया था। उसने परवर्ती गुप्तों से मधुर संबंध स्थापित करने के लिए हर्षगुप्ता से विवाह किया था।

ईश्वरवर्मन–ईश्वरवर्मन आदित्यवर्मन की मृत्यु के पश्चात सम्राट बना। इसने भी परवर्ती गुप्तों से मधुर संबंध बनाए रखे व उस राजकुल की कन्या उपगुप्ता से विवाह किया। जौनपुर अभिलेख में उल्लिखित है, "धारानगर से आई चिंगारी को ईश्वरवर्मन ने सुगमता से बुझा दिया।" ईश्वरवर्मन अत्यंत पराक्रमी व ब्राह्मण धर्म का संरक्षक, कुशल राजनीतिज्ञ व बुद्धिमान व्यक्ति था। यह दयालु, सत्यवादी, सदाचारी व राजकीय कर्तव्यों के प्रति सतर्क रहने वाला पुरुष था।

ईशानवर्मन–ईश्वरवर्मन का उत्तराधिकारी व उसका पुत्र ईशानवर्मन एक शक्तिशाली व पराक्रमी सम्राट था। सर्वप्रथम इसी ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। हड़हा अभिलेख के अनुसार, "वह एक महान विजेता था जिसने हजारों हाथियों की सेना वाले आंध्र राजा को पराजित किया। अनगिनत अस्त्र रखने वाले शूलकों को पराजित किया तथा समुद्रतटीय गौड़ों को अपनी सीमाओं को हारने को बाध्य किया।" शासन के अंतिम काल में ईशानवर्मन को मगध व मालवा के उत्तर गुप्त राजा कुमार गुप्त ने पराजित कर दिया था। यह प्रथम स्वतंत्र सम्राट था।

सर्ववर्मन–ईश्वरवर्मन के पश्चात सर्ववर्मन सम्राट बना। इसका उत्तर गुप्त शासक दामोदर गुप्त से भीषण युद्ध हुआ जिसमें सर्ववर्मन ने उत्तर गुप्तों को पराजित कर मगध के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया।

टिप्पणी

सर्ववर्मन के पश्चात मौखरी वंश का शासक कौन बना इस विषय में मत भिन्नता है। संभवत: अवंतिवर्मन था क्योंकि हर्षचरित में अवंतिवर्मन को अंतिम मौखरी राजा गृहवर्मन का पिता कहा गया है। गृहवर्मन (600-606 ईसा) अंतिम मौखरी सम्राट था। जिसका दुखद अंत मालवराज के हाथों हुआ। गृहवर्मन का विवाह हर्ष की बहन राज्यश्री के साथ हुआ था। गृहवर्मन के पुत्र न होने के कारण मौखरी वंश का पतन हो गया। कालांतर में कन्नौज हर्ष के अधिकार में चला गया।

गुप्तोत्तर काल

गुप्त वंश के बाद का (गुप्तोत्तर कालीन) भारतीय इतिहास अनेक नवीन प्रवृत्तियों से संक्रमित दिखाई देता है। इन नवीन प्रवृत्तियों ने छठी सदी ईस्वी से बारहवीं सदी ईस्वी तक के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास को समान रूप से प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप युगांतकारी परिवर्तन हुए। इस कालखण्ड में 'आसमुद्र क्षितिशों' की परम्परा समाप्त हो गयी। गुप्तों एवं वाकाटकों की साम्राज्य सत्ता के विघटन के साथ ही भारत के राजनैतिक क्षितिज पर अनेक क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ और सामंतवादी व्यवस्था के अन्तर्गत बहुसंख्यक छोटे–छोटे स्थानीय राजवंश अस्तित्त्व में आये। इन्होंने अवसर पाते ही अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर राज्य विस्तार का कभी असफल तो कभी सफल प्रयत्न किया। इस प्रकार इस काल खंड में सम्पूर्ण भारत में बहुसंख्यक स्थानीय राजवंशों के उत्थान और पतन का दृश्य देखने को मिलता है। स्वाभावतः सार्वभौम–सत्ता के स्वामी राजवंशों की तुलना में स्थानीय राजवंश सामरिक शक्ति एवं आर्थिक स्थिति, इन दोनों दृष्टियों से दुर्बल थे। दूसरे अपनी राज्यसीमाओं के विस्तार की आकांक्षा से वे परस्पर संघर्षरत भी थे। इन्होंने अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं को ढकने के लिए आडंबरपूर्ण जीवनशैली अपनायी।

विराट् उपाधियों दवारा स्वयं का अलंकरण करना, अपने नीचे सामंतों की विविध स्तरीय श्रेणियों का सृजन, अपव्ययपूर्ण निर्माण कार्यों में अभिरुचि और विलासितापूर्ण जीवन, सामंतवाद के कुछ प्रमुख लक्षण थे, जिन्होंने समवेत रुप से एक ओर तो राजशक्ति को दुर्बल बनाया वहीं दूसरी ओर प्रजा की आर्थिक स्थिति को भी जर्जर कर दिया। उल्लेखनीय है कि सार्वभौम सत्ता के अभाव में व्यापारिक मार्ग असुरक्षित हुए और व्यापारिक गतिविधियां बाधित हुईं। परिणामतः व्यापार और वाणिज्य के साथ–साथ उद्योगों का विकास भी अवरूद्ध हो गया। इस काल में मुद्राओं के प्रचलन एवं उपयोग का अभाव स्पष्टतः नागर और वाणिज्य प्रधान अर्थव्यवस्था के ह्रास का सूचक है। अर्थव्यवस्था प्रधानतः कृषि पर अवलम्बित हो गयी। फलतः इस काल खंड में कृषकों की स्थिति भी दुर्दशाग्रस्त हो गई। स्पष्टतः राजनीतिक क्षेत्र में उत्पन्न अव्यवस्था ने समकालीन अर्थतंत्र को भी प्रभावित किया।

राजनीतिक एवं आर्थिक दौर्बल्य के युग में उत्तर भारत को विदेशी आक्रमणकारियों के हाथों भी पराजित और अपमानित होना पड़ा। उल्लेखनीय है कि हूणों का आरत पर पहला आक्रमण गुप्त सम्राट स्कंदगुप्त के शासन काल में हुआ था, जिसमें हूण आक्रमणकारियों को बुरी तरह पराजित होना पड़ा था। किंतु गुप्त सत्ता के अवसान

टिप्पणी

काल में हूण आक्रमणकारी पुनः सक्रिय हो उठे थे। तोरमाण और मिहिरकुल के नेतृत्त्व में हूणों ने गुजरात और मालवा से लेकर गंगा की घाटी तक आक्रमण और विनाश का दृश्य उपस्थित किया। आगे चलकर हूणों ने पंजाब और मध्य भारत में अपने छोटे–छोटे राज्य भी स्थापित किये। हूण आक्रमण की ज्वाला के शमन के बाद आठवीं शताब्दी में सिंध, गुजरात और मालवा क्षेत्र पर अरबों के आक्रमण प्रारम्भ हुए। यद्यपि मालवा के गुर्जर प्रतिहारों ने अरब शक्ति के प्रवाह को रोकने का सफल रुप से प्रयत्न किया तथापि सिंध का क्षेत्र अरब आक्रमणकारियों के राजनैतिक प्रभुत्त्व में चला गया।

इसके कुछ ही समय पश्चात पश्चिमोत्तर दिशा से तुर्क आक्रमण का संकट उत्पन्न हुआ। तुर्क आक्रमणकारियों का दबाव धीरे–धीरे पश्चिम में गुजरात के समुद्रतटवर्ती क्षेत्रों तक और पूर्व में गंगा की घाटी तक बढ़ता गया। सबसे पहले तुर्कों ने पश्चिमी पंजाब (आधुनिक पाकिस्तान) को अपने अधीन किया और उसके बाद उनके आक्रमणों की जो अनवरत आंधी उठनी प्रारम्भ हुई उसे रोकने में परस्पर ईर्ष्यालु और युद्धरत क्षेत्रीय राज्यों के अदूरदर्शी भारतीय शासक सर्वथा असफल सिद्ध हुए और धीरे–धीरे अपनी स्वतंत्रता भी खो बैठे। चाहमान, गहड़वाल, चालुक्य, चन्देल एवं परमार आदि राजवंशो के पतन से न केवल भारत के राजनैतिक इतिहास का एक युग समाप्त हुआ वरन सांस्कृतिक परम्पराओं के समक्ष भी एक ऐसी चुनौती उपस्थित हुई जिसने इतिहास की धारा को एक अकल्पनीय मोड़ दिया। यद्यपि नर्मदा के दक्षिण का भारत इस कालखण्ड में बाह्य आक्रमणों से मुक्त रहा तथापि इस क्षेत्र में भी स्थानीय राजवंश अपने गौरव, अभिमान और क्षेत्र विस्तार की महत्त्वाकांक्षा के कारण परस्पर संघर्षरत और सामंतवादी प्रवृतियों से पीड़ित रहे।

यहां यह उल्लेखनीय है कि केन्द्रापसमारी शक्तियों के अभ्युदय के कारण जहां देश की सांस्कृतिक एवं राजनैतिक एकता की भावता दुर्बल हुई वहीं सांस्कृतिक जीवन की विविधता एवं वैभव में वृद्धि भी हुई। इस कालखंड में मूर्तिकला एवं वास्तुकला की विविध शैलियां विकसित हुई, जिन्होंने अनेक उत्कृष्ट वास्तु संरचनाओं एवं कलाकृतियों को जन्म दिया। विविध स्थानीय भाषाओं, बोलियों का विकास प्रारम्भ हुआ तथा स्थानीय शासकों के संरक्षण में अनेक श्रेष्ठ काव्य कृतियों का सृजन हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य अधिकांशतः नैराश्यपूर्ण होते हुए भी सर्वथा अवदान रहित नहीं था।

5.5.2 उत्तर गुप्त वंश

सुप्रसिद्ध गुप्त राजवंश का अवसान 550–51 ईस्वी में हुआ और इसके साथ ही उत्तर भारतीय राजनीति में रिक्तता के साथ–साथ अस्थिरता एवं अराजकता का वातावरण भी उत्पन्न हुआ। गुप्त सम्राटों के अधीन उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में शासन करने वाले अनेक स्थानीय राजवंश इस रिक्तता को भरने के लिए अपनी शक्ति के संवर्धन में लग गये। परिणामतः उनमें प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हुई, जिसने पारस्परिक संघर्षों को जन्म दिया। कतिपय सामंत राजवंश मगध और उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्रों पर अधिकार स्थापित कर साम्राज्यवादी शक्ति बनने का स्वप्न देखने लगे इनमें उत्तर गुप्त, मौखरि एवं थानेश्वर के पुष्यभूति राजवंश का नाम यहां विशेष रुप से उल्लेखनीय है। यद्यपि छठी शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्ध में उत्तर भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने वाले सभी राजवंशों के सन्दर्भ में प्रचुर सूचनाएं उपलब्ध नहीं हैं तथापि आभिलेखिक एवं साहित्यिक

स्रोतों से उत्तर गुप्त, मौखरी एवं पुष्यभूति राजवंश के सन्दर्भ में अपेक्षाकृत अधिक सूचनाएं उपलब्ध हैं।

टिप्पणी

उत्तर गुप्त राजवंश के इतिहास को प्रकाशित करने वाले अभिलेखों में आदित्यसेन का अफसढ़ अभिलेख तथा जीवित गुप्त द्वितीय का देववर्णाक अभिलेख विशेष रुप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त आदित्यसेन के समय के दो अभिलेख शाहपुर और मन्दार नामक स्थानों तथा विष्णुगुप्त के काल का एक अभिलेख मंगराव नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से ये विशेष सूचना प्रदायी नहीं हैं। यहां यह ध्यातव्य है कि ये सभी लेख बिहार प्रान्त से प्राप्त हुए हैं। उदाहणार्थ अफसढ़ अभिलेख गया जिले में स्थित अफसढ़ नामक स्थान में मिला है, जो इस वंश के प्रथम शासक कृष्ण गुप्त से लेकर आदिसेन तक के काल के ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करता है। इससे हमें आदित्यसेन तक उत्तर गुप्त राजवंशावली का ज्ञान तो होता ही है साथ ही इससे उत्तर गुप्त मौखरी संबंधों पर भी रोचक प्रकाश पड़ता है। देववर्णाक अभिलेख बिहार प्रांत के शाहाबाद (आरा) जिले के देववर्णाक नामक स्थान से मिला है।

इस अभिलेख को प्रकाश में लाने का श्रेय कनिंघम महोदय को है। उन्होंने 1880 ईस्वी में इसे प्राप्त किया था। इस अभिलेख से उत्तर गुप्त राजवंश के अंतिम तीन शासकों देव गुप्त, विष्णु गुप्त एवं जीवित गुप्त द्वितीय के काल के इतिहास के संबंध में सूचनाएं मित्रती हैं। इस प्रकार अफसढ़ एवं देववर्णाक से प्राप्त अभिलेख एक साथ दृष्टि में रखने पर हमें इस वंश के ग्यारह शासकों का अविच्छिन्न इतिहास ज्ञात हो जाता है। चूंकि कृष्ण गुप्त इस वंश का प्रथम शासक तथा जीवित गुप्त द्वितीय इस वंश का अन्तिम शासक था। अतः समप्रति इस राजवंश का सम्पूर्ण इतिहास न्यूनाधिक रुप से ज्ञात है, तथापि इस वंश के इतिहास के सम्बन्ध में अभी भी अनेक ऐसी सूचनाएं हैं जो विवादरुपद बनी हुई हैं। जिनके सम्बन्ध में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर कोई निर्णायक मत व्यक्त करना दुष्कर है।

उत्पत्ति एवं आदि राज्य

टिप्पणी

उत्तर गुप्त राजवंश के संस्थापक कृष्ण गुप्त को अफसढ़ अभिलेख में 'सदवंश' में उत्पन्न बताया गया है। इससे केवल इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह किसी उच्चकुल से संबद्ध था। इससे अधिक उत्तर गुप्तों की उत्पत्ति के संबंध में हमें कोई सूचना नहीं मिलती है। इस वंश के अधिकांश शासकों के नाम के साथ गुप्त' शब्द जुड़ा हुआ है। अतः कतिपय विद्वानों के द्वारा यह सम्भावना व्यक्त की गई है कि ये चक्रवर्ती गुप्त राजवंश से संबंधित रहे होंगे। किंतु यह संभावना निर्मूल प्रतीत होती है। क्योंकि यदि ये चक्रवर्ती गुप्तों से संबद्ध होते तो इनके लेखों में निश्चय ही गर्व पूर्वक इस बात का उल्लेख किया गया होता। तो भी उल्लेखनीय है कि इस वंश के सभी राजाओं के नाम के अंत में गुप्त शब्द नहीं मिलता।

ध्यातव्य है कि इस वंश के सर्वाधिक शक्तिशाली शासक का नाम आदित्यसेन मिलता है। सम्भवतः उत्तर गुप्त राजवंश, सम्राट गुप्तों के अधीन शासन करने वाला एक सामंत राजवंश था। क्योंकि इस वंश के प्रथम शासक कृष्ण गुप्त को केवल नृप उपाधि प्रदान की गई है तथा इसके उत्तराधिकारी हर्ष गुप्त के नाम के साथ केवल आदर सूचक "श्री' शब्द का प्रयोग मिलता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि चक्रवर्ती गुप्तों से पृथक करने के लिए ही इतिहासकारों ने इस वंश को परवर्ती गुप्त वंश अथवा उत्तर गुप्त वंश कह कर संबोधित किया है। कुछ इतिहासकारों ने इस नामकरण पर आपत्ति भी की है। सुधाकर चट्टोपाध्याय का सुझाव था कि इस वंश का नामकरण उनके संस्थापक कृष्ण गुप्त के नाम पर करना चाहिए तथा इसे 'कृष्ण गुप्तवंश' कहा जाना चाहिए।

उत्तर गुप्त राजवंश अब इतिहासकारों के बीच अधिकांशतः स्वीकृत और बहुमान्य हो चुका है। उत्तर गुप्तों का मूल क्षेत्र कौन सा था? यह विषय आज भी विवादास्पद बना हुआ है। इस राजवंश के पश्चात्वर्ती शासकों आदित्यसेन, विष्णु गुप्त एवं जीवित गुप्त द्वितीय के अभिलेख मगध क्षेत्र से ही प्राप्त हुए हैं। जिनसे यह इंगित है कि इन तीन शासकों का शासन मगध क्षेत्र में व्याप्त था। अतः फ्लीट आदि विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि इस राज्यवंश का मूल क्षेत्र भी मगध ही रहा होगा। इसके विपरीत डी.सी. गांगुली, आर.के. मुकर्जी, सी.बी. वैद्य, हार्नले एवं रायचौधरी आदि अनेक विद्वानों का यह विचार है कि इस वंश के लोग मूलतः मालवा के निवासी थे जो हर्षोत्तर काल में मगध के शासक बने। मालवा को उत्तर गुप्तों का मूल क्षेत्र मानने वाले विद्वानों का मुख्य तर्क यह है कि हर्षचरित में माधव गुप्त का उल्लेख मालवराज पुत्र के रूप में हुआ है। जबकि अफसढ़ अभिलेख में माधव गुप्त को महासेन गुप्त का पुत्र कहा गया है। दोनों ही स्रोतों में माधव गुप्त को हर्ष का मित्र कहा गया है। हर्षचरित के अनुसार वह हर्ष का बाल सखा था जबकि अफसढ़ अभिलेख के अनुसार वह हर्ष देव के निरन्तर साहचर्य का आकांक्षी था। इन दोनों स्रोतों को साथ–साथ देखने से हर्षचरित के मालवराज और आदित्यसेन के पितामह महासेन गुप्त की एकरूपता प्रमाणित होती है। यहां यह भी ध्यातव्य है कि जीवित गुप्त द्वितीय के देववर्णाक अभिलेख के अनुसार मगध पर पहले मौखरी सर्ववर्मा और अवन्तिवर्मा का अधिकार था, जो उत्तर गुप्त वंश के शासक दामोदर गुप्त और महासेन गुप्त के समकालीन थे। इस बात की भी प्रबल सम्भावना है कि मगध का क्षेत्र सर्ववर्मा के पिता ईशानवर्मा के भी आधीन रहा हों, जो

टिप्पणी

उत्तर गुप्त वंशी शासक कुमार गुप्त का समकालीन था। क्योंकि ईशानवर्मा के हड़हा अभिलेख में ईशानवर्मा को आन्ध्रों, शूलिकों तथा गौड़ों का विजेता कहा गया है और गौड़ की विजय मगध क्षेत्र पर अधिकार के बिना संभव नहीं प्रतीत होती। इन सभी तथ्यों को दृष्टि में रखने पर पूर्वी मालवा के क्षेत्र को ही उत्तर गुप्तों का मूल क्षेत्र मानना युक्ति संगत लगता है।

कृष्ण गुप्त

असफढ़ अभिलेख के अनुसार उत्तर गुप्त वंश का प्रथम शासक कृष्ण गुप्त था। अभिलेख के अतैथिक होने के कारण कृष्ण गुप्त का शासनकाल सुनिश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता तथापि इस दिशा में हमें ईशानवर्मा के हड़हा अभिलेख से सहायता मिलती है, जिसकी तिथि 554 ईस्वी है। ईशानवर्मा उत्तर गुप्त वंशी नरेश कुमार गुप्त का शासनकाल स्थूलतः 540 ईस्वी और 560 ईस्वी के बीच निर्धारित किया जा सकता है। चूंकि कुमार गुप्त के पूर्व जीवित गुप्त प्रथम, हर्ष गुप्त और कृष्ण गुप्त इन तीन शासकों ने राज्य किया और यदि प्रत्येक शासक के लिए औसत बीस वर्ष का शासनकाल निर्धारित किया जाय तो कृष्ण गुप्त का शासन काल लगभग 480 ईस्वी से 500 ईस्वी के बीच रखा जा सकता है।

अफसढ़ अभिलेख में कृष्ण गुप्त को 'नृप' उपाधि से विभूषित किया गया है। इस समय गुप्त साम्राट बुध गुप्त शासन कर रहा था जिसका राजनैतिक प्रभाव मालवा क्षेत्र तक निश्चित रूप से व्याप्त था। बुध गुप्त के शासनकाल में ही हूण नरेश तोरमाण का पश्चिमी भारत पर आक्रमण हुआ। तोरमाण के शासन का प्रथम वर्ष का अभिलेख एरण से प्राप्त हुआ है। इससे यह विदित होता है कि 490 ईस्वी और 510 ईस्वी के बीच किसी समय तोरमाण का अधिकार मालवा क्षेत्र पर स्थापित हुआ। उसने बुध गुप्त के एरण क्षेत्र पर शासन करने वाले सामंत मातृविष्णु के अनुज धान्यविष्णु को अपनी ओर से इस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया। किंतु मालवा क्षेत्र में हूणों की यह सत्ता निर्विघ्न नहीं रही। क्योंकि एरण से ही प्राप्त 510 ईस्वी के भानु गुप्त के अभिलेख से ज्ञात होता है कि भानु गुप्त ने, जो एक महान योद्धा था एरण में एक भीषण युद्ध किया, जिसमें उसका मित्र गोपराज वीरगति को प्राप्त हुआ था और उसकी पत्नी अपने पति के शव के साथ सती हो गई थी। समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए इतिहासकारों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भानु गुप्त और गोपराज ने यह युद्ध हूण नरेश तोरमाण के विरूद्ध ही किया होगा। स्पष्टतः मालवा क्षेत्र के राजनीतिक परिदृश्य में तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा था जिससे मध्य भारत के परिव्राजक, उच्चकुल तथा एरण क्षेत्र के धान्यविष्णु जैसे सामंत कुलों की गुप्त सम्राटों के प्रति स्वामिभक्ति शिथिल और संदिग्ध होती जा रही थी। सम्भवतः उन्हीं परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए कृष्ण गुप्त ने पूर्वी मालवा में अपना छोटा सा राज्य स्थापित किया। यद्यपि अफसढ़ अभिलेख में यह कहा गया है कि उसकी सेना में सहस्रों की संख्या में हाथी थे तथा वह असंख्य युद्धों का विजेता था एवं विद्वानों से सदैव वह घिरा रहता था, किन्तु इसे औपचारिक प्रशंसा मात्र ही समझना चाहिए।

टिप्पणी

हर्ष गुप्त

कृष्ण गुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र हर्ष गुप्त था। इसका शासनकाल लगभग 500 ईस्वी से 520 ईस्वी तक था। अफसढ़ अभिलेख में कहा गया है कि इसने अनेक दुर्धष युद्धों में विजय प्राप्त की थी। इसका शासन काल भी हूणों के आक्रमण के कारण उथल–पुथल का काल था। यह हूण आक्रान्ता तोरमाण और उसके पुत्र मिहिरकुल दोनों का समकालीन था। इस समय गुप्त सम्राट नरसिंह गुप्त बालादित्य हूणों के साथ संघर्ष में उलझा हुआ था। कुछ विद्वानों का यह मानना है कि नरसिंह गुप्त का शासन मगध क्षेत्र में ही सीमित था, जबकि बंगाल के क्षेत्र में कदाचित वैन्य गुप्त ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था तथा मालवा क्षेत्र में संभवतः भानु गुप्त हूणों के विरूद्ध संघर्षरत था। अफसढ़ अभिलेख में हर्ष गुप्त के लिए स्वतंत्र शासक के लिए प्रयुक्त होने वाली किसी उपाधि का प्रयोग नहीं है। अतः उसकी स्थिति एक सामंत की ही प्रतीत होती है। यह कहना कठिन है कि वह तत्कालीन गुप्त सम्राट नरसिंह गुप्त बालादित्य अथवा भानु गुप्त के अधीन शासन कर रहा था या उसने हूणों की अधिसत्ता स्वीकार कर ली थी। यह भी संभावना व्यक्त की गयी है कि वह मालवा के यशोधर्मन का भी समकालीन था। किंतु दोनों के पारस्परिक संबंध के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। इसकी बहन हर्ष गुप्ता का विवाह मौखरी नरेश आदित्यवर्मा के साथ हुआ था। इस प्रकार हर्ष गुप्त के शासनकाल में उत्तर गुप्त एवं मौखरी राजकुलों के पारस्परिक संबंध मित्रतापूर्ण दिखाई देते हैं। वस्तुतः ये दोनों ही राजकुल विकासोन्मुख थे। अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ये परस्पर सहयोगी बने और मैत्री संबंध को सुदृढ़ करने के लिए वैवाहिक संबंध का आश्रय लिया।

जीवित गुप्त प्रथम

हर्ष गुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र जीवित गुप्त प्रथम था। इसने लगभग 520 ईस्वी से 540 ईस्वी तक शासन किया। अफसढ़ अभिलेख से उपलब्ध सूचनाओं से यह संकेत मिलता है कि यह अपने पिता एवं पितामाह की तुलना में अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। इस अभिलेख में उसे 'क्षितीशचूड़ामणि' उपाधि से विभूषित किया गया है। अफसढ़ अभिलेख में इसके राजनीतिक प्रभावों की चर्चा करते हुए यह कहा गया है कि 'वह समुद्रतटवर्ती हरित प्रदेश तथा हिमालय के पार्श्ववर्ती शीत प्रदेश के शत्रुओं के लिए दाहक ज्वर के सदृश था।' ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त–साम्राज्य पर हूणों के आक्रमण एवं मालवा शासक यशोवर्धन की दिग्विजय के परिणाम स्वरूप उत्तर भारत में राजनीतिक अव्यवस्था की भयावह स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। गुप्त सम्राटों का प्रताप–सूर्य अस्त हो रहा था और हिमालय के सीमावर्ती क्षेत्रों सहित उत्तरी बंगाल के क्षेत्रों से गुप्त सत्ता का प्रभाव समाप्त हो चला था। असंभव नहीं है कि जीवित गुप्त प्रथम ने समकालीन गुप्त सम्राट, जो सम्भवतः कुमार गुप्त तृतीय था, के सामंत के रूप में पूर्वी भारत में विद्रोहों का दमन करने के लिए यह अभियान किया हो। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अभियान में समकालीन मौखरी नरेश ईश्वर वर्मा ने भी उसका सहयोग किया। क्योंकि जौनपुर शिलालेख में यह कहा गया है कि ईश्वर वर्मा ने उत्तर की दिशा में हिमालय तक के क्षेत्रों (प्रालेयाद्रि) पर विजय प्राप्त की थी। इन विजयों के परिणाम स्वरूप जीवित गुप्त के शासनकाल में उत्तर गुप्तों के राजनीतिक प्रभाव में वृद्धि हुई।

इसलिए अफसढ़ अभिलेख में यह कहा गया है कि 'उसका पराक्रम पवन पुत्र हनुमान द्वारा समुद्र लंघन के समान अमानुषिक था।

टिप्पणी

कुमार गुप्त

जीवित गुप्त प्रथम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कुमार गुप्त हुआ। इसका शासनकाल लगभग 540 ईस्वी से से 560 ईस्वी तक माना गया है। इसके शासन के प्रायः मध्यकाल में (550–51 ईस्वी) गुप्त सम्राट विष्णु गुप्त की मृत्यु हुई एवं गुप्त राजवंश का पूर्णतः अंत हो गया। गुप्त राजवंश के पतन का लाभ उठाने की दिशा में उत्तर गुप्त और मौखरी दोनों ही राजवंश सक्रिय हो उठे। परिणामतः इन दोनों राजकुलों का पारस्परिक मैत्री संबंध समाप्त हो गया। अफसढ़ अभिलेख से दोनों कुलों के बीच शत्रुता एवं संघर्ष की स्पष्ट सूचना मिलती है। इस अभिलेख के अनुसार कुमार गुप्त एवं उसके समकालीन मौखरी नरेश ईशानवर्मा के बीच भीषण संघर्ष हुआ। कदाचित इस संघर्ष का उद्देश्य मगध के क्षेत्र पर, जो साम्राज्य सत्ता का प्रतीक था, अधिकार स्थापित करना था।

उत्तर गुप्त नरेश कुमार गुप्त एवं मौखरी नरेश ईशानवर्मा के बीच संघर्ष की सूचना देने वाला एकमात्र स्रोत अफसढ़ अभिलेख है। इस अभिलेख के अनुसार कुमार गुप्त ने 'राजाओं में चन्द्रमा के समान शक्तिशाली ईशानवर्मा की सेना रूपी क्षीरसागर का, जो लक्ष्मी की संप्राप्ति का साधन था, मंदराचल पर्वत की भांति मंथन किया। इस श्लोक में निहित अर्थ को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। रायचौधरी का मत है कि इस युद्ध में कुमार गुप्त की विजय हुई तथा ईशानवर्मा पराजित हुआ। क्योंकि मौखरियों द्वारा इस युद्ध में विजय का कोई दावा नहीं किया गया। उल्लेखनीय है कि ईशानवर्मा के 554 ईस्वी के हड़हा अभिलेख में इस युद्ध का कोई वर्णन नहीं है। अतः इस बात की प्रबल संभावना है कि यह युद्ध 554 ईस्वी के बाद किसी समय हुआ होगा। अफसढ़ अभिलेख के आगे के श्लोक में यह कहा गया है कि इस युद्ध के बाद कुमार गुप्त ने प्रयाग में अग्निप्रवेश कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली थी। निहाररंजन राय और राधाकुमुद मुकर्जी जैसे विद्वानों का मत है कि इस युद्ध में कुमार गुप्त पराजित हुआ था और उसने पराजय जनित ग्लानि के कारण प्रयाग में आत्महत्या की थी।

5.5.3 वल्लभी के मैत्रक

550 ईस्वी अर्थात् ईसा की 6वीं शता. के मध्य शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य पूरी तरह से छिन्न–भिन्न हो गया। गुप्त साम्राज्य के पतन ने एक बार पुनः भारतीय राजनीति में विकेन्द्रीकरण और विभाजन की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया। अनेक स्थानीय सामंतों एवं शासकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और सत्ता की दौड़ में तेजी से आगे बढे।

हर्ष के उदय के समय तक उत्तर तथा पश्चिम भारत की राजनीति में निम्नलिखित शक्तियां विशेष रूप से सक्रिय थीं–

1. वल्लभी के मैत्रक,
2. पंजाब के हूण,
3. मालवा का यशोधर्मन,
4. मगध और मालवा के उत्तर गुप्त,
5. कन्नौज के मौखरी

टिप्पणी

GENEALOGICAL TABLE OF THE MAITRAKAS OF VALABHĪ

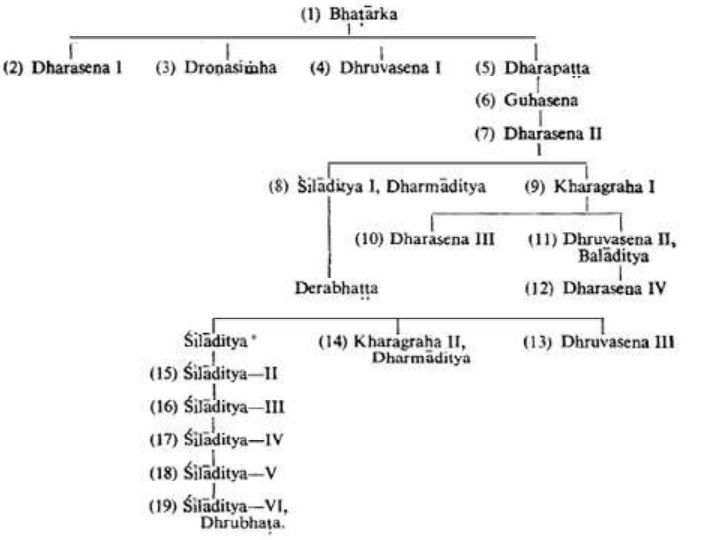

* The numbering of Siladitya differs when Siladitya, the elder son of Derabhatta, is mentioned as Siladitya II. Subsequent rulers follows like Siladitya II becomes III.

वल्लभी का मैत्रक वंश

वल्लभी के मैत्रक वंश की स्थापना भट्टार्क नामक व्यक्ति ने की थी, जो गुप्त शासकों के समय में एक सैनिक पदाधिकारी था। ईसा की पांचवी शती के अंत तक उसके उत्तराधिकारियों ने सुराष्ट्र (काठियावाड़) में अपना शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया। इस वंश के प्रारंभिक नरेश गुप्त सम्राटों के सामंत थे।

इन्होंने ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मों को अपनाया।

मैत्रक वंश के शासक

मैत्रक वंश के प्रारंभिक दो राजा–

1. भट्टार्क
2. भट्टार्क के पुत्र धरसेन

अपने आप को सेनापति कहते थे। इतिहास में धरसेन के उत्तराधिकारियों को महाराज अथवा महासामंत कहा गया है।

द्रोणसिंह

इस वंश का तीसरा राजा द्रोणसिंह था। उसके बारे में कहा गया है, कि वह अपने सार्वभौम शासक (गुप्त शासक) द्वारा महाराज के पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। यह सार्वभौम शासक बुधगुप्त था।

ध्रुवसेन प्रथम

द्रोणसिंह के बाद उसका भाई ध्रुवसेन प्रथम महाराज बना। इन दोनों ने भूमि दान में दी थी। वह अपने को परमभट्टारकपादानुध्यात कहता है, जिससे स्पष्ट है, कि ध्रुवसेन प्रथम के समय अर्थात् 545 ईस्वी तक वल्लभी के मैत्रक सम्राट गुप्तवंश की आधीनता स्वीकार करते थे। ध्रुवसेन प्रथम के सोलह दान पात्र प्राप्त हुए हैं। इसके बाद महाराज धरनपट्ट

तथा फिर गुहसेन राजा हुए। गुहसेन के दान पात्रों में परमभट्टारकपादानुध्यात का प्रयोग नहीं हुआ है। इससे पता चलता है, कि 550 ईस्वी के आस–पास मैत्रक वंश गुप्त सम्राटों की आधीनता से मुक्त हो गया था। इसी समय गुप्तों का पतन भी हो गया।

टिप्पणी

गुहसेन के बाद उसका पुत्र धरसेन द्वितीय (571–590 ईस्वी) तथा फिर धरसेन द्वितीय का पुत्र विक्रमादित्य प्रथम धर्मादित्य (606–612 ईस्वी) मैत्रक वंश का राजा हुआ।

शिलादित्य

चीनी यात्री ह्वेनसांग मो–ला–पो (मालवा) के राजा शिलादित्य का उल्लेख करता है, जो एक बौद्ध था। इस प्रकार ऐसा स्पष्ट होता है, कि इस समय तक मैत्रकों का राज्य संपूर्ण गुजरात, कच्छ तथा पश्चिमी मालवा तक विस्तृत हो गया था तथा वल्लभी पश्चिमी भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया था। ह्वेनसांग शिलादित्य के शासन की प्रशंसा करता है। उसके अनुसार वह एक योग्य तथा उदार शासक था। उसने एक बौद्ध मंदिर का निर्माण करवाया था।

धरसेन तृतीय

शिलादित्य प्रथम के बाद खरग्रह तथा फिर धरसेन तृतीय शासक हुये। उन्होंने लगभग 623 ईस्वी तक शासन किया।

इसके बाद ध्रुवसेन द्वितीय बालादित्य राजा हुआ। वह हर्ष का समकालीन था। उस के काल में ह्वेनसांग भारत आया था। उसके अनुसार वह उतावले स्वभाव तथा संकुचित विचार का व्यक्ति था, लेकिन बौद्ध धर्म में उसका विश्वास था। वह महाराजा हर्ष का दामाद था। उसका नाम ध्रुवभट्ट भी मिलता है। उसने हर्ष के कन्नौज और प्रयाग के धार्मिक समारोह में भाग लिया था।

उसने गुर्जर प्रदेश (भडौंच) पर अधिकार कर लिया था।

मैत्रक वंश का अंतिम ज्ञात शासक शिलादित्य सप्तम है, जो 766 ईस्वी में शासन कर रहा था। इस प्रकार आठवीं शती के अंत तक वल्लभी का मैत्रक वंश स्वतंत्र रूप से शासन करता रहा। अंततः अरब आक्रमणकारियों ने मैत्रक वंश के राजा की हत्या कर वल्लभी को पूर्णतया नष्ट–भ्रष्ट कर दिया।

मैत्रक वंशी शासकों का धर्म

मैत्रक वंशी नरेश बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे तथा उन्होंने बौद्ध विहारों को दान दिया। उनके शासन काल में वल्लभी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। यहां एक विश्वविद्यालय था, जिसकी पश्चिमी भारत में वही प्रसिद्धि थी, जो पूर्वी भारत में नालंदा विश्वविद्यालय की थी।

सातवीं शती के चीनी यात्री इत्सिंग ने इस शिक्षा केन्द्र की प्रशंसा की है। उसके अनुसार यहां एक सौ विहार थे, जिनमें छः हजार भिक्षु रहते थे। देश के विभिन्न भागों से विद्यार्थी यहां शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते थे। यहां न्याय, विधि, अर्थशास्त्र, साहित्य, धर्म आदि विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सातवीं शताब्दी में यहां के प्रमुख आचार्य गुणमति और स्थिरमति थे। यहां पर्याप्त बौद्धिक स्वतंत्रता एवं धार्मिक सहिष्णुता थी। यहां के शिक्षित विद्यार्थी ऊंचे–ऊंचे प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किये

जाते थे। इस विश्वविद्यालय का विनाश भी वल्लभी राज्य के साथ ही अरब आक्रमणकारियों द्वारा कर दिया गया।

शिक्षा का विख्यात केन्द्र होने के साथ ही साथ वल्लभी व्यापार तथा वाणिज्य का भी प्रमुख केन्द्र था।

टिप्पणी

सामंतवाद

गुप्त वंश के अवसान के निकट सामंतवाद प्रथा ने जन्म ले लिया था। इस समय सामाजिक व्यवस्था वर्ण व्यवस्था के अनुरूप हो गई थी, लेकिन यह व्यवस्था स्थिति अनुरूप थी। जहां वैश्य कृषक और कृषक शूद्र का जीवन और व्यवसाय अपनाने के लिए मजबूर थे। इस समय जिस नए सामाजिक ढांचे का उदय हुआ उसे सामंतवाद कहा जाता है। इसके अंतर्गत राजा अपने विश्वस्त और चुने हुए अधिकारियों को भूदान करता था। ये अधिकारी जागीरदार के रूप में अपनी सुरक्षा के लिए सेना रखते थे। राजा की इस कृपा के बदले, राजा का नाम उनके हर निर्माणकार्य में, लगान पर दी हुई भूमि पर लिए गए राजस्व में से चुकाना होता था। राजा के समान बलशाली लेकिन अधीनस्थ होते हुए भी कुछ सामंत अपने उपसामंत रखने लगे और सामंतवाद की कड़ी को आगे बढ़ाने लगे।

गुप्त वंश के बाद का समय केवल हर्षवर्धन के कारण उल्लेखनीय रहा है। हर्ष के शासन काल में साहित्य, धर्म और व्यापार अपनी चरम सीमा पर था जो उसके अंत के साथ ही समाप्त भी हो गया था।

अपनी प्रगति जांचिए

7. कन्नौज के मौखरी वंश के संस्थापक कौन थे?

   (क) हरिवर्मन (ख) शार्दूलवर्मा

   (ग) अनंतवर्मा (घ) इनमें से कोई नहीं

8. उत्तर गुप्त वंश का संस्थापक कौन था?

   (क) हर्ष गुप्त (ख) कृष्ण गुप्त

   (ग) कुमार गुप्त (घ) इनमें से कोई नहीं

9. मैत्रक वंशी शासकों का धर्म क्या था?

   (क) हिंदू (ख) जैन

   (ग) बौद्ध (घ) इनमें से कोई नहीं

5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (क)

टिप्पणी

5. (ख)
6. (ग)
7. (क)
8. (ख)
9. (ग)

5.7 सारांश

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत की राजनीति और भौगोलिक सीमाओं के टुकड़े होने शुरू हो गए थे। इस समय गुप्त शासन में एकजुट हुई राजनीतिक शक्ति के प्रतीक विभिन्न सामंतों और शासकों ने स्वयं को स्वयंभू शासक घोषित करके अपनी स्व्घोषित स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। इसके साथ ही गुप्त वंश से जुड़े कुछ राजनीतिक अधिकारियों ने अवसर का लाभ उठाते हुए अपने–अपने वंश की स्थापना करने का प्रयास किया जिन्हें गुप्तोत्तर शासकों के नाम से जाना जाता है।

इसके अतिरिक्त गुप्त शासन के पतन के दौरान और बाद प्रमुख रूप से भारत में जिन राजनैतिक शक्तियों का उदय दिखाई देता है उनमें हूण, मौखरि, मैत्रक, वाकाटक (आंध्र प्रदेश एवं मध्य भारत), दशपुरा के औलिकर (संपूर्ण उत्तर भारत) पुष्यभूति और गौड़ प्रमुख शक्तियों के रुप में दिखाई देती हैं।

वाकाटक दक्षिण भारत की प्रमुख शक्ति थे। सातवाहनों के विनाशोपरांत तृतीय शताब्दी ई. के मध्य भाग में वाकाटक राजवंश का प्रादुर्भाव हुआ। इसकी स्थापना विंध्यशक्ति द्वारा की गई थी। गुप्त वंश का उत्तरी भारत में वर्चस्व था तो वाकाटकों को दक्षिण भारत में शासन करने वाले राजवंशों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। वायु व ब्राह्मण पुराण के अनुसार, "कोलिकिलों के 96 वर्ष तक शासन कर लेने के अनंतर विंध्य शक्ति का उदय हुआ था।"

विंध्यशक्ति की मृत्यु के पश्चात उसका पराक्रमी पुत्र प्रवरसेन राजा बना। उसने अपने साम्राज्य की सीमाओं को नर्मदा तक विस्तृत कर 'सम्राट' की उपाधि धारण की। उसने 4 अश्वमेध यज्ञ किए जो उसकी शक्ति के परिचायक हैं। डॉ. अल्तेकर का मत है कि उसके द्वारा अश्वमेध यज्ञों का किया जाना संभवत: उसके द्वारा चार युद्धों में सफलता इसका कारण था। उसके साम्राज्य में मालवा, बरार, मध्य प्रदेश, उत्तरी महाराष्ट्र, हैदराबाद, काठियावाड़ व दक्षिण कौशल के कुछ प्रदेश सम्मिलित हैं। डॉ. जायसवाल के अनुसार, प्रवरसेन वास्तव में समुचित भारत का सर्वोच्च अधिपति था।

वाकाटक वंश भारतीय इतिहास में अपना विशेष स्थान रखता है। वाकाटकों ने अपने प्रयासों से कुषाण सत्ता को भारतीय सीमा के बाहर धकेल कर आर्यवर्त को अपने शासन का केंद्र बनाया। इन्होंने सार्वभौमिकता की कल्पना को साकार किया। वेदों की भाषा संस्कृत को अपनी राष्ट्र भाषा बनाया तथा पुरातन भारतीय संस्कृति को पुन: प्रतिष्ठित करने का भरसक प्रयत्न किया। कला के क्षेत्र में भी वाकाटकों ने अत्यधिक उन्नति की। अजंता की 16, 17, 19 नंबर की गुफाएं वाकाटक युग की ही हैं। तिगवा व नचना के

टिप्पणी

मंदिर भी जीवंत कला के अनुपम नमूने हैं। डॉ. त्रिपाठी का मत है कि "गुप्तों के समकालीन वाकाटक वंश भी बहुत शक्तिशाली था।" जे. डुब्रील के अनुसार, "दक्षिण के उन समस्त राजवंशों में जिन्होंने तीसरी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी ई. तक राज्य किया, सबसे अधिक गौरवपूर्ण तथा सम्मानीय स्थान का पात्र सबसे आगे एवं संपूर्ण दक्षिणापथ में श्रेष्ठ सभ्यता वाला निस्संदेह वाकाटक का यशस्वी राजवंश था।"

हूण शब्द की उत्पत्ति हून-यू-या हियून-यू शब्द से हुई है। हूण जाति खानाबदोश व असभ्य लोगों का समूह थी। कुछ विद्वान चीन की हूंग-नू जाति से हूणों की उत्पत्ति स्वीकारते हैं तथा कुछ इन्हें एप्थालाइट जाति का मानते हैं। ये बर्बर व निर्दयी थे तथा मध्य एशिया के निवासी थे। बाद में यह जाति दो भागों में विभाजित हो गई। एक धारा वोल्गा की ओर व दूसरी आक्सस की ओर उन्मुख हुई। यूरोप की तरफ जाने वाले काले हूण तथा फारस पर प्रभुत्व करने वाले श्वेत हूण कहलाए। फारस में शासन करने वालों ने बल्ख को अपनी राजधानी बनाया।

स्कंदगुप्त की मृत्यु के पश्चात तोरमाण के नेतृत्व में हूणों ने आक्रमण किया। बुद्धगुप्त के पश्चात एरण पर हूणों का अधिकार हो गया तथा वहां के सामंत घेन्य विष्णु ने तोरमाण की आधीनता स्वीकार कर ली। तोरमाण प्रथम हूण सम्राट था जिसने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया। विद्वानों के अनुसार, "वस्तुतः तोरमाण प्रथम हूण था जिसने भारत की मुख्य भूमि पर अपना गहरा प्रभाव स्थापित किया। इसने अनेक सिक्के भी ढलवाए। ग्वालियर लेख से ज्ञात होता है कि वह अनेक गुणों से संपन्न था। उसने सत्य, शौर्य तथा न्याय आदि से पृथ्वी पर शासन किया।" इसकी मृत्यु 511 ई. में हुई थी।

मिहिरकुल तोरमाण का पुत्र था। अतः तोरमाण की मृत्यु के पश्चात वह गद्दी पर आसीन हुआ। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि मगध सम्राट नरसिंह गुप्त ने मिहिरकुल को कर देना बंद कर दिया। मिहिरकुल के आक्रमण को सुनकर वह एक द्वीप में जा छिपा। ह्वेनसांग ने लिखा है– कुछ शताब्दी पूर्व मो-हि-कु-लो (मिहिरकुल) नामक राजा जिसकी राजधानी यह नगर (शाकल) थी भारतीयों पर शासन करता था। सब पड़ोसी राज्य उसके अधीन थे। उसने अपने संपूर्ण राज्य में बौद्ध संघ के पूर्ण विनाश की आज्ञा दी थी। एक लोककथा के अनुसार मिहिरकुल ने लंका विजय की थी। मिहिरकुल बालादित्य से पराजित हुआ और मिहिरकुल की पराजय के साथ ही हूणों का प्रभाव भी समाप्त हो गया।

यशोधर्मन के विषय में हमारा ज्ञान मंदसौर से प्राप्त उसके दो अभिलेखों तक ही सीमित है। एक अभिलेख में कहा गया है कि उसका प्रभुत्व लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) से महेंद्र पर्वत (गंजाम जिला) तक और हिमालय से पश्चिमी सागर तक फैला था। यह विवरण परंपरागत दिग्विजय का है। इन प्रशस्तियों में अतिशयोक्ति का अंश अवश्य होगा किंतु इस प्रकार के दावे नितांत निराधार नहीं कहे जा सकते। अभिलेख में यह भी कहा गया है कि उसका अधिकार उन प्रदेशों पर भी था जो गुप्त राजाओं और हूणों के भी अधिकार में नहीं थे। उसके प्रांतपाल अभयदत्त के अधिकार में विंध्य और पारियात्र के बीच का प्रदेश था जो अरब सागर तक फैला था। इस विस्तृत साम्राज्य की विजय के संबंध में उसने किन किन राजवंशों को पराजित किया, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। अभिलेख में उसके द्वारा पराजित शत्रुओं में केवल मिहिरकुल का ही नाम दिया गया है।

टिप्पणी

यशोधर्मन की मृत्यु के बाद आर्यावर्त का आधिपत्य मौखरियों के हाथों में चला गया। मौखरियों का आदि स्थान मगध माना जाता है। बाद में कन्नौज इनके राजनीतिक जीवन का प्रधान केन्द्र बन गया। बराबर एवं नागार्जुनी पहाड़ियों के गुहालेखों से हमें इस वंश के तीन नाम मिलते हैं–यज्ञवर्मा, शार्दूलवर्मा एवं अनन्तवर्मा। ये गुप्त सम्राटों के सामंत और सहायक राजा थे। इस वंश के अन्य राजाओं में हरिवर्मा, आदित्यवर्मा और ईश्वर वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। मौखरियों ने 554–605 ई. तक शासन किया।

गुप्त वंश के बाद का (गुप्तोत्तर कालीन) भारतीय इतिहास अनेक नवीन प्रवृत्तियों से संक्रमित दिखाई देता है। इन नवीन प्रवृत्तियों ने छठी सदी ईस्वी से बारहवीं सदी ईस्वी तक के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास को समान रूप से प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप युगांतकारी परिवर्तन हुए। इस कालखण्ड में 'आसमुद्र क्षितिशों' की परम्परा समाप्त हो गयी। गुप्तों एवं वाकाटकों की साम्राज्य सत्ता के विघटन के साथ ही भारत के राजनैतिक क्षितिज पर अनेक क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ और सामंतवादी व्यवस्था के अन्तर्गत बहुसंख्यक छोटे–छोटे स्थानीय राजवंश अस्तित्त्व में आये। इन्होंने अवसर पाते ही अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर राज्य विस्तार का कभी असफल तो कभी सफल प्रयत्न किया। इस प्रकार इस काल खंड में सम्पूर्ण भारत में बहुसंख्यक स्थानीय राजवंशों के उत्थान और पतन का दृश्य देखने को मिलता है। स्वाभावतः सार्वभौम–सत्ता के स्वामी राजवंशों की तुलना में स्थानीय राजवंश सामरिक शक्ति एवं आर्थिक स्थिति, इन दोनों दृष्टियों से दुर्बल थे। दूसरे अपनी राज्यसीमाओं के विस्तार की आकांक्षा से वे परस्पर संघर्षरत भी थे। इन्होंने अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं को ढकने के लिए आडंबरपूर्ण जीवनशैली अपनायी।

वल्लभी के मैत्रक वंश की स्थापना भट्टार्क नामक व्यक्ति ने की थी, जो गुप्त शासकों के समय में एक सैनिक पदाधिकारी था। ईसा की पांचवी शती के अंत तक उसके उत्तराधिकारियों ने सुराष्ट्र (काठियावाड़) में अपना शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया। इस वंश के प्रारंभिक नरेश गुप्त सम्राटों के सामंत थे। इन्होंने ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मों को अपनाया।

5.8 मुख्य शब्दावली

- **समकालीन** : जो एक ही समय में हुए हों।
- **विनाशोपरांत** : विनाश के बाद।
- **वर्चस्व** : श्रेष्ठता।
- **कतिपय** : निश्चित।
- **कुठाराघात** : घातक चोट।
- **गुप्तोत्तर** : गुप्तों के बाद का।
- **अलंकरण** : सजाना।
- **ह्रास** : कमी होना।

- **अभ्युदय** : वृद्धि।
- **समप्रति** : इस काल में।
- **दुर्धर्ष** : प्रचंड।

टिप्पणी

5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. किस वाकाटक शासक ने अपनी राजधानी नंदिवर्धन की बजाय प्रवरपुर को नई राजधानी बनाया?
2. भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने वाले प्रथम हूण शासक तोरमाण का वर्णन कीजिए।
3. मंदसौर से मिले दो अभिलेखों से औलिकर राजा यशोधर्मन के बारे में मिली जानकारी का वर्णन कीजिए।
4. मौखरी वंश के प्रमुख शासकों के नामों का वर्णन कीजिए।
5. गुप्त वंश एवं उत्तर गुप्त वंश में किन्हीं दो प्रमुख अंतरों पर प्रकाश डालिए।
6. मैत्रक वंश के प्रारंभ के कुछ शासकों के नामों का वर्णन कीजिए जिन्होंने गुप्त सम्राटों की आधीनता में शासन किया।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. वाकाटक वंश के साम्राज्य विस्तार का शासक अनुक्रम के साथ वर्णन कीजिए।
2. हूणों के मूल स्थान, इनके द्वारा भारत पर किए आक्रमणों एवं इसके प्रभावों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. भारतीय इतिहास में दशपुरा के औलिकर शासक यशोधर्मन के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. मौखरी वंश के हर्षवर्धन से संबंधों के परिप्रेक्ष्य में मौखरी साम्राज्य के विस्तार एवं पतन का वर्णन कीजिए।
5. उत्तर गुप्त वंश के साम्राज्य विस्तार एवं शासक क्रम का विस्तार से वर्णन कीजिए।
6. वल्लभी के मैत्रक शासकों का शासकों के अनुक्रम सहित वर्णन कीजिए।

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।

टिप्पणी

3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।
4. झा, डी. एन.ः प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.ः द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.ः इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.ः (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,ः द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.ः प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीताः ''प्राचीन भारत का इतिहास'' मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंदः ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूमः II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।